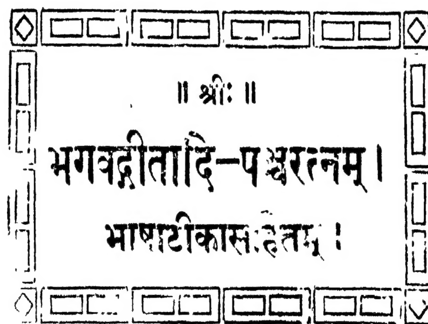

॥ श्रीः ॥

भगवद्गीतादि-पञ्चरत्नम् ।

भाषाटीकासहितम् ।

श्रीः ।

गीतामृततरंगिणी,

श्रीमत्सुकुलसीतारामात्मज पंडित

रघुनाथप्रसादजीकृत ।

श्रीमद्भगवद्गीताकी भाषाटीका.

जिसको

खेमराज श्रीकृष्णदासने,

निज "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेसमें

छापकर प्रकाशित किया ।

संवत् १९८६, शकाब्द १८५१.

मुंबई.



मुद्रक और प्रकाशक-

खेमराज-श्रीकृष्णदास,

मालिक-"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस, **बम्बई.**



भूमिका।



हम बडे आनंदसे सर्व सद्धर्मावलंबियोंको विदित करते हैं कि, यह "भगवद्गीता" ग्रन्थ सर्व लोगोंको धर्मग्रंथ शिरोमणिरूपसे मान्य है। प्रायः समस्त सनातनधर्माभिमानी विद्वल्लोगोंको पाठ आता है. साधारणसे भी साधारण क्यों न हो एक आध श्लोकका तो मुखसे उच्चारण करता ही है. ऐसा इस ग्रंथका माहात्म्य है. यह क्यों नहीं हो कि, जो साक्षात् पद्मनाभ भगवान् श्रीकृष्णचंद्रजीने परम भक्त अर्जुनको श्रीमुखसे निरूपण करा है. जिसमें एकएक अक्षर तत्त्वज्ञानसे भरा हुआ है. ऐसा यह ग्रंथ है तो इसकी इतनी महिमा होना क्या आश्चर्य है.? यह ऐसी गीता सर्व उपनिषदोंके साररूप है। श्रीकृष्णजीने इसको निकाली है, अर्जुनजीने इसका प्रथम आस्वाद लिया है. इसके भोक्ता बुद्धिमान् लोग हैं. यह परम पवित्र और चतुर्विध पुरुषार्थको सिद्ध करता है.

ऐसा यह तत्त्वज्ञान महाभारतके भीष्मपर्वमें श्रीव्यासमुनिने ग्रंथरूपसे निरूपण किया है, यह ग्रंथ संस्कृतभाषामें रहनेसे इसका अर्थ समझनेमें सर्व साधारण लोगोंको पराधीन करता था. यह न्यूनता देखकर मैंने इस ग्रंथकी "गीतामृततरंगिणी" नामक भाषाटीका निर्माण करी. इसको प्रथम आवृत्तिमें अन्यत्र छपवाया था वह आवृत्ति हाथोंहाथ बिकगई. इस वास्ते अब इस भाषाटीकाका रजिस्टरी हक्क सदाहीके लिये यथोचित पारितोषिक पाकर बड़े उत्साहसे श्रीमान् सेठ खेमराज श्रीकृष्णदासजी "श्रीवेङ्कटेश्वर" छापाखानाके अधिपतिको निवेदन

किया है. उन सेठ श्रीखेमराज श्रीकृष्णदासजीने यह ग्रंथ परम उत्साहसे अपने "श्रीवेङ्कटेश्वर" छापाखानामें सुन्दर मनोहर अक्षरोंमें पुष्ट चिकने कागजपर छापके प्रसिद्ध किया है.

अब हम आशा रखते हैं कि, इस अलभ्य मनोहर भाषाटीका समेत पुस्तकको संग्रह करके भगवदुक्त तत्त्वज्ञानको पाकर परम आनंदका विद्वान् अनुभव करेंगे.

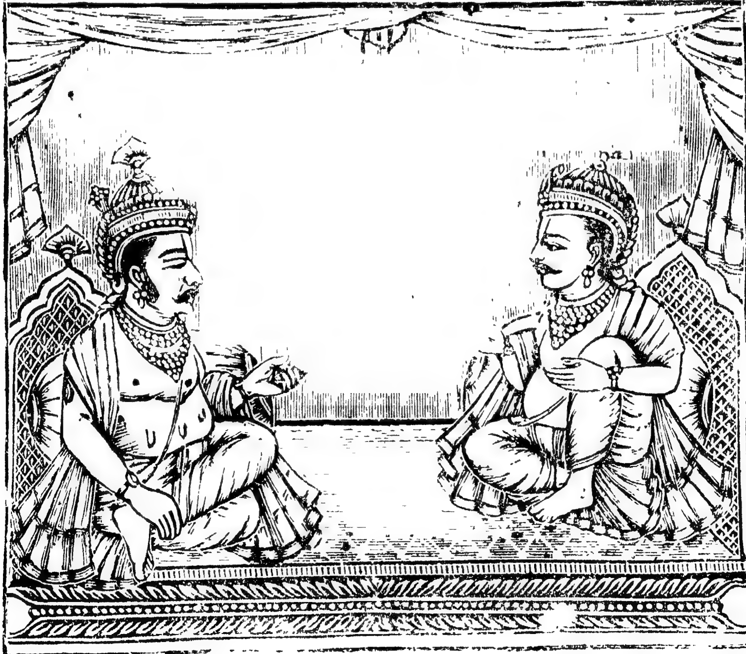
सुकुल सीतारामात्मज–

पण्डित रघुनाथप्रसाद.




युद्ध प्रसंग
अर्जुन







अथ श्रीमद्भगवद्गीतार्थवाङ्मयी मूर्तिः ।

वक्त्राणि पंच जानीहि पंचाध्यायाननुक्रमात ।
दशाध्याया भुजाश्चैकमुदरं द्वौ पदांबुजे ॥ १ ॥

एवमष्टादशाध्यायी वाङ्मयी मूर्तिरैश्वरी ।
जानीहि ज्ञानमात्रेण महापातकनाशिनी ॥ २ ॥

इस मूर्तिमें अंक डालनेका मतलब यह है कि जिस जिस अध्यायके जो जो अंग हैं.
उन उन अंगोंमें उन उन अध्यायोंके अंक लिखे हैं


तपलोक
जनलोक
महलोक
इंद्रादि
स्थान
आकाश
स्वर्ग
अतल
वितल
सुतल
महातल
रसातल
तलातल
पाताल
अर्जुन

॥ श्रीः ॥

अथ श्रीभगवद्गीतामाहात्म्य ।

भाषाटीकासहित ।

ऋषिरुवाच ।

गीतायाश्चैव माहात्म्यं यथावत्सूत मे वद ।
पुराणमुनिना प्रोक्तं व्यासेन श्रुतिनोदितम् ॥ १ ॥

नत्वा रामानुजं कृष्णं गीताचार्यं जगद्गुरुम् ।
गीतामाहात्म्यसद्व्याख्यां कुर्वे प्राकृतभाषया ॥ १ ॥

अनेकप्रकारकी कथा सुनते सुनते शौनकऋषि सूतजीसे प्रश्न करते हुए कि हे सूत ! जो श्रीमद्भगवद्गीताका वेदोक्त माहात्म्य श्रीव्यासजीने कहा है (सो यथावत् मुझसे कहो) ॥ १ ॥

सूत उवाच ।

पृष्टं वै भवता यत्तन्महद्गोप्यं पुरातनम् ।
न केन शक्यते वक्तुं गीतामाहात्म्यमुत्तमम् ॥ २ ॥

शौनकका प्रश्न सुनके सूतजी बोले कि जो तुमने मुझसे पूछा वह अतिगोप्य एवं प्राचीन है, अतः गीताका अतिउत्तम माहात्म्य कोई भी कहनेको समर्थ नहीं है ॥ २ ॥

कृष्णो जानाति वै सम्यक् कचित्कौन्तेय एव च ।
व्यासो वा व्यासपुत्रो वा याज्ञवल्क्योऽथ मैथिलः ॥ ३ ॥

सम्यक् प्रकारसे तो कृष्ण ही जानते हैं और किंचित् अर्जुन तथा व्यासजी, शुकदेवजी, याज्ञवल्क्य अथवा जनक जानते हैं ॥ ३ ॥

अन्ये श्रवणतः श्रुत्वा लोके संकीर्त्तयन्ति च ।
तस्मात्किंचिद्वदाम्यद्य व्यासस्यास्यान्मया श्रुतम् ४ ॥

और जन कानोंसे सुनके लोकमें वर्णन करते हैं, परंतु जानते नहीं, इससे जैसा मैंने श्रीव्यासजीके मुखारविंदसे सुना है वैसा कुछ थोड़ा कहूँगा ॥ ४ ॥

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः ।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत् ॥५॥

सर्व उपनिषदें तो गऊरूप हुईं; दुहनेवाले श्रीकृष्ण और बछरारूपी महात्मा अर्जुन प्रथम पान किये, पीछे यह गीतारूप दूध अतिमिष्ट लोकमें प्रकट हुआ ॥ ५ ॥

सारथ्यमर्जुनस्यादौ कुर्वन् गीतामृतं ददौ ।
सर्वलोकोपकारार्थं तस्मै कृष्णाय ते नमः ॥ ६ ॥

जो भगवान् प्रथम अर्जुनका सारथिपना करते करते सर्वलोकोंके उपकारके वास्ते अर्जुनको गीतारूप अमृत देते हुए ऐसे आप श्रीकृष्णको मेरा नमस्कार है ॥ ६ ॥

संसारसागरं घोरं तर्तुमिच्छति यो जनः ।
गीतानावं समारुह्य पारं यातु सुखेन सः ॥ ७ ॥

जो संसारघोरसागर तरना चाहता हो; वह गीतारूपी नाव पर बैठके सुखसे पार पाता है ॥ ७ ॥

गीताज्ञानं श्रुतं नैव सदैवाभ्यासयोगतः ।
मोक्षमिच्छति मूढात्मा याति बालकहास्यताम् ॥८॥

जिसने गीतासंबन्धी ज्ञान सदा अभ्यासयोगसे नहीं सुना है और वह मूर्ख मोक्ष चाहता है तो वह बालकोंकरके उपहासको प्राप्त होता है ॥ ८ ॥

ये शृण्वन्ति पठन्त्येव गीताशास्त्रमहर्निशम् ।
न ते वै मानुषा ज्ञेया देवा एव न संशयः ॥ ९ ॥

जो रातदिन गीता पढ़ते और सुनते हैं वे मनुष्य नहीं, देवता ही हैं ऐसे जानना, इसमें संशय नहीं है ॥ ९ ॥

गीताज्ञानेन संबोध्य कृष्णः प्राह तमर्जुनम् ।
अष्टादशपदस्थानं गीताध्याये प्रतिष्ठितम् ॥ १०॥

श्रीकृष्णभगवान् अर्जुनको गीताके ज्ञानसे संबोधन देकर बोले कि इस गीताके प्रत्येक अध्यायमें अष्टादशपद (विष्णु) का स्थान (परम पद) स्थापित है ॥ १० ॥

मोक्षस्थानं परं पार्थ सगुणं वाथ निर्गुणम् ।
सोपानाष्टादशैरेवं परं ब्रह्माधिगच्छति ॥ ११ ॥

हे अर्जुन ! सगुण अथवा निर्गुण स्वइच्छाप्रमाण मोक्षस्थान पर अठारह अध्यायरूप सोपानों करके परब्रह्मको प्राप्त होता है ॥ ११ ॥

मलनिर्मोचनं पुंसां जलस्नानं दिने दिने ।
सकृद्गीताम्भसि स्नानं संसारमलनाशनम् ॥ १२ ॥

जो प्रति दिन जलस्नान है वह मनुष्योंके शरीरमलका नाशक है और एक बार भी इस गीतारूप जलका स्नान संसारदुःखरूप मलका नाशक है ॥ १२ ॥

गीताशास्त्रस्य जानाति पठनं नैव पाठनम् ।
परस्मान्न श्रुतं ज्ञानं नैव श्रद्धा न भावना ॥ १३ ॥
स एव मानुषे लोके पुरुषो विड्वराहकः ।
यस्माद्गीतां न जानाति नाधमस्तत्परो जनः ॥ १४ ॥

जो गीताशास्त्रका पढ़ना पढ़ाना नहीं जानता है, न दूसरेसे सुना, न जिसके श्रद्धा है और न भावना है वह पुरुष इस लोकमें ग्रामसूकरके समान है; क्योंकि जिससे वह गीता नहीं जानता है इसीसे उसके सिवाय दूसरा अधम नहीं है ॥ १३ ॥ १४ ॥

धिक्तस्य मानुषं देहं धिग्ज्ञानं धिक्कुलीनताम् ।
गीतार्थं न विजानाति नाधमस्तत्परो जनः ॥ १५ ॥

जो गीतार्थको नहीं जानता है उसके मनुष्यदेहको, ज्ञानको और कुलीनताको धिक्कार है और उससे अधिक कोई अधम नहीं है ॥ १५ ॥

धिक्सुरूपं शुभं शीलं विभवं सद्गृहाश्रमम्।
गीताशास्त्रं न जानाति नाधमस्तत्परो जनः ॥१६॥

जो गीताशास्त्रको नहीं जानता है उसके सुंदर रूपको, सुंदर शीलको, विभवको और श्रेष्ठ गृहाश्रमको धिक्कार है और उससे अधिक अधम दूसरा नहीं है ॥ १६ ॥

धिक्प्रागल्भ्यं प्रतिष्ठां च पूजां मानं महात्मताम्।
गीताशास्त्रे रतिर्नास्ति तत्सर्वं निष्फलं जगुः ॥१७॥

जिसकी गीताशास्त्रमें प्रीति नहीं उसकी हिम्मत, प्रतिष्ठा, पूजा, मान और महात्मापनेको धिक्कार है और उसका सर्व कर्म निष्फल है ॥ १७ ॥

धिक्तस्य ज्ञानमाचारं व्रतं चेष्टां तपो यशः।
गीतार्थपठनं नास्ति नाधमस्तत्परो जनः ॥ १८ ॥

जिसने गीतार्थका पठन नहीं किया उसके ज्ञान तथा आचार, व्रत, चेष्टा, तप और यशको धिक्कार है, उससे अधिक कोई जन अधम नहीं है ॥ १८ ॥

गीतागीतं न यज्ज्ञानं तद्विद्ध्यासुरसंज्ञकम्।
तन्मोघं धर्मरहितं वेदवेदान्तगर्हितम् ॥ १९ ॥

जो ज्ञान गीताका गाया नहीं है उस ज्ञानको आसुरी ज्ञान जानना, वह व्यर्थ और धर्मरहित तथा वेदवेदांतकरके निन्दित है १९॥

यस्माद्धर्ममयी गीता सर्वज्ञानप्रयोजिका।
सर्वशास्त्रमयी गीता तस्माद्गीता विशिष्यते ॥२०॥

जिससे कि गीता धर्ममयी और सर्वज्ञानोंमें प्रवृत्त करनेवाली और सर्वशास्त्रमयी है; इससे गीता सब शास्त्रोंसे श्रेष्ठ है ॥२०॥

योऽधीते सततं गीतां दिवा रात्रौ यथार्थतः।
स्वपन्गच्छन्वदंस्तिष्ठञ्छाश्वतं मोक्षमाप्नुयात् ॥२१॥

जो निरंतर रातदिन अर्थसहित गीताको सोते, चलते, बोलते और खड़े होनेपर भी पढ़ते रहते हैं वे सनातन मोक्षको प्राप्त होते हैं ॥२१॥

शालग्रामशिलाग्रे तु देवागारे शिवालये।
तीर्थे नद्यां पठेद्यस्तु वैकुण्ठं याति निश्चितम्॥२२॥

शालग्रामके संमुख, देवमंदिरमें, शिवालयमें, तीर्थमें और नदी-किनारे जो गीताको पढ़ता है वह निश्चय वैकुण्ठको जाता है ॥२२॥

देवकीनन्दनः कृष्णो गीतापाठेन तुष्यति।
यथा न वेदैर्दानैश्च यज्ञतीर्थव्रतादिभिः ॥ २३ ॥

जैसे श्रीदेवकीनंदन कृष्ण गीतापाठसे संतुष्ट होते हैं वैसे वेद-पाठ, दान, यज्ञ, तीर्थ और व्रतादिकोंसे नहीं संतुष्ट होते ॥२३॥

गीताऽधीता च येनापि भक्तिभावेन चेतसा।
तेन वेदाश्च शास्त्राणि पुराणानि च सर्वशः ॥ २४ ॥

जिसने भक्तिभावपूर्वक चित्त लगाकर गीताका अध्ययन किया वह सर्व वेद, शास्त्र और पुराण भी पढ़ चुका ॥ २४ ॥

योगिस्थाने सिद्धपीठे शिष्टाग्रे सत्सभासु च।
यज्ञे च विष्णुभक्ताग्रे पठन्याति परां गतिम् ॥२५॥

योगीके स्थानमें, विंध्येश्वरी इत्यादि सिद्धपीठमें, श्रेष्ठपुरु-षके संमुख, साधुसभामें, यज्ञमें और विष्णुभक्तके संमुख पाठ करनेसे जन मोक्ष पाता है ॥ २५ ॥

गीतापाठं च श्रवणं यः करोति दिनेदिने।
क्रतवो वाजिमेधाद्याः कृतास्तेन सदक्षिणाः ॥२६॥

जो प्रतिदिन गीताका पाठ और श्रवण करता है वह सब अग्नि-ष्टोमादिक और अश्वमेधादिक दक्षिणासहित यज्ञ कर चुका॥२६॥

यः शृणोति च गीतार्थं कीर्तयेच्च स्वयं पुमान्।
श्रावयेच्च परार्थं वै स प्रयाति परं पदम् ॥ २७ ॥

जो गीताका अर्थ सुने और आप कहे दूसरोंको श्रवण करावे वह परमपदको प्राप्त होता है ॥ २७ ॥

गीतायाः पुस्तकं नित्यं योऽर्चयत्येव सादरम् ।
विधिना भक्तिभावेन तस्य पुण्यफलं शृणु ॥२८॥

जो आदरपूर्वक नित्य गीताकी पुस्तकको विधिपूर्वक भक्ति-भावसंयुक्त पूजता है उसके पुण्यका फल सुनो ॥ २८ ॥

सकला चोर्वरा तेन दत्ता यज्ञे भवेत्किल ।
व्रतानि सर्वतीर्थानि दानानि सुबहून्यपि ॥ २९ ॥

वह गीताके पूजनेवाला यज्ञमें सर्व पृथ्वी दान दे चुका; तथा सर्वव्रत सर्वतीर्थ और बहुतसे दान भी कर चुका ॥ २९ ॥

भूतप्रेतपिशाचाद्यास्तत्र नो प्रविशन्ति वै ।
अभिचारोद्भवं दुःखं परेणापि कृतं च यत् ॥ ३० ॥

जिस घरमें गीताका पूजन होता है वहां भूत, प्रेत, पिशाचादिक और दूसरेके किये मंत्रयंत्रादिक अभिचारज दुःख भी नहीं प्रवेश कर सकते हैं ॥ ३० ॥

नोपसर्पन्ति तत्रैव यत्र गीतार्चनं गृहे ।
तापत्रयोद्भवा पीडा नैव व्याधिभयं तथा ॥ ३१ ॥

जिस घरमें गीताका पूजन है, वहां दैहिक, दैविक और भौतिक इन तीनों तापोंकी पीडा और रोगकृतपीडा नहीं होती है ॥३१॥

न शापं नैव पापं च दुर्गतिं न च किंचन ।
देहेऽरयः षडेते वै न बाधन्ते कदाचन ॥ ३२ ॥

वहां किसीका शाप और पाप और दुर्गति कभी नहीं होती है तथा देहमें वर्तमान जो पांच ज्ञानेंद्रिय, एक मन ऐसे छः शत्रु भी पीडा नहीं करते हैं ॥ ३२ ॥

भगवत्परमेशाने भक्तिरव्यभिचारिणी ।
जायते सततं तत्र यत्र गीताभिनन्दनम् ॥३३॥

जहाँ गीताके अर्थका निरंतर विनोद होता है वहाँ भगवान्में अति उत्तम अखंड भक्ति उत्पन्न होती है ॥ ३३ ॥

प्रारब्धं भुञ्जमानोऽपि गीताभ्यासे सदा रतः ।
सं मुक्तः स सुखी लोके कर्मणा नोपबध्यते ॥३४॥

जो सर्वकाल गीताके ही अभ्यासमें निरत है वह प्रारब्धवशसे संसार भी भोगता है तो भी वह मुक्त और सुखी है, तथा कर्मके द्वारा बंधनमें नहीं आ सकता ॥ ३४ ॥

महापापादिपापानि गीताऽध्यायी करोति चेत् ।
न किंचित्स्पृशते तस्य नलिनीदलमम्भसा ॥३५॥

जो नित्य गीताका श्रवण, पठन मनन करता हो और वह दैवयोगसे भूलमें ब्रह्महत्यादिक महापाप भी करडाले तो भी जलसे कमल पत्रके समान लिप्त नहीं होता है ॥ ३५ ॥

स्नातो वा यदि वाऽस्नातः शुचिर्वा यदिवाऽशुचिः ।
विभूतिं विश्वरूपं च संस्मरन्सर्वदा शुचिः ॥ ३६ ॥

स्नान किये हो अथवा न किये हो पवित्र हो अथवा अपवित्र हो, विभूतियोग और विश्वरूपदर्शन अध्यायको पढ़ता हुआ मनुष्य सदा पवित्र रहता है ॥ ३६ ॥

अनाचारोद्भवं पापमवाच्यादि कृतं च यत् ।
अभक्ष्यभक्षजं दोषमस्पर्शस्पर्शजं तथा ॥ ३७ ॥
ज्ञाताज्ञातकृतं नित्यमिन्द्रियैर्जनितं च यत् ।
तत्सर्वं नाशमायाति गीतापाठेन तत्क्षणात् ॥३८॥

जो अनाचारसे और जो निन्दित शब्द बोलनेसे, अभक्ष्य-भक्षणसे, एवं न छूने योग्यके छूनेसे पाप हुए हों; तथा जो जान और अजानमें नित्य इंद्रियोंसे पाप होते हैं वे सब गीतापाठसे तत्काल नष्ट हो जाते हैं ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

सर्वत्र प्रतिभोक्ता च प्रतिग्राही च सर्वशः ।
गीतापाठं प्रकुर्वाणो न लिप्येत कदाचन ॥ ३९ ॥

जो सर्वत्र भोजन करता हो, सर्वत्र प्रतिग्रह लेता हो वह भी गीतापाठ करने पर पापोंसे लिप्त नहीं होता ॥ ३९ ॥

रत्नपूर्णां महीं सर्वां प्रगृह्यातिविधानतः ।
गीतापाठेन चैकेन शुद्धः स्फटिकवत्सदा ॥ ४० ॥

विधिहीन रत्नपूरित पृथिवीका दान भी लेकर एक गीतापाठसे शुद्धस्फटिकमणिके समान निष्पाप होता है ॥ ४० ॥

यस्यान्तःकरणं नित्यं गीतायां रमते सदा ।
सर्वाग्निकः सदा जापी क्रियावान्स च पण्डितः॥४१॥

जिसका अंतःकरण सदा गीतामें रमता हो वह सर्व अग्निहोत्री, सदा जप करनेवाला, क्रियावान् और पंडित है ॥ ४१ ॥

दर्शनीयः स धनवान्स योगी ज्ञानवानति ।
स एव याज्ञिको ध्यानी सर्ववेदार्थदर्शकः ॥ ४२ ॥

वही दर्शनयोग्य है, वही धनवान्, योगी, ज्ञानवान्, याज्ञिक ध्यानी और सर्ववेदोंके अर्थको देखनेवाला है ॥ ४२ ॥

गीतायाः पुस्तकं यत्र नित्यं पाठे प्रवर्तते ।
तत्र सर्वाणि तीर्थानि प्रयागादीनि भूतले ॥ ४३ ॥

गीताका पुस्तक जहां नित्य पाठमें वर्तमान हो वहां पृथिवीभरके सर्व प्रयागादितीर्थ सदा रहते हैं ॥ ४३ ॥

निवसन्ति सदा गेहे देहे देशे सदैव हि।
सर्वे देवाश्च ऋषयो योगिनः पन्नगाश्च ये ॥ ४४ ॥

और उस देशमें, घरमें और देहमें भी सब देव, ऋषि, योगी और पन्नग भी सदा निवास करते हैं ॥ ४४ ॥

गोपालबालकृष्णोऽपि नारदध्रुवपार्षदैः
सहायो जायते शीघ्रं यत्र गीता प्रवर्त्तते ॥ ४५ ॥

जहां गीता प्रवृत्त होती है वहां नारद, ध्रुव और सर्व पार्षदों-सहित गोपाल बालकृष्ण शीघ्र ही सहायक होते हैं ॥ ४५ ॥

यत्र गीताविचारश्च पठनं पाठनं तथा।
तत्राहं निश्चितं पार्थ निवसामि सदैव हि ॥ ४६ ॥

श्रीकृष्ण अर्जुनसे कहते हैं कि हे पार्थ! जहां नित्य गीताका विचार एवं पठन–पाठन होता है वहां मैं निश्चय सर्वदा रहता हूँ४६

गीता मे हृदयं पार्थ गीता मे सारमुत्तमम्।
गीता मे ज्ञानमत्यग्रयं गीता मे ज्ञानमक्षयम् ॥४७॥

हे अर्जुन! गीता मेरा हृदय है, गीता मेरा उत्तम सार है, गीता मेरा अतिअग्रज्ञान और अक्षय ज्ञान ही है ॥ ४७ ॥

गीता मे चोत्तमं स्थानं गीता मे परमं गृहम्।
गीताज्ञानं समाश्रित्य त्रिलोकीं पालयाम्यहम्४८॥

गीता मेरा उत्तम स्थान है और गीता मेरा उत्तम गृह है, इसी गीताके ज्ञानको धारण करके मैं तीनों लोकोंको पालता हूँ ४८॥

गीता मे परमा विद्या ब्रह्मरूपा न संशयः।
अर्द्धमात्राक्षरा नित्या स्वनिर्वाच्यपदात्मिका ॥४९॥

गीता मेरी उत्तम विद्या है, गीता ब्रह्मरूप है, इसमें संशय नहीं।

अर्द्धमात्रा, नाशरहित, सनातन, अनिर्वाच्यपदरूप ऐसी परा वाणीरूप मेरी यह गीता है ॥ ४९ ॥

गीतानामानि वक्ष्यामि गुह्यानि शृणु पाण्डव ।
कीर्त्तनात्सर्वपापानि विलयं यान्ति तत्क्षणात् ॥५०॥

हे पांडव ! गीताके जो गुप्त नाम हैं उन्हें मैं तुमसे कहता हूँ जिनके कीर्तनसे तत्काल सर्व पाप क्षय हो जाते हैं ॥ ५० ॥

अथ गीतानामानि ।

गीता गङ्गा च गायत्री सीता सत्या सरस्वती ।
ब्रह्मविद्या ब्रह्मवल्ली त्रिसन्ध्या मुक्तगेहिनी ॥ ५१ ॥
अर्द्धमात्रा चिदानन्दा भवघ्नी भयनाशिनी ।
वेदत्रयी परानन्ता तत्त्वार्थज्ञानमञ्जरी ॥ ५२ ॥

अब गीताके नाम कहते हैंः—गीता १, गंगा २, गायत्री ३, सीता ४, सत्या ५, सरस्वती ६, ब्रह्मविद्या ७, ब्रह्मवल्ली ८, त्रिसंध्या ९, मुक्तगेहिनी १०, अर्द्धमात्रा ११, चिदानंदा १२, भवघ्नी १३, भयनाशिनी १४, वेदत्रयी १५, परा १६, अनंता १७ और तत्त्वार्थज्ञानमञ्जरी १८ ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

इत्येतानि जपन्नित्यं नरो निश्चलमानसः ।
ज्ञानसिद्धिं लभेच्छीघ्रं तथान्ते परमं पदम् ॥५३॥

गीताके इन १८ नामोंको नित्य मन स्थिर करके जपता रहे तो शीघ्र ही ज्ञानसिद्धिको प्राप्त होके अंतमें मोक्षको प्राप्त होता है ५३॥

पाठेऽसमर्थः संपूर्णे तदर्द्धं पाठमाचरेत् ।
तदा गोदानजं पुण्यं लभते नात्र संशयः ॥ ५४ ॥

जो संपूर्ण पाठ न कर सके तो आधी गीताका अर्थात् नव अध्यायोंका पाठ करे तो एक गोदानका पुण्य प्राप्त होता है इसमें संशय नहीं ॥ ५४ ॥

षडंशं जपमानस्तु गङ्गास्नानफलं लभेत्।
त्रिभागं पठमानस्तु सोमयागफलं लभेत्॥ ५५॥

छठे अंश (तीन अध्याय) का नित्य पाठ करे तो गंगास्नानका फल मिलाता है और तीसरे भाग (छः अध्याय) का नित्य पाठ करनेसे सोमयागका फल प्राप्त होता है॥ ५५॥

तथाऽध्यायद्वयं नित्यं पठमानो निरन्तरम्।
इन्द्रलोकमवाप्नोति कल्पमेकं वसेद्ध्रुवम्॥ ५६॥

दो अध्यायोंका नित्य पाठ करता रहे तो इंद्रलोकको प्राप्त होके वहां एक कल्प वास करता है॥ ५६॥

एकमध्यायकं नित्यं पठते भक्तिसंयुतः
रुद्रलोकमवाप्नोति गणो भूत्वा वसेच्चिरम्॥ ५७॥

जो एक ही अध्यायका निरंतर नियमसे भक्तिपूर्वक पाठ करता है तो वह रुद्रलोकको प्राप्त होकर वहां शंकरका गण होके बहुत कालपर्यंत अर्थात् कल्पपर्यंत निवास करता है॥ ५७॥

अध्यायार्द्धं च पादं वा नित्यं यः पठते जनः।
स प्राप्नोति रवेर्लोकं मन्वन्तरशतं समाः॥ ५८॥

जो मनुष्य गीताका आधा अथवा पाव अध्यायका भी नित्य नियमसे पाठ करता रहे तो वह सूर्यलोकमें सौ मन्वंतरके वर्षोंपर्यंत वास करता है॥ ५८॥

गीतायाः श्लोकदशकं सप्त पञ्च चतुष्टयम्।
त्रिकद्विकैकमर्द्धं वा श्लोकानां च पठेन्नरः।
चन्द्रलोकमवाप्नोति वर्षाणामयुतायुतम्॥ ५९॥

जो गीताके दश श्लोक अथवा सात, पांच, चार, तीन, दो, एक,

अथवा आधे श्लोकका भी निरंतर पठन करे तो अयुतायुतवर्ष अर्थात् दशकोटिवर्ष (१०,००,००,०००) चंद्र लोकमें वास करता है ॥ ५९ ॥

गीतार्थमेककालेऽपि श्लोकमध्यायमेव च ।
स्मरंस्त्यक्त्वा जनो देहे प्रयाति परमं पदम् ॥६०॥

जो एककाल भी गीताके एक श्लोकका अथवा अध्यायका अर्थ स्मरणकरताहुआ देहको त्यागे तो मोक्षको प्राप्त होताहै॥६०॥

गीतार्थं वापि पाठं वा शृणुयादन्तकालतः ।
महापातकयुक्तोऽपि मुक्तिभागी भवेज्जनः ॥६१॥

जो अंतकालके समयमें गीताका अर्थ अथवा पाठ सुनता हुआ देहत्याग करता है वह महापातकी हो तो भी मुक्त हो जाता है ६१॥

गीतापुस्तकसंयुक्तः प्राणांस्त्यक्त्वा प्रयाति यः ।
स वैकुण्ठमवाप्नोति विष्णुना सह मोदते ॥ ६२ ॥

जो गीताके पुस्तकयुक्त प्राणोंको त्यागे सो विष्णुलोकको प्राप्त होके विष्णुके समीप आनंद करता है ॥ ६२ ॥

गीताध्यायसमायुक्तो मृतो मानुषतां व्रजेत् ।
गीताभ्यासं पुनः कृत्वा लभते मुक्तिमुत्तमाम्॥६३॥

जो मरण समयमें गीता पुस्तकका एक अध्याय भी समीप हो तो वह फिर मनुष्य जन्म पाकर गीताभ्यास करके मुक्त होजाता है६३

गीतोच्चारणसंयुक्तो म्रियमाणो गतिं लभेत् ।
यद्यत्कर्म च सर्वत्र गीतापाठं प्रकीर्त्तयेत् ॥
तत्तत्कर्म च निर्दोषं कृत्वा पूर्णमवाप्नुयात् ॥६४॥

मरते समय भी जो गीता ऐसा उच्चारण करके मरे तो भी मुक्त हो जाता है और जो जो कर्म करे उस उसमें गीता पाठ करे तो निर्दोष कर्मका संपूर्ण फल प्राप्त होता है ॥ ६४ ॥

पितॄनुद्दिश्य यः श्राद्धे गीतापाठं करोति वै।
संतुष्टाः पितरस्तस्य निरयाद्यान्ति सद्गतिम् ॥६५॥

जो श्राद्धमें पितरोंके निमित्त गीताका पाठ करे तो वे पितर संतुष्ट होते हुए नरकसे मुक्त हो जाते हैं ॥ ६५ ॥

गीतापाठेन संतुष्टाः पितरः श्राद्धतर्पिताः।
पितृलोकं प्रयान्त्येव पुत्राशीर्वादतत्पराः ॥ ६६ ॥

श्राद्ध एवं गीतापाठसे प्रसन्न होकर पितृगण पुत्रको आशीर्वाद देते हुए पितृलोकको जाते हैं ॥ ६६ ॥

लिखित्वा धारयेत्कण्ठे बाहुदण्डे च मस्तके।
नश्यन्त्युपद्रवाः सर्वे विघ्नरूपाश्च दारुणाः ॥ ६७ ॥

गीताको लिखकर गलेमें, भुजापर अथवा मस्तकमें धारण करें तो उसके विघ्नरूप दारुण उपद्रव नष्ट हो जाते हैं ॥ ६७ ॥

गीतापुस्तकदानं च धेनुपुच्छसमन्वितम्।
दत्त्वा तत्सद्द्विजे सम्यक्कृतार्थो जायते जनः॥६८॥

गोदान देते समय गौकी पूँछसहित हाथमें गीताका पुस्तक लेकर जिसने श्रेष्ठ ब्राह्मणको दान दिया वह सब कर चुका ॥६८॥

पुस्तकं हेमसंयुक्तं गीतायाः शुद्धमानसः।
दत्त्वा विप्राय विदुषे जायते न पुनर्भवे ॥ ६९ ॥

यदि सुवर्णसंयुक्त गीतापुस्तकका दान शुद्धमनसे विद्वान् ब्राह्मणको दे तो फिर जन्म नहीं लेना पड़ता ॥ ६९ ॥

शतपुस्तकदानं च गीतायाः प्रकरोति यः।
स याति ब्रह्मसदनं पुनरावृत्तिवर्जितम् ॥ ७० ॥

जो गीताके सौ पुस्तकोंका दान करे तो जिस लोकसे फिर यहाँ नहीं जन्मता है उस वैकुण्ठको जाता है ॥ ७० ॥

गीतादानप्रभावेण सप्तकल्पावधीः समाः ।
विष्णुलोकमवाप्नोति विष्णुना सह मोदते ॥ ७१ ॥

गीतादानके प्रभावसे विष्णुलोकमें सात कल्पपर्यंत विष्णुके साथ रहके आनंद करता है ॥ ७१ ॥

सम्यक् श्रुत्वा च गीतार्थं पुस्तकं यः प्रदापयेत् ।
तस्मै प्रीतोऽस्मिभगवान्ददामि मनसेप्सितम्॥७२॥

श्रीकृष्ण कहते हैं कि जो गीताका अर्थ सुनकर पुस्तकका दान करता है उसको मनोवांछित फल देता हूं॥ ७२ ॥

देहं मानुषमाश्रित्य चातुर्वर्ण्येषु भारत ।
न शृणोति पठत्येव गीताममृतरूपिणीम् ॥ ७३ ॥
हस्तात्त्यक्त्वाऽमृतं प्राप्तं कष्टात्क्ष्वेडं समश्नुते ।
पीत्वा गीतामृतं लोके लब्ध्वा मोक्षं सुखी भवेत्७४

जो मनुष्य देह पाकर इस अमृतरूपिणी गीताको न पढ़ता है और न सुनता है वह मानो हाथमें आये हुए अमृतको त्यागके विषको कष्टसे पीता है; क्योंकि इस गीतारूप अमृतका पान करके मोक्षको प्राप्त होके सुखी होता है ॥ ७३ ॥ ७४ ॥

जनैः संसारदुःखार्त्तैर्गीताज्ञानं च यैः श्रुतम् ।
संप्राप्तममृतं तैश्च गतास्ते सदनं हरेः ॥ ७५ ॥

संसारदुःखकरके पीड़ित जिन मनुष्योंने इस गीताके ज्ञानको सुना वे अमृत होकर विष्णुलोकको प्राप्त होते हैं ॥ ७५ ॥

गीतामाश्रित्य बहवो भूभुजो जनकादयः ।
निर्धूतकल्मषा लोके गतास्ते परमं पदम् ॥ ७६ ॥

इस गीताका आश्रय करके बहुतसे जनकादिक राजा पापरहित होकर परमपदको प्राप्त हुए हैं ॥ ७६ ॥

गीतासु न विशेषोऽस्ति जनेषूच्चावचेषु च ।
ज्ञानेष्वेव समग्रेषु समा ब्रह्मस्वरूपिणी ॥ ७७ ॥

गीतामें नीच ऊंचका विशेष नहीं, आत्मा सबमें समान है; इससे यह ब्रह्मस्वरूपिणी है ॥ ७७ ॥

योऽभ्यसूयति गीतां च निन्दां वा प्रकरोति च ।
प्राप्नोति नरकं घोरं यावदाभूतसंप्लवम् ॥ ७८ ॥

जो गीताकी ईर्षा और निंदा करता है वह प्रलयपर्यंत नरकमें रहता है ॥ ७८ ॥

अहंकारेण मूढात्मा गीतार्थं नैव मन्यते ।
कुम्भीपाके स पच्येत यावत्कल्पलयो भवेत्॥७९॥

जो अहंकारसे गीताके अर्थको नहीं मानता है वह प्रलयकालपर्यंत कुम्भीपाक नरकमें पचता है ॥ ७९ ॥

गीतार्थं वाच्यमानं यो न शृणोति समीपतः ।
श्वसूकरभवां योनिमनेकां सोऽधिगच्छति ॥ ८० ॥

जो बांचते हुए गीतापाठको समीप जाकर नहीं सुनता है वह कुत्ता और सूकरकी योनियोंमें बारंबार जन्म पाता है ॥८०॥

चौर्यं कृत्वा च गीतायाः पुस्तकं यः समानयेत् ।
न तस्य स्यात्फलं किंचित्पठनं च वृथा भवेत् ॥८१॥

जो गीताकी पुस्तक चोरीसे लाकर उसपर पाठ करे तो उसको पाठका फल किंचिन्मात्र भी नहीं मिलता, किन्तु वृथा परिश्रम होता है ॥ ८१ ॥

यः श्रुत्वा नैव गीतार्थं मोदते परमादरात्
नैवाप्नोति फलं लोके प्रमादाच्च वृथा श्रमम् ॥८२॥

जो गीताके अर्थको सुनके अति आदरसे आनंदित नहीं होता उसको संसारमें (कुछ भी) फल नहीं मिलता, किन्तु प्रमादसे उसका परिश्रम वृथा होता है ॥ ८२ ॥

गीतां श्रुत्वा हिरण्यं च पट्टाम्बरप्रवेष्टनम् ।
निवेदयेच्च तद्वेष्ट्य प्रीतये परमात्मनः ॥ ८३ ॥

गीताको सुनके सुवर्ण और पुस्तक लपेटनेका रेशमी वस्त्र उसपर लपेटकर परमात्माकी प्रीतिकेवास्ते बाँचनेवालेको देनाचाहिये ८३

वाचकं पूजयेद्भक्त्या द्रव्यवस्त्राद्युपस्करैः
अन्नैर्बहुविधैः प्रीत्या तुष्यतां भगवानिति ॥ ८४ ॥

जिससे भगवान् प्रसन्न हो जायँ,इस बुद्धिसे द्रव्य, वस्त्र,आभूषणादिकोंकरके वक्ताका पूजनकरके नानाप्रकारके अन्न देनाचाहिये ८४

माहात्म्यमेतद्गीतायाः कृष्णप्रोक्तं सनातनम् ।
गीतान्ते पठते यस्तु यथोक्तं फलमाप्नुयात् ॥८५॥

यह श्रीकृष्णका कहा हुआ सनातनगीताका माहात्म्य है इसको गीतापाठ करके अंतमें पढ़े तो यथोक्त फल प्राप्त होता है ॥८५॥

गीतायाः पठनं कृत्वा माहात्म्यं नैव यः पठेत् ।
वृथा पाठफलं तस्य श्रम एव हि केवलम् ॥ ८६ ॥

गीता पाठ करके माहात्म्यको न बाँचे तो उसके पाठ करनेका श्रम वृथा ही है अर्थात् पाठका फल नहीं पाता है ॥८६॥

एतन्माहात्म्यसंयुक्तं गीतापाठं करोति यः ।
श्रद्धया यः शृणोत्येव दुर्लभां गतिमाप्नुयात् ॥८७॥

जो इस माहात्म्यके संयुक्त गीतापाठ करेगा अथवा सुनेगा वह दुर्लभ मोक्षपदको पावेगा ॥ ८७ ॥

श्रुत्वा पठित्वा गीतां च माहात्म्यं यः शृणोति वै ।
तस्य पुण्यफलं लोके भवेद्धि मनसेप्सितम् ॥८८॥

इति श्रीमद्वाराहपुराणे सूतशौनकसंवादे श्रीकृष्णप्रोक्तं
श्रीमद्भगवद्गीतामाहात्म्यं संपूर्णम् ॥

जो गीताको सुनकर और पढ़कर माहात्म्यको पढ़ते सुनते हैं वे मनइच्छित फलको पाते हैं ॥ ८८ ॥

इति श्रीमत्सुकुलसीतारामात्मजपण्डितरघुनाथप्रसादविरचिता श्रीमद्भगवद्गीता-
माहात्म्यचन्द्रिकाव्याख्या समाप्तिमगात् ॥

श्रीगणेशाय नमः ।

श्रीमद्भगवद्गीता ।

सान्वय-अमृततरंगिणीभाषाटीकासहिता ।



श्रीर्जयति ।

धृतराष्ट्र उवाच ।

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः ।
मामकाः पांडवाश्चैव किमकुर्वत संजय ॥ १ ॥

प्रणम्य परमात्मानं कृष्णं रामानुजं गुरुम् ।
गीताव्याख्यामहं कुर्वे गीतामृततरंगिणीम् ॥

जब श्रीकुरुक्षेत्रमें दुर्योधनादिक धृतराष्ट्रके पुत्र और युधिष्ठिरआदिक पांडुके पुत्र अपनी अपनी सेनाओंको लेकर युद्ध करनेके लिये तैयार हुए तब हस्तिनापुरमें धृतराष्ट्र संजयसे पूछने लगे हे संजय ! धर्मस्थल कुरुक्षेत्रमें युद्धकी इच्छावाले इकट्ठे हुए मेरे पुत्र और पांडुके पुत्र (युधिष्ठिरादिक) निश्चयकरके क्या करते हुए (सो कहो) ॥ १ ॥

संजय उवाच ।

दृष्ट्वा तु पांडवानीकं व्यूढं दुर्योधनस्तदा ।
आचार्यमुपसंगम्य राजा वचनमब्रवीत् ॥ २ ॥

ऐसे धृतराष्ट्रके वाक्य सुनकर संजय कहने लगे कि हे राजन् ! राजा दुर्योधने व्यूहरचनायुक्त पांडवोंकी सेनाको देखकर तब द्रोणाचार्यके समीप जाकर वचन बोलते हुए ॥ २ ॥

पश्यैतां पांडुपुत्राणामाचार्य महतीं चमूम् ।
व्यूढां द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता ॥ ३ ॥

हे आचार्य ! जो तुम्हारा शिष्य बुद्धिमान् ऐसा द्रुपदका पुत्र धृष्टद्युम्न उसकरके यथायोग्यस्थानोंपर स्थापित पांडुपुत्रोंकी ईस सर्वोत्तम सेनांको आप देखो ॥ ३ ॥

अत्र शूरा महेष्वासा भीमार्जुनसमा युधि ।
युयुधानो विराटश्च द्रुपदश्च महारथः ॥ ४ ॥

इस सेनामें जो युद्धकरनेमें भीम अर्जुनके समान बड़े धनुषधारी शूर हैं वे ये कि; युयुधान और विराट और महारथ द्रुपद ॥४॥

धृष्टकेतुश्चेकितानः काशिराजश्च वीर्यवान् ।
पुरुजित्कुंतिभोजश्च शैब्यश्च नरपुंगवः ॥ ५ ॥

धृष्टकेतु चेकितान और बली काशीका राजा तथा पुरुजित् और कुंतिभोज और नरोंमें श्रेष्ठ शैब्य ॥ ५ ॥

युधामन्युश्च विक्रान्त उत्तमौजाश्च वीर्यवान् ।
सौभद्रो द्रौपदेयाश्च सर्व एव महारथाः ॥ ६ ॥

प्राक्रमी और उत्तमशक्तिवाला और वीर्यवान् युधामन्यु, सुभद्राका पुत्र अभिमन्यु और सर्व द्रौपदीके पुत्र अर्थात् प्रतिविन्ध्यादि पांच ये महारथ ही हैं ॥ ६ ॥

अस्माकं तु विशिष्टा ये तान्निबोध द्विजोत्तम ।
नायका मम सैन्यस्य संज्ञार्थं तान्ब्रवीमि ते ॥७॥

अब हे द्विजोत्तम ! जो हमारेमें हमारी सेनाके श्रेष्ठ सेनापति हैं उनको जाननेके वास्ते तुम्हारेसे कहता हूं उन्हें जानो ॥ ७ ॥

भवान् भीष्मश्च कर्णश्च कृपश्च समितिंजयः ।
अश्वत्थामा विकर्णश्च सौमदत्तिस्तथैव च ॥ ८ ॥

जो हमारी सेनामें मुख्य हैं उनमें एक आप हो और भीष्म और कर्ण और संग्रामके जीतनेवाले कृपाचार्य अश्वत्थामा और विकर्ण और वैसा ही राजा सोमदत्तका पुत्र भूरिश्रवा ॥ ८ ॥

अन्ये च बहवः शूरा मदर्थे त्यक्तजीविताः ।
नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदाः ॥ ९ ॥

मेरे वास्ते त्यागा है जीवन जिनने और नानाशस्त्रके प्रहार करनेवाले और भी बहुत शूर सर्व युद्धचतुर हैं ॥ ९ ॥

अपर्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितम् ।
पर्याप्तं त्विदमेतेषां बलं भीमाभिरक्षितम् ॥ १० ॥

हमारी सेना भीष्मकरके रक्षित है इससे असमर्थ है और इनकी यह सेना भीमकरके रक्षित है इससे बलिष्ठ है तात्पर्य यह कि, भीष्म उभयपक्षपाती है ॥ १० ॥

अयनेषु च सर्वेषु यथाभागमवस्थिताः ।
भीष्ममेवाभिरक्षंतु भवंतः सर्व एव हि ॥ ११ ॥

इससे सर्व नाकेपर यथायोग्य भाग बनाये भये खड़े रहके तुम सब ही निश्चयकरके भीष्मका ही संरक्षण करो ॥ ११ ॥

तस्य संजनयन्हर्षं कुरुवृद्धः पितामहः ।
सिंहनादं विनद्योच्चैः शंखं दध्मौ प्रतापवान् ॥१२॥

ऐसे सुनके बड़े प्रतापवान् कौरवनमें वृद्ध पितामह भीष्म उस दुर्योधनको हर्ष उत्पन्न करते करते ऊंचे स्वरसे सिंहनादसे गर्ज कर शंखको बजाते भये ॥ १२ ॥

ततः शंखाश्च भेर्यश्च पणवानकगोमुखाः ।
सहसैवाभ्यहन्यंत स शब्दस्तुमुलोऽभवत् ॥ १३ ॥

तब शंख और भेरी और तासे नगारे रणसिंहे एक संग ही बजते भये सो शब्द मिश्रित भारी होता भयो ॥ १३ ॥

ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यंदने स्थितौ ।
माधवः पांडवश्चैव दिव्यौ शंखौ प्रदध्मतुः ॥१४॥

तब जिसमें श्वेत घोड़े जोड़े हैं ऐसे श्रेष्ठ रथपर बैठे हुए श्रीकृष्ण और अर्जुनने दिव्य शंखोंको बजाते हुए ॥ १४ ॥

पांचजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनंजयः ।
पौंड्रं दध्मौ महाशंखं भीमकर्मा वृकोदरः ॥ १५ ॥

श्रीकृष्णने पांचजन्यको, अर्जुनने देवदत्तको, भयंकर है कर्म जिसका ऐसा वृकोदर अर्थात् तीक्ष्णाग्नि उदरवाला भीम पौंड्र-नाम महाशंखको बजाते हुए ॥ १५ ॥

अनंतविजयं राजा कुंतीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ ॥ १६ ॥

कुंतीका पुत्र राजा युधिष्ठिर अनंतविजय शंखको,नकुल और स-हदेव सुघोष और मणिपुष्पक शंखोंको क्रमसे बजाते हुए अर्थात् नकुल सुघोषको और सहदेवने मणिपुष्पकको बजाया ॥१६॥

काश्यश्च परमेष्वासः शिखंडी च महारथः ।
धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्चापराजितः ॥ १७ ॥

श्रेष्ठ धनुषवाला काशीका राजा और महारथ शिखंडी,धृष्टद्युम्न और विराट और शत्रुओंकरके अजित सात्यकी यादव ॥१७॥

द्रुपदो द्रौपदेयाश्च सर्वशः पृथिवीपते ।
सौभद्रश्च महाबाहुः शंखान्दध्मुः पृथक्पृथक् ॥१८॥

हे पृथ्वीनाथ ! राजा द्रुपद और सर्व द्रौपदीके पुत्र और महा-बाहु अभिमन्यु ये न्यारे न्यारे शंख बजाते हुए ॥ १८ ॥

स घोषो धार्त्तराष्ट्राणां हृदयानि व्यदारयत् ।
नभश्च पृथिवीं चैव तुमुलो व्यनुनादयन् ॥ १९ ॥

सो मिश्रित बड़ा ऐसा शब्द आकाश और पृथिवीको शब्दाय-मान करता करता धृतराष्ट्रके पुत्रोंके हृदयोंको विदीर्ण करता हुआ ॥ १९ ॥

अथ व्यवस्थितान् दृष्ट्वा धार्त्तराष्ट्रान्कपिध्वजः।
प्रवृत्ते शस्त्रसंपाते धनुरुद्यम्य पांडवः ॥ २० ॥
हृषीकेशं तदा वाक्यमिदमाह महीपते।
सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत ॥ २१ ॥

हे महीपते! तब शस्त्रपातप्रवृत्तसमयमें कपिध्वज पांडव अर्जुन तुम्हारे पुत्रोंको युद्धार्थ खड़े देखके तब धनुषको ऊंचा करके श्रीकृष्णसे ये वाक्य बोले कि हे अच्युत! दोनों सेनाओंके मध्यमें मेरे रथको स्थापित करो ॥ २० ॥ २१ ॥

यावदेतान्निरीक्षेऽहं योद्धुकामानवस्थितान्।
कैर्मया सह योद्धव्यमस्मिन् रणसमुद्यमे ॥ २२ ॥

मैं प्रथम इन युद्धकी इच्छावाले खड़े हुओंको देखूंगा कि इस रणखेतमें मुझको किनके साथ युद्ध करना योग्य है ॥ २२ ॥

योत्स्यमानानवेक्षेऽहं य एतेऽत्र समागताः।
धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेर्युद्धे प्रियचिकीर्षवः ॥ २३ ॥

जो ये जितने दुर्बुद्धि धृतराष्ट्रपुत्रके युद्धमें प्रियकी इच्छावाले यहां इकट्ठे हुए हैं इन युद्ध करनेवालोंको मैं देखूंगा ॥ २३ ॥

संजय उवाच।

एवमुक्तो हृषीकेशो गुडाकेशेन भारत।
सेनयोरुभयोर्मध्ये स्थापयित्वा रथोत्तमम् ॥ २४ ॥
भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषां च महीक्षिताम्।
उवाच पार्थ पश्यैतान् समवेतान् कुरूनिति ॥ २५ ॥

संजय धृतराष्ट्रसे कहते हैं कि हे भारत! अर्जुनकरके ऐसे कहे भये श्रीकृष्ण दोनों सेनाओंके बीचमें श्रेष्ठ रथको स्थापित करके भीष्म

और द्रोणाचार्यके सामने और सर्व राजाओंके सामने बोले कि हे पार्थ! ये इकट्ठे हुए जो कुरुवंशी हैं इनको देखो २४ ॥२५॥

तत्राऽपश्यत्स्थितान्पार्थः पितॄनथ पितामहान् ।
आचार्यान्मातुलान्भ्रातॄन्पुत्रान्पौत्रान्सखींस्तथा॥
श्वशुरान् सुहृदश्चैव सेनयोरुभयोरपि ॥ २६ ॥
तान्समीक्ष्य स कौंतेयः सर्वान् बंधूनवस्थितान् ।
कृपया परयाविष्टो विषीदन्निदमब्रवीत् ॥ २७ ॥

श्रीकृष्णजीके कहनेपर अर्जुनने उस रणमें खड़े हुए पितृ (पितासदृश भूरिवादिक काका) पितामह (भीष्म सोमदत्तादिक) आचार्य (द्रोणाचार्यादिक) मामा (शकुनि शल्यादिक) भ्राता (दुर्योधनादिक) पुत्र (द्रौपदीमें पांचोंसे भये जो पांच) पौत्र (लक्ष्मणादिकोंके पुत्र) तथा सखा (अश्वत्थामा जयद्रथादिक) ससुर (द्रुपदादिक) और सुहृद् (कृतवर्मादिक) इनको देखते भये ऐसे दोनों सेनाओंमें भी उन सर्व बंधुनको खड़े देखके वह कुंतीपुत्र अर्जुन अति कृपाकरके व्याप्त खेदित होते होते यह बोलते हुए ॥ २६॥ २७॥

अर्जुन उवाच ।

दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम् ।
सीदंति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति ॥
वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते ॥ २८ ॥ २९॥

अर्जुन कहते हैं कि हे कृष्ण ! युद्धकी इच्छावाले खडे हुए इन स्वजनोंको देखके मेरे गात्र शिथिल हो रहे हैं और मुख सूखता जाता है और मेरे शरीर में कंप और रोमांच होते हैं ॥ २८ ॥ २९ ॥

गांडीवं स्रंसते हस्तात्त्वक्चैव परिदह्यते ।
न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः ॥ ३० ॥

हाथसे गांडीवधनुष गिरा जाता है और त्वचा भी जरी जाती है और खड़े होनेको भी नहीं सकता हूं और मेरा मन भ्रमता सरीखा है ॥ ३० ॥

निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव ।
न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे ॥३१॥

और हे केशव ! निमित्त भी विपरीत देखता हूं और संग्राममें स्वजनोंको मारके फिर कल्याण भी नहीं देखता हूं ॥ ३१ ॥

न कांक्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च ।
किन्नो राज्येन गोविंद किं भोगैर्जीवितेन वा ॥३२॥

हे कृष्ण ! विजय और राज्य और सुख नहीं चाहता हूं हे गोविंद ! हमको राज्यकरके भोगकरके अथवा जीवनेकरके भी क्या प्रयोजन है ॥ ३२ ॥

येषामर्थे कांक्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च ।
त इमेऽवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च ३३॥

हमने जिनके वास्ते भोग, सुख और राज्य चाहा था वे ये प्राण और धनोंको त्यागके युद्धमें खड़े हैं ॥ ३३ ॥

आचार्याः पितरः पुत्रास्तथैव च पितामहाः ।
मातुलाः श्वशुराः पौत्राः श्यालाः संबंधिनस्तथा ३४

ये सर्व मेरे आचार्य,पितातुल्य काका,पुत्र और वैसे ही पितामह, मामा, ससुर,नाती पोता,साले तथा और संबंधी हैं ॥३४॥

एतान्न हंतुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन ।
अपि त्रैलोक्यराजस्य हेतोः किं नु महीकृते ३५॥

हे मधुसूदन! तीनों लोकोंके राज्यके वास्ते भी मुझको ये मारते हों तो भी इनको मारनेकी नहीं इच्छा करता हूं तो पृथिवीके वास्ते क्यों मारूंगा ॥ ३५ ॥

निहत्य धार्तराष्ट्रान्नः का प्रीतिः स्याज्जनार्दन ।
पापमेवाश्रयेदस्मान्हत्वैतानाततायिनः ॥ ३६ ॥

हे जनार्दन! धृतराष्ट्रके पुत्रोंको मारके हमको क्या प्रसन्नता होगी, इन आततायियोंको मारकर हमको पाप ही लगेगा ॥ आततायीलक्षण-"दोहा-अग्नि देइ विष देइ जो, क्षेत्रदारहर जोइ॥ धनहर सम्मुख शस्त्र कर, आततायि षट् होइ "॥ १ ॥ ३६ ॥

तस्मान्नार्हा वयं हन्तुं धार्तराष्ट्रान्स्वबान्धवान् ।
स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिनः स्याम माधव ॥ ३७ ॥

जिससे कि इनके मारनेका पाप ही होगा इससे हमारे बन्धु धृतराष्ट्रके पुत्रोंको मारनेके वास्ते हम नहीं योग्य हैं, हे माधव! निश्चयपूर्वक स्वजनोंको मारके कैसे सुखी होंगे ॥ ३७ ॥

यद्यप्येते न पश्यंति लोभोपहतचेतसः ।
कुलक्षयकृतं दोषं मित्रद्रोहे च पातकम् ॥ ३८ ॥
कथं न ज्ञेयमस्माभिः पापादस्मान्निवर्तितुम् ।
कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यद्भिर्जनार्दन ॥ ३९ ॥

हे जनार्दन! लोभकरके जिनके चित्त भ्रष्ट हो गये हैं ऐसे ये दुर्योधनादिक कुलक्षय करनेके दोषको और मित्रद्रोहमें पापको यद्यपि नहीं देखते हैं (नहीं जानते हैं) तो भी कुलक्षयकृत दोषको देखते हुए हम करके इस पापसे निवृत्त होनेके वास्ते कैसे न जानना चाहिये ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

कुलक्षये प्रणश्यंति कुलधर्माः सनातनाः ।
धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत ॥ ४० ॥

कुलके क्षय होनेसे सनातन कुलके धर्म नाश होते हैं, फिर धर्म नष्ट होनेसे सर्व कुलको अधर्म जीत लेता है अर्थात् कुलको अप्रतिष्ठित कर देता है ॥ ४० ॥

अधर्माऽभिभवात्कृष्ण प्रदुष्यंति कुलस्त्रियः ।
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसंकरः ॥ ४१ ॥

हे कृष्ण ! अधर्म करके कुलको अप्रतिष्ठित होनेसे कुलकी स्त्रीजन दुष्ट हो जायँगी हे वृष्णिवंशोद्भव ! उन दुष्ट स्त्रियोंमें वर्ण-संकर उत्पन्न होगा ॥ ४१ ॥

संकरो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च ।
पतंति पितरो ह्येषां लुप्तपिंडोदकक्रियाः ॥ ४२ ॥

जिससे कि जिनके पितृ पिंडोदकक्रिया प्राप्त हुए विना संसारमें पड़ते हैं इसीसे कुलघातियोंके कुलको वह वर्णसंकर नरक प्राप्तिके हेतु ही उत्पन्न होते हैं ॥ ४२ ॥

दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसंकरकारकैः ।
उत्साद्यंते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः॥४३॥

जो कुलघाती हैं उनके जो ये वर्णसंकरकारक दोष हैं उन करके जाति धर्म और सनातन कुलधर्म नष्ट होते हैं॥ ४३ ॥

उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन ।
नरके नियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम ॥ ४४ ॥

हे जनार्दन ! जिनके कुलधर्म नष्ट हो जाते हैं उन मनु-ष्योंका नरकमें अवश्य वास होता है ऐसा सुनते हैं ॥ ४४ ॥

अहो बत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम् ।
यद्राज्यसुखलोभेन हंतुं स्वजनमुद्यताः ॥ ४५ ॥

अहो ! कष्ट हमें बड़े पापको करनेको निश्चय किये हैं जो राज्य सुखँलोभ करके स्वँजनोंको मारनेका उद्योगं किये हैं॥४५॥

यदि मामप्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः ।
धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत् ॥ ४६ ॥

जो हाथमें शस्त्र लिये हुए धृतराष्ट्रके पुत्र अशस्त्रको और अप्रतीकारको अर्थात् जो मैं बदला नहीं लेता हूँ ऐसे मेरेको रणमें मारेंगे सो मारना भी मेरा अतिकल्याणरूप हो जायगा ॥ ४६ ॥

संजय उवाच ।

एवमुक्त्वाऽर्जुनः संख्ये रथोपस्थ उपाविशत् ।
विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्नमानसः ॥ ४७ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे अर्जुनविषादयोगो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

राजा धृतराष्ट्रसे संजय कहते हैं कि संग्राममें अर्जुन ऐसे कहके बाणसंयुक्त धनुष डालके शोकव्याकुलमन होते हुए रथके पिछाड़ी जाके रथमें बैठ गये ॥ ४७ ॥

इति श्रीमत्सुकुलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादविरचितायां गीतामृततरंगिण्यां प्रथमाध्यायप्रवाहः ॥ १ ॥

संजय उवाच ।

तं तथा कृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणम् ।
विषीदंतमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः ॥ १ ॥

राजा धृतराष्ट्रसे संजय कहते हैं कि जो प्रथम अध्यायमें करुणावाक्य कहे वैसी ही कृपा करके व्याप्त आंसुओंके भरनेसे

नेत्र व्याकुल विषादयुक्त उस अर्जुनसे मधुसूदन भगवान् ये वाक्य बोलते हुए ॥ १ ॥

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम् ।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ॥ २ ॥

कि; हे अर्जुन ! जो अज्ञानियोंके सेवनेयोग्य नरकको ले जानेवाला और अपकीर्ति करनेवाला यह मोह है वह तुमको ऐसे विषमस्थलमें कैसे प्राप्त हो गया ॥ २ ॥

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते ।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप ॥ ३ ॥

हे पृथाके पुत्र ! तुम कायरताको न ग्रहण करो तुममें यह नहीं योग्य है, हे परंतप ! तुच्छ हृदयकी दुर्बलताकारक कायरताको छोड़के खड़े हो जाओ ॥ ३ ॥

अर्जुन उवाच ।

कथं भीष्ममहं संख्ये द्रोणं च मधुसूदन ।
इषुभिः प्रतियोत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन ॥ ४ ॥

ऐसे कृष्णके वाक्य सुन अर्जुन बोले कि हे मधुसूदन ! मैं संग्राममें भीष्म और द्रोणाचार्यसे बाणोंकरके कैसे युद्ध करूंगा? हे अरिसूदन ! ये दोनों पूजनेयोग्य हैं। यहां मधुसूदन कहनेका तात्पर्य यह है कि आप दैत्यहंता हो तो सज्जनोंसे क्यों युद्ध कराते हो। अरिसूदन कहनेका तात्पर्य यह कि जो शत्रुनाशक हो तो भीष्मादिक पूज्योंपर बाणप्रहार क्यों कराते हो ? ॥ ४ ॥

गुरूनहत्वा हि महानुभावाञ्छ्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके । हत्वार्थकामांस्तु गुरूनिहैव भुंजीय भोगान् रुधिरप्रदिग्धान् ॥ ५ ॥

इस लोकमें अति उत्तम प्रभाववाले गुरुओंको मारे विना भिक्षाका अन्न भी खानेको कल्याण ही जानना और अर्थ याने द्रव्यकी है कामना जिनके ऐसे गुरुओंको मारके रक्तसे भरेहुए भोगोंको भोगूंगा ॥ ५ ॥

न चैतद्विद्मः कतरन्नो गरीयो यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः ॥ यानेव हत्वा न जिजीविषामस्तेऽवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः ॥ ६ ॥

यह भी नहीं जानते हैं कि हमें कौन बली है न जाने हम जीतेंगे किंवा वे हमको जीते, जिनको मारके हम जीना नहीं चाहते हैं वे धृतराष्ट्रके पुत्र सम्मुख ही खड़े हैं ॥ ६ ॥

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः ॥ यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ॥ ७ ॥

कार्पण्य यह कि हम इनको मारके कैसे जियेंगे तथा दोष जो कुलक्षयका दोष इन कार्पण्य और कुलक्षयदोषों करके मेरा क्षत्रिय स्वभाव विध्वंसित हो गया है इसीसे धर्ममें भी मेरा चित्त चकित हो रहा है जैसे कि क्षत्रियधर्म युद्ध अथवा भिक्षान्नभोजन इनमें कौन कल्याणकारक है यह विचार कर चित्त चकित है ऐसा मैं तुम्हारा शिष्य तुमको पूछता हूँ जो मेरे वास्ते निश्चय कल्याणदायक हो वही कहो तुम्हारे शरणागत मुझको सिखाओ ॥ ७ ॥

न हि प्रपश्यामि ममापनुद्याद्यच्छोकमुच्छोषणमिन्द्रियाणाम् ॥ अवाप्य भूमावसपत्नमृद्धं राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यम् ॥ ८ ॥

अरेरेरेरे ! बड़ा अनर्थ है कि जो पृथ्वीमें शत्रुरहित संपदायुक्त राज्यको और देवताओंके भी अधिपतित्वको पाकर मेरी इंद्रियोंके सुखानेवाले शोकको दूर करे उसको मैं नहीं देखता हूं॥८॥

संजय उवाच ।

एवमुक्त्वा हृषीकेशं गुडाकेशः परंतपः ।
न योत्स्य इति गोविंदमुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह ॥ ९ ॥

संजय धृतराष्ट्रसे कहने लगे कि शत्रुओंको संतापित करनेवाला तथा गुडाका जो निद्रा उसके जीतनेमें समर्थ ऐसा जो अर्जुन हृषीकेश याने इंद्रियोंके मालिक श्रीकृष्णको ऐसे कहके फिर नहीं युद्ध करूंगा ऐसे गोविंदसे कहके मौन हो गये ॥ ९॥

तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निव भारत ।
सेनयोरुभयोर्मध्ये विषीदंतमिदं वचः ॥ १० ॥

हे भरतवंश उत्पन्न धृतराष्ट्र ! दोनों सेनाओंके मध्यमें युद्धके उत्साहको त्यागके शोक कर रहा जो अर्जुन उससे हँसतेसरीखे श्रीकृष्णजी यह याने जो आगे कहेंगे सो वचन बोलते हुए ॥१०॥

श्रीभगवानुवाच ।

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे ।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचंति पण्डिताः ॥ ११ ॥

श्रीकृष्ण भगवानने निश्चय किया कि इसको धर्माधर्मका ज्ञान नहीं है, इससे यह धर्मको तो अधर्म और अधर्मको धर्म मान रहा है, परंतु धर्मको जानना चाहता है सो मोह गये विना यह कैसे जानेगा ? सो मोह आत्मदर्शन विना नष्ट होनेका नहीं, ज्ञान विना आत्मदर्शन होनेका नहीं, सो ज्ञान निष्काम कर्म विना हो-

नेका नहीं और अध्यात्मशास्त्र जो आत्म-अनात्म-विवेक उपदेश याने जीव और शरीरका विवेक उसका उपदेश इस विना निष्काम कर्म हो नहीं सकता, इससे अध्यात्मशास्त्रका ही उपदेश करो,ऐसा विचारके उपदेश करने लगे अब इस श्लोकसे लेकर अठारहवें अध्यायके छाँसठके श्लोकमें जो-"मा शुचः" ऐसा वाक्य है वहां पर्यंत गीताउपदेश है. यहां प्रथम भगवान् कहते हैं कि हे अर्जुन ! -"त्वम् अशोच्यान् अन्वशोचः" याने जो शोचनेयोग्य नहीं उनको शोचते हो और प्रज्ञावाद याने पंडितों सरीखीं जो बातें उनको भाषते याने कहते हो वे ऐसे कि, हमारे पितरोंके श्राद्ध और तर्पण न होनेसे वे स्वर्गसे नरकमें पड़ेंगे सो स्वर्गप्राप्ति और पड़ना श्राद्धादिक होने न होनेके स्वाधीन नहीं हैं; वे तो आपके करे पुण्यपापके स्वाधीन हैं"क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोके विशंति" इस प्रमाणसे वे पुण्य पाप सदेह आत्माके स्वाधीन हैं,केवल देहके स्वाधीन नहीं हैं। यद्यपि पुत्रादिकोंके किये हुए श्राद्धादिकोंका पुण्य प्राप्त होता है; कारण कि पुत्रादिक सदेह आत्मसंबंधी है;तथापि श्राद्ध न होनेसे स्वर्गसे पड़ना यह किसी कालमें भी होनेका नहीं;इस वास्ते 'गतासु' जो वे शरीर नित्य नाशधर्मी और 'अगतासु' जो जीव नित्य अमर एक रसहैं इससे "नाऽसतो विद्यते भावो नाऽभावो विद्यते सतः"इस प्रमाणसे पंडितजन इनका शोच नहीं करते हैं; इससे तुमको भी शोचना अयोग्य है. "स्वेस्वे कर्मण्यभिरतः सिद्धिं विंदति मानवः" इस प्रमाणसे स्वधर्म युद्ध ही कल्याणकारक है ॥ ११ ॥

नत्वेवाहं जातु नासं न त्वं "नेमे जनाधिपाः ।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ॥ १२ ॥

श्रीकृष्ण कहते हैं कि हे अर्जुन ! जो आत्मा याने जीवात्मा

परमात्मा हैं उनके स्वभाव सुनोः-"अहं सर्वेश्वर इतः पूर्वमनादौ काले जातु नासमपि त्वासमेव" अर्थात् मैं सर्वेश्वर इस समयसे प्रथम अनादिकालमें क्या न था ? क्योंकि, निश्चयकरके था "त्वं नासीः अपि तु आसीः एव" जैसा मैं था ऐसा क्या तू न था ? तू भी था । "इमे जनाधिपाः किं न आसन् अपि त्वासन् एव" ये सब राजा क्या न थे ? अर्थात् ये भी थे । "अतः परं सर्वे वयं किं न भविष्यामः अपि तु भविष्याम एव" इस कालसे अगाड़ी क्या हम तुम ये सर्व न होंगे? अर्थात् होंगे ही इससे आत्मा नित्य है अतः शोच करना वृथा है तथा जो यहां हम, तुम और ये ऐसा कहा इससे यह सिद्धांत हुआ कि, जीवात्मा और परमात्मा न्यारे न्यारे हैं यह न्यारापना ही सत्य है. इसीसे श्रीकृष्णजीने भी उपदेश किया, क्योंकि अज्ञानमोहित अर्जुनको मिथ्या उपदेश करनेके ही नहीं, इस न्यारेपनमें श्रुति भी प्रमाण हैं, जैसे-"नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामानिति" । अर्थ-जो एक नित्य चेतन परमात्मा है सो बहुत नित्य चेतन जीवोंकी कामनाको परिपूर्ण करता है । जो कोई कहे कि यह भेद अज्ञानकृत है तो उससे कहना कि यह परमार्थदृष्टिके अधिष्ठाता और आत्मयाथात्म्यसे सदा अज्ञानरहित नित्यस्वरूप परमपुरुष श्रीकृष्णमें अज्ञानकृत भेददर्शन कार्य होनेका नहीं तो भी कोई कृष्णको अज्ञ कहे तो उनकरके उपदिष्ट गीता अप्रमाण होती है । जो कोई कहे कि श्रीकृष्णने अभेद निश्चय किया है इससे वह भेद निराकृत है सो जले हुए वस्त्रके तुल्य बंधनकारक नहीं है ? तब कहना कि मृगतृष्णा निराकृत जानके फिर उसमें जल लेने न जायगा, जो गया तो वह अज्ञ है इसी तरह जो मिथ्या भेदका इसमें उपदेश दिया तो इस गीताका भी प्रमाण न मानना चाहिये ।

दूसरा यह कि भेद विना उपदेश भी नहीं बनेगा तथा परमात्मामें ऐसा भी होनेका नहीं कि प्रथम अज्ञ थे शास्त्राध्ययनसे ज्ञानी हुए, क्योंकि जिसको शास्त्राभ्याससे ज्ञान होता है उसको किसी समयमें अज्ञान भी होता है, सो नित्यज्ञानस्वरूप श्रीकृष्णमें यह भी नहीं हो सकता है। यहां श्रुति प्रमाण है जैसे-'यः सर्वज्ञः स सर्ववित्। पराऽस्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च" तथा यहां भी कहेंगे-"वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन। भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन" इत्यादि प्रमाणोंसे भेद ही सिद्ध होता है, और भेद विना उपदेश किसको करे? यहां कोई कहते हैं कि, अर्जुन कृष्णका प्रतिबिंब है, आपको आप ही उपदेश करते हैं? इसपर कहना कि दर्पण जल इत्यादिमें अपने प्रतिबिंबको देखकर जो बातें करे वह उन्मत्त याने चित्तभ्रष्ट सिर्री होता है, उसके वाक्य भी अप्रमाणित हैं, जिसको अभेदज्ञान है उसको उपदेश करनेका ही नहीं; न उसके गुरु हैं, न शिष्य हैं इससे यही सिद्ध हुआ कि परमात्मासे जीव न्यारे हैं॥ १२॥

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहांतरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥ १३ ॥

जैसे इस देहमें जीवकी कुमार अवस्था यौवन और जराअवस्था होती हैं वैसे देहांतरकी प्राप्ति भी होती है, परन्तु उसमें धीर याने ज्ञानी पुरुष नहीं मोहता है ॥ १३ ॥

मात्रास्पर्शास्तु कौंतेय शीतोष्णसुखदुःखदाः।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत१४॥

हे कुंतीपुत्र! मात्रा जो इंद्रियां, उनके स्पर्श जो शब्द स्पर्श रूप रस और गंध ये शीत उष्ण याने मृदु कठोर शब्द शीतोष्ण

शस्त्रप्रहारादिक और संयोगवियोगादिक दुःखके देनेवाले अनि-त्य और आगमापायी याने होते जाते रहते हैं, हे भारत ! तुम भरतवंशी हो उनको सहन करो ॥ १४ ॥

यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ ।
समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥ १५ ॥

हे पुरुषर्षभ ! सुख और दुःखे हैं सम जिसके ऐसे जिस ज्ञानी पुरुषको ये निश्चयकरके नहीं पीडा करते हैं सो मोक्ष जानेको समर्थ होता है ॥ १५ ॥

नाऽसतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः ॥१६॥

जो "गतासूनगतासूंश्च नानुशोचंति पंडिताः" इस वाक्यकरके आत्माका स्वाभाविक नित्यत्व और देहका नाशित्व समझके शोक न करना कहा उसीको अब 'नासतः' इत्यादिकरके खुला-सा दृढता करके कहते हैं कि असत् जो नाशवान् है उसकी स्थिरता नहीं होती है और सत् जो अविनाशी है उसका नाश नहीं होता, तत्त्वदर्शी पुरुषोंने इन दोनोंका भी सिद्धांत देखा है सोई आगे दो श्लोकोंमें खुलासा कहेंगे ॥ १६ ॥

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम् ।
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति ॥ १७ ॥

जिस आत्मतत्त्वकरके यह सर्व अचेतन तत्त्व व्याप्त है उस-को तो अविनाशी जानो ! इस अविनाशीका विनाश करनेको कोई नहीं समर्थ है ॥ १७ ॥

अंतवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः ।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युद्ध्यस्व भारत ॥१८॥

जो यह जीव अविनाशी है तथा अप्रमेय है याने यह इतना ही है ऐसा कहनेमें नहीं आता है तथा नित्य है याने सर्वदा एकसा है ऐसे जीवके ये देह नाशवंत कहे हैं हे अर्जुन ! इससे युद्ध करो ॥ १८ ॥

य एनं वेत्ति हंतारं यश्चैनं मन्यते हतम् ।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हंति न हन्यते ॥ १९ ॥

जो इस आत्माको मारनेवाला जानता है और जो इसको अन्यकरके मरा मानता है वे दोनों नहीं जानते हैं, क्योंकि यह न किसीको मारता है न किसी करके मरता है ॥ १९ ॥

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः ॥ अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥ २० ॥

यह आत्मा किसी कालमें भी जन्मता और मरता नहीं यह अजन्मा है नित्य सर्वकालमें पुराण याने जो पहिले था वही है, न भया है और फिर होनेवाला भी नहीं है, शरीरके मारनेपर भी नहीं मरता है ॥ २० ॥

वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम् ।
कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हंति कम् ॥ २१ ॥

जो इस आत्माको अजन्मा अक्षय नित्य अविनाशी जानता है तो हे अर्जुन ! सो वह पुरुष कैसे किसको मरवावता है और कैसे किसको मारता है ॥ २१ ॥

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि । तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥ २२ ॥

यद्यपि शरीर नष्ट होनेसे आत्माका नाश नहीं तो भी शरीर-वियोगका जो दुःख होताहै ऐसा अर्जुनका आशय जानके भगवान्

कहने लगे कि जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रोंको त्यागके और नवीनोंको ग्रहण करता है तैसे जीव पुराने शरीरोंको त्यागके और नवीन शरीरोंको प्राप्त होता है ॥ २२ ॥

नैनं छिंदंति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयंत्यापो न शोषयति मारुतः ॥ २३ ॥

सर्व शस्त्र भी इस आत्माको नहीं छेदि (काटि) सकते हैं अग्नि इसको नहीं जलाता है जल इसको नहीं भिगो सकता है और पवन भी नहीं सुखा सकता है ॥ २३ ॥

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च ।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ॥ २४ ॥

यह आत्मा छेदने योग्य नहीं, यह जलाने योग्य नहीं और निश्चित भिजाने सुखाने योग्य भी नहीं है यह नित्य सब प्रकारके शरीरोंमें जानेवाला स्थिरस्वभाव अचल और सनातन है ॥२४॥

अव्यक्तोऽयमचिंत्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते ।
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि ॥ २५ ॥
अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतम् ।
तथापि त्वं महाबाहो नैनं शोचितुमर्हसि ॥२६॥

यह अतिसूक्ष्मतासे अप्रगट है यह विचारमें नहीं आता है यह विकाररहित कहा है तिससे इसको ऐसा जानके शोच करनेको नहीं योग्य है।जो कि इसको नित्यजन्मा अथवा नित्य मरा जानोगे तो भी हे महाभुज अर्जुन ! तुम इस आत्माको शोचनेको नहीं योग्य हो ॥ २५ ॥ २६ ॥

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ २७ ॥

जिससे कि जन्मेकी मृत्यु निश्चय है और मरेका जन्म निश्चय है तिससे इस निरुपाय परिणाममें तुम शोचनेको नहीं योग्य हो २७

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत ।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना ॥ २८ ॥

हे अर्जुन ! मनुष्यादिक भूतप्राणी जन्मके आदिमें प्रगट न थे, जन्मके पीछे मरणके आदि मध्य अवस्थामें प्रकट दीखता है,मरे पीछे भी न दीखेंगे ऐसे निश्चयसे इस विषयमें शोक क्या है॥२८॥

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेनमाश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः । आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित् ॥ २९ ॥

ऐसे देहात्मवादमें शोकका परिहार किया । अब कहते हैं कि देहसे न्यारे आत्मामें द्रष्टा, श्रोता, वक्ता और ज्ञाता भी दुर्लभ हैं । प्रथम कहे हुए लक्षणोंकरके युक्त आत्मा सबसे विलक्षण है यहां कोई तपस्वी पुण्यवान् इस आत्माको आश्चर्यवत् देखता है और ऐसा ही कोई आश्चर्यवत् कहता है और ऐसा ही और पुरुष इसको आश्चर्यतुल्य सुनता है और कोई पुरुष इस आत्माको ही सुनके भी नहीं जानता है ॥ २९ ॥

देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत ।
तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि ॥३०॥

हे अर्जुन ! सबकी देहमें यह जीव नित्य ही अवध्य है इससे तुम सब भूतोंको सोचनेको नहीं योग्य हो ॥ ३० ॥

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकंपितुमर्हसि ।
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत् क्षत्रियस्य न विद्यते३१॥

स्वधर्मको भी देखके दया करनेको नहीं योग्य हो, क्योंकि क्षत्रियको धर्मसंबंधी युद्धसे और कल्याण नहीं है ॥ ३१ ॥

यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम् ।
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभंते युद्धमीदृशम् ॥३२॥

हे पृथापुत्र अर्जुन ! जो आपसे प्राप्त हुआ और खुला हुआ स्वर्गका द्वार ऐसे युद्धको पुण्यवान् क्षत्रियलोग पाते हैं ॥३२॥

अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि ।
ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि॥३३॥
अकीर्तिं चापि भूतानि कथयिष्यंति तेऽव्ययाम् ।
संभावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते ॥ ३४ ॥

जो कदाचित् तुम इस धर्मरूप संग्रामको न करोगे तो उससे स्वधर्म और कीर्तिको भी छोडके पापको प्राप्त होवोगे । और जो लोग तुम्हारी अखंड अकीर्तिको भी कहेंगे सो अकीर्ति संभावित पुरुषको मरणसे अधिक है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

भयाद्रणादुपरतं मंस्यंते त्वां महारथाः ।
येषां च त्वं बहुमतो भूत्वा यास्यसि लाघवम् ॥३५॥
अवाच्यवादांश्च बहून्वदिष्यंति तवाहिताः ।
निंदंतस्तव सामर्थ्यं ततो दुःखतरं नु किम् ॥३६॥

श्रीकृष्णजीने अर्जुनका अभिप्राय जाना कि जो मैं बंधुओंके स्नेह और दयालुतासे युद्ध न करूंगा तो मेरी अकीर्ति कैसे होगी अर्थात् होनेकी नहीं ऐसा जानके बोले कि हे अर्जुन ! जिन कर्ण दुर्योधनादिक महारथोंके तुम शूर शत्रु ऐसे मान्य थे उनके ही अब युद्ध न करनेसे निंदायोग्य लघुताको प्राप्त होंगे, वे ही महारथ शत्रु तुमको भयसे संग्राम न किया ऐसा मानेंगे, वे ही तुम्हारे शत्रु तुम्हारे सामर्थ्यकी निंदा करते हुए बहुतसे दुर्वाक्य बोलेंगे, अर्थात् अर्जुन कायर है, शोभाके वास्ते शस्त्र बांधता है, जैसे स्त्री आभूष-

णमें सर्प सिंहादिक देखके प्यारसे धारण करे और साक्षात् देखके प्राण लेके भागे ऐसे जब एसी निंदा करेंगे तब उससे बड़ा दुःख कौन है सो कहो ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम् ।
तस्मादुत्तिष्ठ कौंतेय युद्धाय कृतनिश्चयः ॥ ३७ ॥

उस निंदाके सुननेसे रणमें मरना मारना ही श्रेष्ठ है ऐसा कहते हैं । हे कुंतीपुत्र ! जो रणमें शत्रुप्रहारसे मरोगे तो भी स्वर्गको प्राप्त होगे, जो जीतोगे तो पृथिवीको भोगोगे, इससे युद्धके अर्थ निश्चय करके उठो ॥ ३७ ॥

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि ॥ ३८ ॥

सुख और दुःखको समान करके तथा लाभ और हानि जय और पराजय समान जानकर फिर युद्धके अर्थ युक्त हो, ऐसा करनेसे पापको नहीं प्राप्त होगे ॥ ३८ ॥

एषा तेऽभिहता सांख्ये बुद्धियोगे त्विमां शृणु ।
बुद्ध्या युक्तो यया पार्थ कर्मबंधं प्रहास्यसि ॥ ३९ ॥

श्रीकृष्णभगवान्ने ऐसा आत्मस्वरूप दिखाया, अब आत्मस्वरूप ज्ञानपूर्वक मोक्षसाधनभूत कर्मयोग कहते हैं कि हे पृथापुत्र ! यह बुद्धि तुमसे मैंने सांख्य जो आत्मा देहका विवक इसमें कही और इसीको योगमें याने कर्मयोगमें सुनो जिस बुद्धिकरके युक्त कर्मबंध जो संसारदुःख उसको छोड़ोगे ॥ ३९ ॥

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते ।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् ॥ ४० ॥

अब ज्ञानयुक्त कर्मयोगका माहात्म्य कहते हैं:—इस ज्ञानयुक्त कर्मयोगमें अर्थात् निष्काम कर्मयोगमें प्रारंभका भी

नाश नहीं है, याने प्रारंभ होके समाप्त न हो तो भी नाश नहीं है, इसके छूटनेका दोष भी नहीं होता है, इस निष्काम कर्मका लव-लेशमात्र भी जन्ममरणरूप बडे भयसे रक्षण करता है ॥४०॥

व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनंदन ।
बहुशाखा ह्यनंताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम् ॥४१॥

हे कुरुनंदन ! व्यवसाय जो विष्णुपरमात्मा उनमें है आत्मा नाम मन जिनका ऐसे पुरुषोंकी बुद्धि इस निष्कामकर्ममें ही वह एक है एक मोक्षसाधनके ही वास्ते है, जो अव्यवसायी याने परमात्मा विना याने नाना पदार्थ पशु पुत्रादिकोंके चाहनेवाले हैं उनकी बुद्धि बहुत हैं अर्थात् अनेक कामनाओंमें लगी है और वहां भी बहु शाखा याने एक कार्यके वास्ते कर्म करके उसमें भी अनेक फल माँगते हैं जैसे पुत्रार्थ यज्ञमें धन धान्य आयुष्य आरोग्यका मांगना ॥ ४१ ॥

यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदंत्यविपश्चितः ।
वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः ॥ ४२ ॥
कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम् ।
क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति ॥ ४३ ॥
भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम् ।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते ॥४४॥

हे पृथापुत्र ! जो अज्ञानीजन वेदवादरत याने वेदोक्त कर्मसे स्वर्गादिक फल ही होता है ऐसे कहनेवाले, स्वर्गसुखके समान और सुख नहीं है ऐसा कहनेवाले कामनामें ही चित्त रखनेवाले स्वर्गको ही श्रेष्ठ माननेवाले जिसे पुष्पित याने कहने मात्रमें रम-णीय जन्मकर्मरूप फलकी देनेवाली तथा जिसमें भोग और ऐश्वर्य निमित्त बहुत उपकरण याने कर्म साधन हैं जिसमें ऐसी इस वाणीको कहते हैं इसीसे उसी वाणीकरके अपहरण हुए हैं चित्त

जिनके इसीसे भोग और ऐश्वर्यमें आसक्त हैं; उनके मनमें वह परमात्मविषयक बुद्धि नहीं प्रवृत्त होती है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन ।
निर्द्वंद्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान् ४५॥

हे अर्जुन! वेद त्रैगुण्यविषयक हैं अर्थात् तीनों गुणोंके कर्मोंको ही कहते हैं, तुम निर्द्वंद्व याने सुख दुःख जय पराजय लाभ अलाभ इन द्वंद्वोंसे रहित हो अर्थात् उनसे उत्पन्न हर्ष शोक-रहित हो, नित्यसत्त्वस्थ हो याने सात्त्विक कर्म करो; निर्योगक्षेम याने कोईसा भी लाभ और लब्धका रक्षण ईश्वराधीन न जानो, आत्मवान् याने परमात्मामें चित्त राखो, और निस्त्रैगुण्य हो अर्थात् कर्मफलोंका त्याग करो ॥ ४५ ॥

यावानर्थ उदपाने सर्वतः संप्लुतोदके ।
तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः ॥ ४६ ॥

जो कहो कि वेदोक्त कर्मोंसे तुम सात्त्विक करो उसीको खुलासा करके कहते हैं जैसे सर्वत्र जलसे भरे हुए तालाब इत्यादिक जलाशयमें मनुष्यका जितना प्रयोजन होता है उतना ही लेता है वैसे ही वेदके जाननेवाले ब्राह्मणको सर्व वेदोंमें तावान् अर्थात् सात्त्विक कर्म ही योग्य है ॥ ४६ ॥

कर्मण्येवाऽधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि ॥ ४७॥

तुमको कर्ममें ही अधिकार है फलोंमें नहीं, कर्मोंके फलका कारण तुममें कोई समयमें भी मत हो। तुमको अकर्म याने स्वधर्म योग्य युद्धादि कर्मोंका न करना इसमें संग जो निष्ठा सो (कदाचित्) न हो ॥ ४७ ॥

योगस्थः कुरु कर्माणि संगं त्यक्त्वा धनंजय ।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ४८॥

हे अर्जुन ! सिद्धि और असिद्धिमें समबुद्धि होके कर्मफलके संगको त्यागिके योगमें स्थित होते हुए कर्मोंको करो । सिद्धि और असिद्धिमें जो समत्व है वही योग कहा है, अर्थात् चित्तके समाधानत्वको योग कहते हैं । तात्पर्य यह कि चित्तको समाधान करके युद्धरूप स्ववर्णोचित कर्म करो ॥ ४८ ॥

दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनंजय ।
बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः ॥ ४९ ॥

हे अर्जुन ! बुद्धियोगसे और कर्म निश्चयकरके अत्यंत नीच है, इसवास्ते बुद्धियोग जो निष्काम कर्म उसीमें ईश्वरप्राप्तिकी इच्छा करो , फलकी इच्छा करनेवाले कृपण हैं ॥ ४९ ॥

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते ।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम् ५०॥

बुद्धियुक्त (निष्कामकर्मी) इस लोकमें सुकृत (पुण्यकर्म) और दुष्कृत (पापकर्म) इन दोनोंको त्यागता है, इससे योगके अर्थ अर्थात् बुद्धियोग जो निष्काम कर्म उसके वास्ते युक्त हो, क्योंकि यह योग सर्व कर्मोंमें कुशलकारक है ॥५०॥

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः ।
जन्मबंधविनिर्मुक्ताः पदं गच्छंत्यनामयम् ॥ ५१ ॥

जो बुद्धियोगयुक्त हैं वे ज्ञानी कर्मजन्य फलको त्यागके जन्मबंधनसे मुक्त होकर निश्चयकरके मोक्ष पदको जाते हैं॥५१॥

यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति ।
तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च॥५२॥

जब तुम्हारी बुद्धि मोहरूप दुःखको उल्लंघन करेगी तब जो फलादिक सुननेयोग्य और जो सुने हों उनके विषयमें वैराग्यको प्राप्त होओगे ॥ ५२ ॥

श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला।
समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि ॥ ५३ ॥

जब तुम्हारी बुद्धि श्रुतिमें याने मेरे उपदेशमें विशेषकरके आसक्त निश्चल मनमें अचल ठहरेगी तब योगको पाओगे॥५३॥

अर्जुन उवाच।

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव।
स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम् ५४॥

ऐसा सुनकर अर्जुन बोले-हे केशव ! अर्थात् हे जलशायी भगवन् ! स्थिरबुद्धि समाधिस्थकी कौनसी भाषा (उसका वाचक कौन है) अर्थात् वह स्थिरबुद्धि किससे कहता है, स्थिर-बुद्धि कैसे बोलता है, कैसे बैठता है और कैसे चलता है॥५४॥

श्रीभगवानुवाच।

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥५५॥

अब श्रीकृष्णभगवान् स्थिर बुद्धिवालेका स्वरूप कहते हैं, यहां ऐसा न्याय है कि रहनिरीतिसे भी स्वरूपका निश्चय होता है इससे रहनिरीति कहते हैं कि हे अर्जुन ! जब आपके मनकरके आप स्वरूपमें ही संतुष्ट होकर मनमें प्राप्त हुए सर्व मनोरथोंको सर्वथा त्यागता है तब वह स्थिरबुद्धि कहाता है ॥ ५५ ॥

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥ ५६ ॥

दुःखोंमें जिसका मन व्याकुल नहीं होता है तथा सुखोंमें निराश होता है और जिसे (पुत्रादिकोंमें) स्नेह, भय और क्रोध न हो वह मुनि स्थिरबुद्धि कहाता है ॥ ५६ ॥

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम्।
नाभिनंदति न द्वेष्टि स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥ ५७ ॥

जो सर्वत्र स्नेहरहित होकर उसे उस शुभाशुभको पाकर भी न शुभसे प्रसन्न हो व अशुभसे दुःखी हो तब वह स्थिरबुद्धि कहाता है ॥ ५७ ॥

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।
इंद्रियाणींद्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ५८ ॥

जब यह, कछुवा जैसे अपने सर्व अंगोंको समेट लेता है वैसे इंद्रियोंके विषयोंसे अपनी सर्व इंद्रियोंको खैंच लेता है तब उसकी बुद्धि स्थिर होती है ॥ ५८ ॥

विषया विनिवर्तंते निराहारस्य देहिनः।
रसवर्ज्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्त्तते ॥ ५९ ॥

जो आहाररहित प्राणी इंद्रियविषयोंको नहीं सेवता उसके विषयानुराग निवृत्त हो जाते हैं परन्तु अभिलाषा नहीं निवृत्त होती और ज्ञानीकी वह विषयाभिलाषा भी आत्मस्वरूपको देखके निवृत्त होता है ॥ ५९ ॥

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः।
इंद्रियाणि प्रमाथीनि हरंति प्रसभं मनः ॥ ६० ॥
तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ६१ ॥

हे कुंतीपुत्र! आत्मदर्शन विना विषयानुराग निवृत्त होता नहीं और उसकी निवृत्ति विना जो ज्ञानी पुरुष (बुद्धिकी स्थिरताके लिये) यत्न करता है तो भी ये प्रबल इंद्रियां हठपूर्वक मनको हर लेती हैं। इससे योगयुक्त होकर उन सर्व इंद्रियोंको नियमित (अपने वशमें) करके मेरे आश्रय रहे, क्योंकि जिसकी इंद्रियां वशमें हैं उसकी निश्चयकरके बुद्धि स्थिर रहती है ॥ ६० ॥ ६१ ॥

ध्यायतो विषयान् पुंसः संगस्तेषूपजायते।
संगात्संजायते कामः कामात् क्रोधोऽभिजायते॥६२॥
क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥६३॥

बाह्य इंद्रियनकी प्रबलता और उनको वश न करनेमें जो दोष सो कहा अब मनसंबंधी कहते हैं, जो पुरुष मन वश किये विना जितेन्द्रियता चाहता है, सो होनेकी नहीं जैसे कि, जिसके मनमें विषयोंका चिन्तवन है उस पुरुषको उन विषयोंमें संयम करते करते भी आसक्ति होगी उस आसक्तिसे अभिलाषा होगी अभिलाषांसे क्रोध होगा क्रोधसे मतिभ्रम होता है मतिभ्रमसे स्मरणशक्तिमें विभ्रम होता है स्मृतिविभ्रमसे ज्ञानका नाश ज्ञानके नाशसे स्वरूपसे नष्ट होता है याने संसारमें भ्रमता है॥ ६२॥ ६३॥

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिंद्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति॥ ६४॥
प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते॥ ६५॥

वश्य है मन जिसका ऐसा पुरुष रागद्वेषकरके रहित और आत्माके वश्य ऐसी इंद्रियोंकरके विषयोंका सेवन करताहुआ प्रसन्नताको प्राप्त होता है याने निर्मलांतःकरण होता है, तब निर्मलचित्त होनेसे इसके सर्वदुःखोंका नाश होता है, उस प्रसन्न चित्तवालेकी बुद्धि शीघ्र ही स्थिर होती है॥ ६४॥ ६५॥

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना।
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम्॥६६॥

अयुक्त जो समतारहित है उसकी बुद्धि नहीं स्थिर होती है और उस अयुक्तके भावना याने आस्तिकता सो भी नहीं होती है और जिसके भावना नहीं उसके शांति नहीं, जिसके शांति नहीं उसको कहाँसे सुख होगा ॥ ६६ ॥

इंद्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवांभसि ॥ ६७ ॥
तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः।
इंद्रियाणींद्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥६८॥

जिससे कि, जो मन विषयमें प्रवृत्त इंद्रियोंको अनुहरता है सो इस पुरुषकी बुद्धिको वायु जलमें नावको ऐसे हरता है। ईसीसे हे महाबाहो ! जिसकी सर्व इंद्रियाँ इंद्रियोंके विषयोंसे सर्वथा रोकी हुई हैं उसकी बुद्धि प्रतिष्ठित है ॥ ६७॥ ६८॥

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः॥६९॥

सर्वभूत प्राणीमात्रोंकी जो रात्रि अर्थात् जिस विषयमें सर्व सोयेसे रहे हैं ऐसी जो परमात्मविषया बुद्धि उसमें इंद्रियें संयमी जागता है याने आत्मस्वरूपको देखता है, जिस शब्दादिविषय-रूप रात्रिमें सर्वभूत (प्राणी) जागते हैं सो ज्ञानी जनकी रात्रिरूप है ॥ ६९ ॥

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशंति यद्वत्।
तद्वत्कामा यं प्रविशंति सर्वे स शांतिमाप्नोति न कामकामी ॥ ७० ॥

जैसे आप ही परिपूर्ण सर्वदा एकसे भरे हुए समुद्रमें जल बाहरसे भरता है वैसे जिसको सर्व कामना प्राप्त होती हैं सो शांतिको प्राप्त होती है, जो कामनाओंकी इच्छा करनेवाला है सो शांतिको नहीं पाता है ॥ ७० ॥

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः ।
निर्ममो निरहंकारः स शांतिमधिगच्छति ॥ ७१ ॥

जो पुरुष सर्व अभिलाषोंको छोड़के इच्छारहित विचरता है सो ममतारहित और अहंकाररहित हुआ शांतिको प्राप्त होता है ॥ ७१ ॥

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति ।
स्थित्वाऽस्यामंतकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ॥७२॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां
योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे सांख्य-
योगो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

हे पृथापुत्र अर्जुन! यह जो निष्कामकर्मरूप मैंने कही सो ब्रह्मप्राप्तिकारक स्थिति है इसको पाके नहीं मोहको पाता है। इसमें अंतकालमें भी स्थित होके ब्रह्मसदृश मुक्ति पावे अर्थात् जो सर्वकाल ऐसा ही रहे उसकी मुक्तिको संदेह क्या है ॥ ७२ ॥

इति श्रीमत्सुकुलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादविरचितायां गीतामृत-
तरंगिण्यां द्वितीयाध्यायप्रवाहः ॥ २ ॥

अर्जुन उवाच ।

ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दन ।
तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव ॥ १ ॥

ऐसे श्रीकृष्णके वाक्य सुनके अर्जुनने विचार किया कि भगवान्ने प्रथम मुझको 'अशोच्यानन्वशोचस्त्वम्' इत्यादि वाक्यों करके ज्ञानयोग उपदेश किया फिर 'बुद्धियोगे त्विमां शृणु' इत्यादिकरके कर्मयोग उपदेश किया उसमें भी 'श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला' इत्यादिकरके निष्काम कर्मसे आत्मज्ञानकी

ही प्राप्ति कही इससे निश्चय होता है कि, कर्मयोगसे जो पीछे आत्मज्ञान कहा वही श्रेष्ठ है ऐसे विचारके अर्जुन भगवानसे कहने लगे कि, हे जनार्दन! यदि, कर्मयोगसे ज्ञानयोग ही तुमने श्रेष्ठ मानाँ हो तो हे केशव! घोर कर्ममें मुझको क्यों युक्त करते हो ॥ १ ॥

व्यामिश्रेणैव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव मे ।
तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम् ॥२॥

ऐसे मिश्रित वाक्यकरके मेरी बुद्धिको मोहते हो जिससे मैं कल्याणको प्राप्त होऊं सो एक निश्चयकरके कहो ॥ २ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

लोकेऽस्मिन् द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयाऽनघ ।
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम् ॥ ३ ॥

ऐसे अर्जुनके वाक्य सुनके श्रीकृष्ण भगवान् बोलने लगे। हे निष्पाप अर्जुन! इस लोकमें पूर्वकालमें मैंने दो प्रकारकी निष्ठा कही है सो सांख्यवालोंको ज्ञानयोगकरके और योगियोंको कर्मयोगकरके ॥ ३ ॥

न कर्मणामनारंभान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते ।
न च संन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति ॥ ४ ॥

शास्त्रोक्त कर्मोंके किये विना पुरुष निष्कर्मता जो सर्वेंद्रियविषयनिवृत्तिपूर्वक ज्ञाननिष्ठा उसको नहीं प्राप्त होता है और कर्मके न करनेसे भी सिद्धिको नहीं प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् ।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥ ५ ॥

किसी कालसें क्षणभरें भी कर्म किये विना कोई भी पुरुष निश्चय

करके नहीं रहता है क्योंकि सर्वसत्त्वादिप्रकृतिके गुणोंकरके परवश हो कर्म करना ही पड़ता है ॥ ५ ॥

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्।
इंद्रियार्थान् विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते ॥६॥

जो ज्ञानयोगमें प्रवृत्त होनेके लिये कर्मेंद्रियोंको हठसे संयममें रखके इंद्रियविषयोंको मनसे स्मरण करता रहता है सो मूढमति मिथ्याचार करनेवाला याने वृथायोगी कहाता है ॥ ६ ॥

यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन।
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते ॥ ७ ॥

हे अर्जुन जो इंद्रियोंको मनसे नियममें रखके विषयोंमें आसक्त नहीं होता, कर्मेंद्रियोंकरके कर्मयोगको करता है वह श्रेष्ठ है ॥ ७ ॥

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिध्येदकर्मणः ॥ ८ ॥

इससे तुम स्ववर्णोचित कर्म करो क्योंकि कर्म न करनेसे कर्म करना श्रेष्ठ है और कर्मके विना तुम्हारा ज्ञानयोग करनेको शरीरनिर्वाह भी न सिद्ध होगा ॥ ८ ॥

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबंधनः।
तदर्थं कर्म कौंतेय मुक्तसंगः समाचर ॥ ९ ॥

जो कर्मसे बंधन कहा है सो ऐसा कि, जो यज्ञार्थकर्म है उससे अन्यत्र कर्म करनेसे यह मनुष्य कर्मबंधनको प्राप्त होता है। हे कुंतीपुत्र! तुम फलासंग हो उस यज्ञके ही अर्थ कर्म करो॥९॥

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक्॥१०॥

प्रजापति जो परमात्मा सो पुरा याने सृष्टिकालमें यज्ञसहित प्रजाको उत्पन्न करके बोले कि इस यज्ञकरके तुम वृद्धिको प्राप्त होओ यह यज्ञ तुम्हारे इच्छितकामनाओंको पूर्ण करनेवाला हो १०

देवान् भावयतानेन ते देवा भावयंतु वः ।
परस्परं भावयंतः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥ ११ ॥

इस यज्ञके द्वारा तुम देवताओंका पूजन कर उनको बढ़ावो वे तुम्हारे बढ़ाये हुए देव तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करते हुए तुमको बढावेंगे ऐसे परस्पर बढ़ाते हुए तुम और देवता दोनों श्रेष्ठ कल्याणको प्राप्त होओगे ॥ ११ ॥

इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यंते यज्ञभाविताः ।
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुंक्ते स्तेन एव सः ॥ १२ ॥

जो यज्ञ करोगे उससे वर्द्धित देव तुमको इच्छित भोग निश्चय करके देंगे उनके दिये हुए भोगोंको उनको दिये विना जो भोगेगा सो चोर है इससे चोरतुल्य दंड पावेगा ॥ १२ ॥

यज्ञशिष्टाशिनः संतो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः ।
भुंजते ते त्वघं पापा ये पचंत्यात्मकारणात् ॥ १३ ॥

देवादिपूजनरूप यज्ञका शेष याने बचे हुए अन्नादिकके भोगने वाले संतपुरुष सर्वपापोंसे मुक्त होते हैं और जो अपने ही वास्ते अन्नको पचाते हैं वे पापी पाप को ही खाते हैं ॥ १३ ॥

अन्नाद्भवंति भूतानि पर्जन्यादन्नसंभवः ।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः ॥ १४ ॥
कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम् ।
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ॥ १५ ॥

एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः।
अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति॥१६॥

अब दिखाते हैं कि, लोकदृष्टि और शास्त्रदृष्टिसे भी सबका मूल यज्ञ ही है सो ऐसे कि सर्वभूत प्राणी अन्नसे होते हैं अन्नकी उत्पत्ति वर्षासे है सो लोकप्रसिद्ध देखनेमें आता है। वर्षा यज्ञसे होती है यह शास्त्रप्रसिद्ध है सो यह श्लोक–"अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठति ॥ आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः" ॥ १ ॥ यज्ञकी उत्पत्ति यज्ञकर्ताके किये हुए कर्मसे होती है वह कर्म ब्रह्मसे उत्पन्न होती है ऐसे जानो। ब्रह्म नाम प्रकृतिका है यहां प्रकृतिका ही रूप शरीर ब्रह्म जानना। यहां प्रथम-श्रुतिः–"तदेतद्ब्रह्म नामरूपमन्नं च जायते" और "मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम्" इत्यादि प्रमाणोंसे यहां यही अर्थ है कि, प्रकृतिको ब्रह्म कहते हैं उसीका परिणाम यह शरीर इससे कर्म होता है यह शरीर अक्षरसमुद्भव याने अक्षर जो जीव उस करके सहित उत्पन्न होता है याने सजीव शरीर कर्मका कारक है जिससे कि, शरीर ही कर्मकारक है इसीसे सर्वगत याने सर्वाधिकार योग्य शरीर यज्ञमें नित्य प्रतिष्ठित है याने यज्ञका मूल कारण है ऐसे यहां ईश्वरके द्वारा प्रवर्तमान इस चक्रको जो कर्माधिकारी किंवा ज्ञानकर्माधिकारी नहीं अनुवर्तता है याने यज्ञ विना शरीर पोषता है हे अर्जुन ! सो इंद्रियाराम पापआयुष्य वृथा जीता है। जो चक्र कहा उसका स्पष्टार्थ यह है कि अन्नसे शरीर, वर्षासे अन्न, यज्ञसे वर्षा, कर्मसे यज्ञ, शरीरसे कर्म, अन्नसे शरीर ऐसा प्रवर्तित है ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः।
आत्मन्येव च संतुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते॥१७॥

नैवं तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन ।
न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः ॥ १८ ॥

कर्म न करनेसे किसको दोष नहीं सो कहते हैं, कि जो मनुष्य आत्मरति हो याने आत्मस्वरूपमें ही आनंदित रहता हो और आत्मस्वरूपसे ही तृप्त हो अन्नादिकसे प्रयोजन नहीं और आत्मामें ही संतुष्ट हो उसके लिये कार्य नहीं है उसके कर्म करनेसे न करनेसे भी यहां कुछ प्रयोजन नहीं है और इसके सब प्राणियोंमें कोई ऐसा नहीं जिससे कुछ प्रयोजन हो । तात्पर्य ऐसा मनुष्य कर्म करे अथवा न करे तो चिंता नहीं ॥ १७ ॥ १८ ॥

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर ।
असक्तो ह्याचरन् कर्म परमाप्नोति पूरुषः ॥ १९ ॥

जिससे कि, ऐसेको दोष न हो तुम तो द्रव्य कुटुंबादिसे रत हो इससे कर्ममें आसक्त न होकर करनेयोग्य स्ववर्णोचित कर्मको निरंतर करो क्योंकि फलेच्छारहित कर्म करते करते पुरुष परमात्माको प्राप्त होता है ॥ १९ ॥

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः ।
लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन् कर्तुमर्हसि ॥ २० ॥

अब यह दिखाते हैं कि, ज्ञानीको भी कर्म ही श्रेष्ठ है । सो ऐसे जिससे कि, जनकादिक ज्ञानी भी कर्मकरके ही मोक्षको प्राप्त हुए तथा लोकसंग्रहको भी देखते हुए कर्म करनेके योग्य हो ॥२०॥

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥ २१ ॥

यहां कारण यह है कि, श्रेष्ठपुरुष जो जो आचरण करते हैं दूसरे लोग भी वैसा ही आचरण करते हैं श्रेष्ठपुरुष जो प्रमाण करते हैं सब लोग वही प्रमाण करने लगते हैं ॥ २१ ॥

न मे पार्थास्ति कर्त्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त्त एव च कर्मणि ॥ २२ ॥

हे पृथापुत्र अर्जुन ! तीनों लोकोंमें मुझको कुछ कर्त्तव्य नहीं है तथा नहीं प्राप्त ऐसा भी नहीं और प्राप्त हो ऐसा भी नहीं अर्थात् सब मेरा ही है तथापि कर्ममें ही वर्तमान रहता हूँ याने लोगोंको सिखानेके अर्थ कर्म करता रहता हूँ ॥ २२ ॥

यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतंद्रितः।
मम वर्त्मानुवर्त्तंते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥ २३ ॥

हे अर्जुन ! जो कदाचित् सावधान हुआ मैं कर्ममें न वर्तमान रहूं तो निश्चयकरके सब मनुष्य मेरी ही रीतिपर चलने लगें याने वे भी निरर्थक मानके कर्म न करें ॥ २३ ॥

उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम्।
संकरस्य च कर्त्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः॥२४॥

जो कदाचित् मैं कर्म न करूं तो ये लोक भी ऐसे जानेंगे कि, जो कर्म श्रेष्ठ होता तो श्रीकृष्ण करते इससे कर्म तुच्छ है ऐसा जानकर कर्म छोड़कर नष्ट होंगे तब मैं वर्णसंकरका कर्त्ता होऊंगा और इन प्रजाओंका मारनेवाला होऊंगा ॥ २४ ॥

सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वंति भारत।
कुर्याद्विद्वांस्तथाऽसक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम् ॥ २५॥

हे अर्जुन ! जैसे अविद्वान् लोग कर्ममें आसक्त हो कर्म करते हैं वैसे विद्वान् आसक्त हुआ लोकसंग्रहको करनेकी इच्छा किये हुए कर्म करे ॥ २५ ॥

न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसंगिनाम्।
जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान्युक्तः समाचरन् ॥ २६ ॥

जो ज्ञानी है वह ज्ञानयोगयुक्त हो कर्म करता हुआ जो कर्म

संगी अज्ञानी हैं उन्हे सब कर्मोंके सेवन करनेकी प्रेरणा करे याने उनसे प्रशंसा करके कर्म करावे और बुद्धिभेद याने कर्ममें अश्रद्धा ने करावे ॥ २६ ॥

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः ।
अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते ॥ २७ ॥
तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः ।
गुणा गुणेषु वर्त्तंत इति मत्वा न सज्जते ॥ २८ ॥

हे अर्जुन ! सब कर्म प्रकृतिके सत्त्वादिगुणों करके किये हुए हैं जो अहंकारसे मूढचित्त हैं वे मैं कर्त्ता हूं ऐसा मानते हैं और जो सत्त्वादिक गुण और उनके कर्मविभागके तत्त्वका ज्ञाता है वह जानता है कि, सत्त्वादि गुण अपने अपने कार्योंमें वर्त्त-मान हैं ऐसा जानकर आसक्त नहीं होता है ॥ २७ ॥ २८ ॥

प्रकृतेर्गुणसंमूढाः सज्जंते गुणकर्मसु ।
तानकृत्स्नविदो मंदान् कृत्स्नविन्न विचालयेत्॥२९॥

प्रकृतिके सत्त्वादिक गुणकार्योंकरके भूले हुए जो पुरुष वे सत्त्वादि गुणकर्मफलोंमें आसक्त होते हैं उन अल्पज्ञ मंदोंको सर्वज्ञ पुरुष कर्ममार्गसे चलायमान न करे ॥ २९ ॥

मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा ।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः ॥३०॥

हे अर्जुन ! अध्यात्म जो स्वभाव 'स्वभावोऽध्यात्म उच्यते' इस प्रमाणसे क्षत्रियका जो शूरत्वादिक स्वभाव है उसमें चित्त-को लगाकर उस चित्तसे सब कर्म मुझमें अर्पण करके निराशी याने फलाशारहित निर्मम याने कर्त्तापनका ममत्व छोड़के कर्म-बंधनभयरूप ज्वरसे छूटे हुए युद्ध करो ॥ ३० ॥

ये मे मतमिदं नित्यमनुतिष्ठंति मानवाः ।

श्रद्धावंतोऽनसूयंतो मुच्यंते तेऽपि कर्मभिः ॥३१॥
ये त्वेतदभ्यसूयंतो नानुतिष्ठंति मे मतम् ।
सर्वज्ञानविमूढांस्तान्विद्धि नष्टानचेतसः ॥३२॥

जो मनुष्य इस मेरे मतको नित्य धारण करते हैं और जो इसमें श्रद्धा ही रखते हैं और जो इसकी निंदारहित हैं वे भी कर्मबंधनोंसे छूट जाते हैं और जो इस मेरे मतकी निंदा करते हुए इसको ग्रहण नहीं करते हैं सर्वज्ञान विषयमें मूढ उन अज्ञानियोंको नष्ट हुए जानो ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि ।
प्रकृतिं यांति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति॥३३॥

जो ज्ञानवान् है वह भी अपने जातिस्वभावके सदृश चेष्टा करता है अज्ञ करे तो शंका ही क्या है; सब भूत प्राणी अपने जातिस्वभावको प्राप्त होते हैं यहां शास्त्र क्या निग्रह करेगा॥३३॥

इंद्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ ।
तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपंथिनौ ॥ ३४ ॥

जब कर्म स्वभावसे ही है और उसका निग्रह नहीं तब उपाय क्या-सो कहते हैं कर्मेंद्रिय और ज्ञानेंद्रिय इनके निमित्त राग द्वेष युक्त हैं उनके वश न होना क्योंकि वे इसके शत्रु हैं याने जीवके बंधनकारक राग द्वेष ही हैं ॥ ३४ ॥

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ॥ ३५ ॥

जो रागद्वेषके वश होनेसे स्वधर्मका त्याग और परधर्ममें निष्ठा होती है उसका निवारण करते हुए श्रीकृष्णजी कहते हैं कि नेत्रादि इंद्रियोंकी प्रीतिसे अर्जुन स्वधर्मोंको त्यागने लगे कि इन स्वजनोंको देखकर मेरे दया आती है इससे युद्ध न करूंगा,भीख

माँग खाऊँगा उसका निवारण करते हैं जैसे कि, श्रेष्ठकर्मारंभे अन्यके धर्मसे न्यून भी स्वधर्म कल्याणकारक है, स्वधर्ममें मरना कल्याणदायक है परधर्म मरनेसे भी अतिभयकारक है॥ ३५ ॥

अर्जुन उवाच।

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः॥३६॥

अर्जुन भगवान्‌से पूंछते हैं कि, हे वृष्णिवंशोत्पन्न कृष्ण! आपने कहा स्वधर्म ही श्रेष्ठ है अन्यधर्म भयदायक है ऐसा जो जानता भी है और स्वधर्मपूर्वक ज्ञानयोगमें प्रवृत्त होकर विषयोंको भी त्यागता है तो भी फिर यह पुरुष विषयइच्छा न करता हुआ भी बलात्कार विषयोंमें युक्त किया सरीखा किसका प्रेरा हुआ पापोंको करता है॥ ३६ ॥

श्रीभगवानुवाच।

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्॥३७॥

अर्जुनका प्रश्न सुनकर श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं कि, जो यह रजोगुणसे प्रकट काम याने कामना सो बड़ापापी अतिविषय सेवनरूप बड़े आहारका करनेवाला यही क्रोधरूप हो जाता है ईसको इस ज्ञानविषयमें बैरी जानो॥ ३७ ॥

धूमेनाव्रियते वह्निर्यथाऽऽदर्शो मलेन च।
यथोल्बेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम्॥ ३८ ॥

जैसे अग्नि धुवाँकरके ढकता है और मलकरके दर्पण ढकता है जसे गर्भ जेरकरके वैसे यह ज्ञान उस कामना करके ढँका है ३८

आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा।
कामरूपेण कौंतेय दुष्पूरेणानलेन च॥ ३९ ॥

हे कुंतीपुत्र ! नित्य वैर करनेवाला दुःखसे भी न भर सकने वाला अतः अपरिपूर्ण अग्निरूप इस कामकरके ज्ञानियोंका ज्ञान ढके रहा है काम यामे विषयवासना ॥ ३९ ॥

इंद्रियाणि मनोबुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते ।
एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम् ॥ ४० ॥

जब शत्रुको जीतना हो तो प्रथम उसका स्थान स्वाधीन करना इससे इस कामनाके स्थान कहते हैं सो वे ये हैं सब इंद्रियां मन और बुद्धि ये कामनाके स्थान कहलाते हैं. यह इनके ही द्वारा ज्ञानको आच्छादित करके जीवको मोहित करता है ॥ ४० ॥

तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ ।
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम् ॥४१॥

हे भरतवंशियोंमें श्रेष्ठ ! इससे तुम प्रथम इंद्रियोंको संयममें करके स्वरूप ज्ञान और विज्ञान जो भक्ति इनके नाश करने वाले इस काम पापीको निश्चय मारो ॥ ४१ ॥

इंद्रियाणि पराण्याहुरिंद्रियेभ्यः परं मनः ।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः ॥ ४२ ॥

जो ज्ञानके विरोधी हैं उनमें विद्वान् लोग इंद्रियोंको प्रबल कहते हैं, इंद्रियोंसे मन प्रबल है और मनसे बुद्धि प्रबल है और जो बुद्धिसे प्रबल है वही आत्मा है ॥ ४२ ॥

एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना ।
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम् ॥ ४३ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां
योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे कर्मयोगो
नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

हे महाभुज अर्जुन ! ऐसे बुद्धिसे पर आत्माको जानकर और स्वेच्छाचारी दुःसह कामनारूप शत्रुको जानके फिर मनको बुद्धि करके रोकके इस शत्रुको मारो ॥ ४३ ॥

इति श्रीमत्सुकुलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादविरचितायां श्रीमद्भगवद्गीतामृत-तरंगिण्यां तृतीयाध्यायप्रवाहः ॥ ३ ॥

प्रकृतिसंसर्गी मुमुक्षु सहसा ज्ञानयोगाधिकारी नहीं हो सकता है इससे तीसरे अध्यायमें उसको कर्म करना ही उपदेश तथा ज्ञानयोगीको भी कर्तृत्वत्यागपूर्वक कर्म करना ही उत्तम कहा. और जनसंग्रहके लिये भी कर्म करना ही श्रेष्ठ कहा. अब जो जगदुद्धारके वास्ते मन्वंतरके आदिमें इसी कर्मयोगका उपदेश किया था उसीको इस चौथे अध्यायमें दृढ करते हैं, ज्ञान योग भी इसीके अंतर्गत है; इससे इसकी ज्ञानयोगाकारता दिखाके कर्मयोगका स्वरूप और भेद तथा उसमें ज्ञानांशकी प्रधानता तथा इसी प्रसंगसे भगवदवतारनिश्चय भी कहते हैं-

श्रीभगवानुवाच ।

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम् ।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ॥ १ ॥

श्रीकृष्णभगवान् अर्जुनसे कहते हैं कि जो यह योग मैंने तुमसे कहा वह केवल युद्धोत्साह बढ़ानेके लिये तुमसे ही नहीं कहा इसको कल्पकी आदिमें भी कहा है सो सुनो । मैं प्रथम इस अव्यय कर्मयोगको सूर्यसे कहा था सूर्य वैवस्वतमनुसे कहा और मनु इक्ष्वाकुसे कहा ॥ १ ॥

एवं परंपराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः।
स कालेनेह महता योगो नष्टः परंतप ॥ २ ॥

इस प्रकार परंपरासे प्राप्त इसको राजऋषियोंने जाना, हे परंतप! सो यह योग इस समयमें बहुत कालसे नष्ट हुआ था ॥२॥

स एवाऽयं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः।
भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम् ॥३॥

वही यह पुरातन योग मैंने तुमसे आज कहा क्योंकि तुम मेरे भक्त और सखा हो यह उत्तम रहस्य है ॥ ३ ॥

अर्जुन उवाच।

अपरं भवतो जन्म परं जन्म विवस्वतः।
कथमेतद्विजानीयां त्वमादौ प्रोक्तवानिति ॥ ४ ॥

यह सुनकर अर्जुन कहने लगे कि,तुम्हारा जन्म अभी हुआ विवस्वान्का जन्म प्रथम हुआ तो तुम आदिमें उनसे कहा इससे इसको हम कैसे जाने? ॥ ४ ॥

श्रीभगवानुवाच।

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप ॥ ५ ॥

श्रीकृष्ण भगवान् अर्जुनके प्रश्नका उत्तर देते हैं इसीमें अपने अवतारका भी प्रयोजन कहेंगे सो ऐसे कि, हे परंतप! अर्थात् शत्रुओंको संतापित करनेवाले अर्जुन! मेरे और तेरे बहुत जन्म व्यतीत हुए हैं उन सबको मैं जानता हूं तुम नहीं जानते हो॥५॥

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया ॥ ६ ॥

कारण यह कि; मैं अविनाशी सर्वांतर्यामी हूं सर्वभूतोंका भी ईश्वर होते हुए तथा अजन्मा होनें पर भी मेरा स्वभाव जो सौशील्य वात्सल्य शरणागतरक्षकत्व इत्यादिक उसको आश्रित करके अर्थात् उस स्वभावसे ही अपने ज्ञान सहित अवतार लेता हूँ जीवको ज्ञान नहीं रहता है, मेरा ज्ञान अखंड है, मैं केवल स्वभक्तरक्षणार्थ अवतार लेता हूँ इसका कारण अग्रिम श्लोकोंमें है ॥ ६ ॥

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम् ॥७॥

हे भारत ! जब जब निश्चयपूर्वक धर्मकी हानि और अधर्मकी वृद्धि होती है तब मैं रूपको धारण करता हूँ ॥ ७ ॥

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥ ८ ॥

जो स्वस्वभावसे अवतार कहा वह स्पष्ट करते हैं-धर्महानि अधर्मवृद्धि देखकर मैं साधुओंके संरक्षणके लिये और दुष्टोंके विनाशके वास्ते युग युगमें धर्मस्थापन करनेको अवतार लेता हूँ ॥ ८ ॥

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः ।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ॥९॥

हे अर्जुन ! मेरे जन्म और कर्म दिव्य याने प्राकृत नहीं हैं ऐसा जो निश्चय करके जानता है सो देहको त्यागकर पुनर्जन्म नहीं लेता है और मुझको प्राप्त होता है ॥ ९ ॥

वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः ।
बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः ॥ १० ॥

व्यतीत हुए हैं सांसारिक अनुराग और क्रोध जिनके तथा सर्वत्र मुझको ही जानते हैं और जो मेरे ही आश्रित हैं ऐसे बहुत मेरे स्वरूपज्ञानरूप तपसे पवित्र मेरी सदृशताको प्राप्त हुए हैं ॥ १० ॥

ये यथा मां प्रपद्यंते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।
मम वर्त्मानुवर्त्तंते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥ ११ ॥

हे पृथापुत्र अर्जुन ! सब मनुष्य मम वर्त्म याने जो जो सकाम निष्काम वेदमें मार्ग कहे हैं वे मेरे ही कहे मार्ग हैं, उन्हीं मार्गोंके आश्रित कर्म करते हैं, जो मुझको जैसे भजते हैं मैं उनको वैसे ही भजता हूं याने जो सकाम इंद्रादिरूप मुझको भजते हैं उनको "तदेवाग्निस्तत्सूर्यः ' अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता" इत्यादि प्रमाणसे इंद्रादिलोक, पुत्रादि कामना देता हूं और जो निष्काम मुझको सर्वेश्वर जानकर सब कर्म ' कायेन वाचा मनसेंद्रियैर्वा ' इत्यादि प्रमाणसे मेरे अर्पण करते हैं उनको अपने स्वरूपवैभवको प्राप्त करता हूं ॥ ११ ॥

कांक्षंतः कर्मणां सिद्धिं यजंत इह देवताः ।
क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा ॥ १२ ॥

जो कर्मोंकी सिद्धिकी इच्छा करते हुए इस लोकमें देवताओंका यजन करते हैं उनको निश्चयकरके शीघ्र मनुष्यलोकमें कर्मसे उत्पन्न सिद्धि होती है ॥ १२ ॥

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः ।
तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्त्तारमव्ययम् ॥ १३ ॥

गुणकर्मविभागसे अर्थात् सत्त्वगुणप्रधान ब्राह्मण उनके शमदमादि कर्म, सत्त्वरजःप्रधान क्षत्रिय उनके शूरत्वादिकर्म,

रजस्तमःप्रधान वैश्य उनके कृषिवाणिज्यादि कर्म, तमःप्रधान शूद्र उनके परिचर्यात्मक कर्म इस प्रकार गुणकर्मविभागकरके चातुर्वर्ण्य यह संसार मैंने सृजा है उसका अविनाशी कर्त्ता और अकर्ता भी मेरेको जानो ॥ १३ ॥

न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा।
इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते ॥१४॥

जो प्रथम कहा कि, मुझको अकर्त्ता जानो उसका कारण कहते हैं सो ऐसा, कि मुझको कर्मफलमें इच्छा नहीं इससे मेरे कर्म नहीं लिप्त होते हैं ऐसा मुझको जो जानता है सो कर्मो-करके नहीं बँधता है ॥ १४ ॥

एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि मुमुक्षुभिः।
कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम् ॥ १५ ॥

पूर्वसमयके मनु इत्यादिक मुमुक्षुजनोंने भी ऐसे जानके कर्म किया है इससे तुम पूर्व मुमुक्षुओंकरके किये हुए कर्मको ही करो ॥ १५ ॥

किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः।
तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् १६॥

कर्म क्या है और अकर्म क्या है ऐसे इस विषयमें कवि-जन भी मोहित हुए सो कर्म मैं तुमको कहूँगा जिसको जानके संसारसे मुक्त होगे ॥ १६ ॥

कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः ॥ १७ ॥

जिस वास्ते कि कर्म याने करनेयोग्य कर्म उसका रूप भी जानना चाहिये और विकर्म जिस एक कर्ममें विविध प्रकार है उसका रूप भी जानना चाहिये और अकर्म जो निश्चयात्मक

बुद्धिकरके केवल ईश्वराराधनार्थ निष्काम कर्म उसका भी रूप जानना चाहिये इस वास्ते कर्मकी गति दुर्गम है ॥ १७ ॥

कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः ।
स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत् ॥ १८ ॥

अब कर्म और अकर्मका स्वरूप जानना कहते हैं—जो प्रारंभित कर्ममें अकर्म याने आत्मज्ञान देखे याने इस निष्कामकर्मसे ही ज्ञान होगा इससे यह ज्ञान ही है और जो मनुष्य अकर्म जो आत्मज्ञान उसमें कर्म याने यह कर्मसे हुआ कर्म ही है ऐसा देखनेवाला मनुष्य मनुष्योंमें बुद्धिमान् है वह योगी और सोई सर्व कर्मोंका करनेवाला है ॥ १८ ॥

यस्य सर्वे समारंभाः कामसंकल्पवर्जिताः ।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः ॥ १९ ॥

जो कर्म प्रत्यक्ष कर रहा है उसकी ज्ञानाकारता कैसी होगी सो कहते हैं—सो ऐसी कि, जिसके सर्व लौकिक वैदिक कर्मोंके आरम्भ कामना संकल्प रहित हैं ज्ञानरूप अग्निकरके दग्ध हुए हैं बंधन कर्म जिसके उसको विद्वान् जन पंडित कहते हैं ॥ १९ ॥

त्यक्त्वा कर्मफलासंगं नित्यतृप्तो निराश्रयः ।
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किंचित् करोति सः ॥ २० ॥

जो कर्मफलका संबन्ध छोड़के निरंतर आत्मस्वरूपमें ही तृप्त नश्वर संसारके आश्रयरहित कर्ममें प्रवृत्त भी है तो भी सो कुछ नहीं करता है ॥ २० ॥

निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः ।
शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् ॥ २१ ॥

जो कर्मफलकी आशारहितचित्त और मन जिसका संयममें हो जिसने परमात्मप्रीति विना और सर्व उपासना त्यागी हो सो

केवल शरीरसंबंधी कर्मको करता हुआ कर्मबंधनरूप पीड़ाको नहीं प्राप्त होता है ॥ २१ ॥

यदृच्छालाभसंतुष्टो द्वंद्वातीतो विमत्सरः ।
समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वाऽपि न निबंध्यते ॥२२॥

जो आप ही आप मिले इतने ही लाभसे संतुष्ट हो और जो सुख दुःख लाभालाभ जय पराजय हर्ष शोक इत्यादिक द्वंद्वों करके रहित होयँ मत्सर जो दूसरेका सुख न सहना उस करके रहित कार्यकी सिद्धि और असिद्धिमें समबुद्धि सो कर्म करके भी नहीं बंधन पावे ॥ २२ ॥

गतसंगस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः ।
यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते ॥ २३ ॥

निवृत्त हुआ है आत्मानंद विना संग जिसका और संसारवासनासे मुक्त है और आत्मज्ञानमें अवस्थित है चित्त जिसका वह जो यज्ञके अर्थ कर्म करे तो उसके बंधनकारक सर्व प्राचीन कर्म नष्ट होते हैं ॥ २३ ॥

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम् ।
ब्रह्मैव तेन गंतव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना ॥ २४ ॥

निष्काम कर्मसे ज्ञान होता है इस भेदसे कर्मकी ज्ञानाकारता कही अब परमात्माके अनुसंधानसे उसी निष्काम कर्मकी ज्ञानाकारता कहते हैं—सो ऐसे कि, जिस करके हव्य अर्पण करते हैं वह स्रुवादिक वस्तु ब्रह्म है याने ब्रह्मका ही काय है, घृतादिक हव्य भी ब्रह्म ही है ब्रह्मरूप अग्निमें वह ब्रह्मरूप हव्य ब्रह्मरूप होता करके होमा जाता है ऐसे यह सर्व ब्रह्मरूप है उस ब्रह्मकर्मनियम करके ब्रह्म ही प्राप्त होने योग्य है ॥ २४ ॥

दैवमेवापरे यज्ञं योगिनः पर्युपासते ।
ब्रह्माग्नावपरे यज्ञं यज्ञेनैवोपजुह्वति ॥ २५ ॥

ऐसे कर्मयोगकी ज्ञानाकारता कहके अब कर्मयोगके भेद कहते हैं–अपरे ' अकारो वै विष्णुः ' इस श्रुतिप्रमाणसे जो विष्णुपरायण हैं वे योगी दैवं यज्ञ याने प्रतिमापूजनरूप यज्ञ करते हैं इनसे और भी ऐसे "ही योगी ब्रह्मात्मक अग्निमें यज्ञसाधन सामग्री-करके हवनात्मक यज्ञमें ही" हवन करते हैं ॥ २५ ॥

श्रोत्रादीनीन्द्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुह्वति ।
शब्दादीन्विषयानन्ये इन्द्रियाग्निषु जुह्वति ॥ २६ ॥

और कितने योगी श्रोत्रादिके इन्द्रियोंको संयमरूप अग्निमें होमते हैं अर्थात् श्रोतादिकोंको हरिकीर्ति श्रवणादिकमें ही युक्त करते हैं और कितनेक शब्दादिके विषयोंको इन्द्रिय रूप अग्निमें होमते हैं याने हरिकीर्त्तन विना और श्रवणादिक नहीं करते हैं २६॥

सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे ।
आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते ॥ २७ ॥

और कितने योगी सर्व इंद्रियोंके कर्मोंको और प्राणोंके कर्मोंको ज्ञान करके प्रदीप्त ऐसे मनके संयमरूप अग्निमें होमते हैं. अर्थात् मन करके इंद्रिय प्राण कर्मवृत्तियोंको संसारविषयसे निवारण करके आत्मज्ञानमें लगानेका यत्न करते हैं ॥ २७ ॥

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथापरे ।
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः शंसितव्रताः ॥ २८ ॥

और कितने योगी द्रव्यसे यज्ञ करते हैं. याने दानादिक करते हैं, कितनेक उपवासादिकरूप यज्ञ करते हैं. वैसे ही और कितनेके पुण्य क्षेत्रादि वास रूप योग करते हैं और कितने दृढव्रती यती याने यत्नशील वे वेदाध्ययन वेदार्थविचाररूप यज्ञ करते हैं॥२८॥

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथा परे।
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः ॥ २९ ॥
अपरे नियताहाराः प्राणान् प्राणेषु जुह्वति।
सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः ॥ ३० ॥
यज्ञशिष्टाऽमृतभुजो यांति ब्रह्म सनातनम्।
नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम ३१॥

और कितनेक कर्मयोगी प्रमाणसे आहार करनेवाले जैसे कि, आधा पेट अन्नसे भरे चौथाई जलसे और चौथाई वायुसंचारके लिये खाली रखे ऐसे और प्राणायामपरायण योगी अपानमें प्राणका हवन करते हैं याने पूरक करते हैं; और कितनेक प्राणवायुमें अपानको हवन करते हैं याने रेचक करते हैं और कितनेक प्राण अपान दोनोंकी गतिको रोककर प्राणोंको प्राणमें ही हवन करते हैं याने कुंभक करते हैं; ये सब यज्ञके जाननेवाले यज्ञकरके पापरहित यज्ञका ही शेष अमृतरूप अन्नके खानेवाले सनातन ब्रह्मको प्राप्त होते हैं। हे कुरुवंशियोंमें श्रेष्ठ अर्जुन! जो यज्ञ नहीं करता है उसको यह लोक भी नहीं है और परलोक तो कैसे होगा ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥

एवं बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणो मुखे।
कर्मजान्विद्धि तान्सर्वानेवं ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे ॥३२॥

ऐसे बहुत प्रकारके यज्ञ वेदमें विस्तारसे कहे हैं उन सबको कर्मज जानो याने वे कर्मसे ही होते हैं, ऐसा जानकर कर्म करके मुक्त होगे ॥ ३२ ॥

श्रेयान् द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परन्तप।
सर्वं कर्माऽखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते ॥ ३३ ॥

हे परंतप! द्रव्यमय यज्ञसे ज्ञानयज्ञ श्रेष्ठ है, कारण कि, द्रव्य-

यज्ञका भी फल ज्ञान ही है। हे पार्थ ! फलसहित सब कर्म ज्ञानमें समाप्त होता है; याने इस ज्ञानके ही लिये यज्ञ करते हैं ॥ ३३ ॥

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यंति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥३४॥

वह ज्ञान तत्त्वदर्शी ज्ञानीजन तुमको उपदेशेंगे, तुम उनकी सेवा और सत्कारपूर्वक नमस्कार करके उनसे प्रश्न कर जानो यहां श्रीकृष्ण भगवान्‌ने केवल ज्ञानी जनोंकी प्रशंसाके लिये यह वाक्य कहा है और "अविनाशि तु तद्विद्धि" यहांसे लेकर "एषा तेऽभिहिता सांख्ये" यहांतक तो ज्ञान उपदेश कर ही चुके हैं ॥ ३४ ॥

यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पाण्डव।
येन भूतान्यशेषेण द्रक्ष्यस्यात्मन्यथो मयि ॥३५॥

हे पांडुपुत्र ! जिस ज्ञानको जानकर ऐसे मोहको फिर नहीं प्राप्त होगे. जिस ज्ञानकरके सब भूतप्राणिमात्रको आप सदृश देखोगे. जैसे कि, प्रकृतिसे भिन्न ये परज्ञानाकारतासे सब समान हैं आप सदृश देखे पीछे फिर मेरे समान देखोगे याने ज्ञान प्राप्त हुए जीव मेरी समताको प्राप्त होते हैं सो आगे कहेंगे भी. "इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः" यहां ब्रह्मसूत्र भी प्रमाण है "भोगमात्रसाम्यलिंगाच्च" ऐसे ही श्रुति भी प्रमाण है "तथा विद्वान् पुण्यपापे विधूय निरंजनः परमां शांतिमुपैति" इत्यादि प्रमाणोंसे नाम रूप रहित याने सूक्ष्मावस्थामें आत्मा और परमात्माकी स्वरूप समता निश्चय होती है ॥ ३५ ॥

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि ॥ ३६ ॥

जो कि; सब पापियोंसे भी तुम बड़े पापकारक होगे तो भी इस ज्ञानरूप नौकासे ही सब दुःखसमुद्रको तरोगे ॥ ३६ ॥

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा ॥३७॥

हे अर्जुन! जैसे प्रज्वलित अग्नि समग्र ईंधनको भस्म करता है वैसे ही विज्ञानरूप अग्नि समस्त कर्मबंधनको भस्म करता है ॥ ३७ ॥

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विंदति ॥३८॥

इस लोकमें निश्चयकरके (तप योगादिकोमें कोई भी) ज्ञानके सदृश पवित्र नहीं है उस ज्ञानको कुछ काल कर्म करते करते कर्मयोगसे सिद्ध होकर आपमें ही आपही प्राप्त होती है ॥ ३८ ॥

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शांतिमचिरेणाधिगच्छति ॥३९॥

ज्ञानप्राप्तिमें लगा हुआ इंद्रियोंको संयममें किये हुए श्रद्धा-वान् पुरुष ज्ञानको प्राप्त होता है उस ज्ञानको पाकर थोड़े ही कालमें परम शांतिको प्राप्त होता है ॥ ३९ ॥

अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति।
नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः ॥४०॥

जो अज्ञानी है और ज्ञानप्राप्तिमें श्रद्धाको भी नहीं धारण किया है और मनमें संशय रखता है वह नष्ट भ्रष्ट संसारमें भ्रमता है. जिसके मनमें संशय है उसको यह लोक सुखदायक नहीं है, परलोकमें भी नहीं है उसको कहीं भी सुख नहीं है ॥ ४० ॥

योगसंन्यस्तकर्माणं ज्ञानसंछिन्नसंशयम्।
आत्मवन्तं न कर्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय ॥४१॥

हे अर्जुन! परमेश्वराराधनरूप जो निष्काम कर्म योग उस योगसे परमात्माके अर्पण किये हैं कर्म जिसने और ज्ञानसे

संच्छिन्न हुए हैं संशय जिसके ऐसे स्थिरचित्त ज्ञानीको कर्म नहीं बंधन करते हैं ॥ ४१ ॥

तस्मादज्ञानसंभूतं हृत्स्थं ज्ञानासिनात्मनः ।
छित्त्वैनं संशयं योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत ॥ ४२ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे कर्मसंन्यासयोगो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

हे भरतवंशोत्पन्न अर्जुन ! इससे जो अज्ञानसे उत्पन्न तुम्हारे हृदयमें स्थित ऐसे इस अपने संशयको ज्ञानखड्गसे छेदन करके उठो और कर्मयोगमें प्रवृत्त होओ याने क्षत्रियका युद्ध कर्म करो ॥ ४२ ॥

इति श्रीमत्सुकुलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादविरचितायां श्रीमद्भगवद्गीतामृततरंगिण्यां चतुर्थाध्यायप्रवाहः ॥ ४ ॥

अर्जुन उवाच ।

संन्यासं कर्मणां कृष्ण पुनर्योगं च शंससि ।
यच्छ्रेय एतयोरेकं तन्मे ब्रूहि सुनिश्चितम् ॥ १ ॥

श्रीकृष्णसे अर्जुन पूँछते हैं कि, हे कृष्ण ! कर्मोंका संन्यास जो ज्ञानयोग उसको और फिर कर्मयोगको कहते हो इन दोनोंमें जो निश्चित किया हुआ श्रेष्ठ हो उसे ही मुझसे कहो. जैसे कि, दूसरे अध्यायमें कहा कि मुमुक्षु प्रथम कर्म करके अन्तःकरण शुद्ध होनेपर ज्ञानयोगसे आत्मदर्शनका उपाय करे, तीसरे चौथेमें ज्ञानीको भी कर्म करना ही श्रेष्ठ कहा, ऐसे दोनों कहते हो जो इन दोनोंमें श्रेष्ठ हो वही कहो ॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ ।
तयोस्तु कर्मसंन्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते ॥ २ ॥

जब अर्जुनने प्रार्थना की तब श्रीकृष्ण भगवान् बोले कि संन्यास जो कर्मका त्याग और कर्मयोग ये दोनों कल्याण कारक हैं उनमें भी कर्मके त्यागसे कर्मयोग विशेष श्रेष्ठ है ॥२॥

ज्ञेयः स नित्यसंन्यासी यो न द्वेष्टि न कांक्षति ।
निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बंधात्प्रमुच्यते ॥३॥

हे महाबाहो ! जो न कोई वस्तुसे द्वेष करे, न चाहना करे वह सुख दुःखादि द्वंद्वरहित नित्य संन्यासी जानना वह सुख-पूर्वक निश्चय बंधनसे मुक्त होता है ॥ ३ ॥

सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः ।
एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फलम् ॥ ४ ॥

जो मूर्ख हैं वे सांख्य योगोंको याने ज्ञानकर्मोंको न्यारे कहते हैं पंडित नहीं कहते हैं. इन दोनोंमेंसे एकमें भी अच्छी तरहसे स्थित हुआ दोनोंके फलको सम्यक् पाता है ॥ ४ ।

यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते ।
एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति ॥५॥

जो स्थान ज्ञानकरके प्राप्त होता है वही कर्मकरके भी प्राप्त होता है इससे ज्ञानको और कर्मको जो एक जानता है सो जानता है याने विद्वान् है ॥ ५ ॥

संन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः ।
योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म न चिरेणाधिगच्छति ॥ ६ ॥

हे महाबाहो ! यह संन्यास कर्म विना प्राप्त होना दुर्गम है याने नहीं हो सकता. जो कर्मयोग युक्त आत्मज्ञानमें मन लगाये हैं वे थोड़े ही कालमें ब्रह्मको प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः ।
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते ॥ ७ ॥

जो कर्मयोगयुक्त है याने निष्काम कर्म करता है और वाणी जिसकी शुद्ध है याने वाणीसे हरिकीर्त्तन करता है और मन शुद्ध है याने मनसे हरिस्मरण करता है और जितेंद्रिय है याने इंद्रियविषयको श्रेष्ठ नहीं जानता है और सर्व भूतप्राणिका आत्मा-अंतर्यामीमें मन है आत्मा जिसका सो पुरुष कर्म करता हुआ भी नहीं लिप्त होता है ॥ ७ ॥

नैव किंचित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित् ।
पश्यञ्छृण्वन्स्पृशञ्जिघ्रन्नश्नन्गच्छन्स्वपञ्श्वसन् ॥
प्रलपन्विसृजन्गृह्णन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्त्तंत इति धारयन् ॥ ८ ॥ ९ ॥

इंद्रिययोंके विषयोंमें इंद्रियां वर्तमान रहती हैं ऐसे धारण करे हुए तत्त्वज्ञानी, कर्मभोगी देखता, सुनता, स्पर्शता, सूंघता, खाता, चलता, सोता, श्वास लेता, बोलता, छोड़ता, पकड़ता; नेत्रखोलता मीचता हुआ भी मैं कुछ भी नहीं करता हूँ ऐसे मानता है ॥ ८ ॥ ९ ॥

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि संगं त्यक्त्वा करोति यः ।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥ १० ॥

जो शरीरमें याने शरीरस्थ इंद्रियोंमें कर्मोंको धारण करके याने कर्म करनेवाली इंद्रियां हैं ऐसे जानके कर्मफलासक्तिको त्यागके कर्म करता है सो पापकरके नहीं लिप्त होता है, जल करके कमलपत्र सरीखा ॥ १० ॥

कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैरिन्द्रियैरपि ।

योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वाऽऽत्मशुद्धये॥११॥

जो योगी हैं वे फलसंग त्यागके आत्मशुद्धिके लिये याने आत्मगत प्राचीन कर्मबंधन छूटनेके वास्ते शरीरकरके, मनकरके, बुद्धिकरके, केवल इंद्रियोंकरके भी कर्म करते हैं ॥ ११ ॥

युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शांतिमाप्नोति नैष्ठिकीम् ।
अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबद्ध्यते ॥ १२ ॥

युक्त याने आत्मज्ञानयोगयुक्त पुरुष कर्मफलको त्यागके ईश्वरनिष्ठ शांतिको प्राप्त होता है जो आत्मज्ञानयोगरहित है सो यथेष्ट करणकरके फलविषे आसक्त हुआ ऐसा जो जीव सो बद्ध होता है ॥ १२ ॥

सर्वकर्माणि मनसा संन्यस्यास्ते सुखं वशी ।
नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन् ॥ १३ ॥

वशी याने जिसका चित्त वश है ऐसा देहधारी जीवसो नवद्वारका पुर जो देह उसमें मनसे कर्मोंको स्थापित करके न करता न कराता हुआ सुख जैसे हो वैसे ही रहता है ॥ १३ ॥

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः ।
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्त्तते ॥ १४ ॥

प्रभु याने अविनाशी आत्मा लोक जो देवादिकशरीर उसका न कर्त्तापन न कर्म न कर्मफलके संयोगको सिरजता है क्योंकि, यह स्वभाव याने अनादिकालसे प्रकृतिसंसर्गकी वासना प्रवृत्त है ॥ १४ ॥

नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः ।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जंतवः ॥ १५ ॥

जैसे कि, कर्तृत्व और कर्मोंको नहीं उत्पन्न करता है इसीसे यह जीवात्मा किसी शरीरसंबंधी पापको भी नहीं ग्रहण करता है

और सुकृतको भी नहीं ग्रहण करता है क्योंकि जिनका ज्ञान अज्ञानकरके ढक रहा है उस करके वे जीव मोहको प्राप्त होते हैं याने अज्ञानकरके देहादिकमें आसक्ति और उससे दुःख होता है ॥ १५ ॥

ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः ।
तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम् ॥ १६ ॥

जिनका आत्मसंबंधी ज्ञानकरके वह अज्ञान नष्ट हुआ है उनका वह श्रेष्ठ ज्ञान सूर्यसदृश प्रकाश करता है याने वे संसारदुःखरहित मुक्त हैं ॥ १६ ॥

तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः ।
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः ॥ १७ ॥

उस आत्मज्ञानमें ही है बुद्धि जिनकी उसीमें है मन जिनका उसीमें है निष्ठा जिनकी और वही है श्रेष्ठ स्थान जिनका इस तरहसे ज्ञानकरके नष्ट हुए हैं मनके विकार जिनके वे पुरुष मुक्तिको पाते हैं ॥ १७ ॥

विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥१८॥

विद्या और विनय युक्त ब्राह्मणमें, गऊमें, हाथीमें, और कुत्तेमें और चांडालमें भी पंडितजन समदर्शी होते हैं याने आत्माको आप सदृश जानते हैं ॥ १८ ॥

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः ।
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणि ते स्थिताः॥१९॥

जिनका मन ऐसी समतामें स्थित है उन्होंने यहां ही संसार जीता है. जिस वास्ते कि, ब्रह्म निर्दोष सर्वत्र समान है इसीसे वे ब्रह्मप्राप्ति निमित्त स्थित हैं ॥ १९ ॥

न प्रहृष्येत्प्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चाप्रियम् ।
स्थिरबुद्धिरसंमूढो ब्रह्मविद्ब्रह्मणि स्थितः ॥ २० ॥

प्रिय वस्तुको पाकर हर्ष नहीं और अप्रियको पाकर व्याकुल न होना; ऐसा स्थिरबुद्धि विचारशील ब्रह्मका ज्ञाता ब्रह्मप्राप्तिके निमित्त स्थित है ॥ २० ॥

बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विन्दत्यात्मनि यत्सुखम् ।
स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षय्यमश्नुते ॥ २१ ॥

शब्दादिक विषयोंमें अनासक्त हुआ जो आत्मामें सुखको पाता है सो ब्रह्मप्राप्ति उपाय चित्तवाला पुरुष अक्षय सुखको पाता है याने मोक्ष पाता है ॥ २१ ॥

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते ।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः ॥ २२ ॥

हे कुंतीपुत्र ! जो शब्दस्पर्शादिक भोग हैं वे दुःखके कारण आद्यंतवंत हैं याने होते जाते रहते हैं अर्थात् अल्पसुख हैं इस निश्चयसे उनमें पंडितजन नहीं रमते हैं ॥ २२ ॥

शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक् शरीरविमोक्षणात् ।
कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः ॥ २३ ॥

जो मनुष्य कामक्रोधके वेगको शरीरसे निकलनेके प्रथमें उस वेगको सहनकर सकता है सो योगी है, सो मनुष्य इस लोकमें सुखी है ॥ २३ ॥

योऽन्तःसुखोऽन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेव यः ।
स योगी ब्रह्म निर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति ॥ २४ ॥

जो आत्मामें ही सुखी और आत्मामें ही है विश्राम जिसको तैसे ही जो अंतर्ज्योति याने आत्मज्ञान ही करके प्रकाशित है सोही योगी ब्रह्मप्राप्ति उपाय तत्पर ब्रह्मवत् मुक्तिको प्राप्त होता है २४॥

लभन्ते ब्रह्म निर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः ॥
छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः ॥ २५ ॥

जिनके लाभ अलाभ सुख दुःखादिक दो दो उपद्रव नष्ट हुए हैं, जिनका मन ईश्वरमें लगा है और सर्वभूत प्राणिमात्रके हितमें रहते हैं इससे उनके पाप क्षीण हुए हैं ऐसे ऋषिजन ब्रह्मसमान मुक्तिको पाते हैं ॥ २५ ॥

कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेतसाम् ।
अभितो ब्रह्म निर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम् ॥ २६ ॥

जो कामक्रोधरहित हैं और ईश्वरप्राप्तिके यत्न करनेवाले हैं और चित्त जिनके वश हैं ऐसे आत्मज्ञानियोंको सर्व प्रकारसे ब्रह्मसुख वर्त्तमान होता है ॥ २६ ॥

स्पर्शान्कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवांतरे भ्रुवोः ।
प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यंतरचारिणौ ॥२७॥
यतेन्द्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः ।
विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः ॥ २८॥

बाह्य इंद्रियोंके स्पर्श जो शब्दादिक विषय उनको बाहर याने त्याग करके फिर भौंहोंके मध्यमें दृष्टिको करके नासिकाके भीतर ही संचार करे ऐसे प्राणापानोंको सम करके जो मुनि याने मननशील पुरुष इन्द्रिय, मन और बुद्धिको वश करे, मोक्षमें ही आसक्त, इच्छा, भय और क्रोध करके रहित हो सो सदा मुक्त ही है ॥ २७ ॥ २८ ॥

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम् ।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति॥२९॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे कर्मसंन्यासयोगो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अब और भी अति सुगम मुक्तिके उपाय कहते हैं. सर्व यज्ञ और तपोंका भोक्ता, सर्व लोकोंका महेश्वर याने लोकेश्वरोंका भी ईश्वर सर्वभूतप्राणिमात्रका सुहृद् ऐसा मुझको जाँनके भी मुक्तिको प्राप्त होता है ॥ २९ ॥

इति श्रीमत्सुकुलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादविरचितायां गीतामृत-तरंगिण्यां पञ्चमाध्यायप्रवाहः ॥ ५ ॥

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः ।
स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः ॥ १ ॥

कर्मयोग कहके अब ज्ञानकर्मसाध्य आत्मदर्शनरूप योगाभ्यास कहते हैं. तहां कर्मयोगकी अपेक्षारहित योगसाधनत्व दृढ करनेको ज्ञानाकार कर्मयोगको योगशिरोमणि कहते हैं—सो ऐसे कि, जो कर्मफलको न चाहता हुआ स्ववर्णाश्रमोचित करने योग्य कर्मको करता है सो संन्यासी है और योगी है. जिसने अग्निकर्मको त्यागा है सो संन्यासी और योगी नहीं है और जिसने क्रियाकर्मको त्यागा है सो भी संन्यासी योगी नहीं है ॥ १ ॥

"यहां एक श्रीकृष्णका अभिप्राय और भी दीखता है, कलियुगमें संन्यासका निर्वाह होगा नहीं क्योंकि मनुष्योंकी बुद्धि चंचल होगी. सो देखनेमें भी आता है कि, जो घर छोड़ते हैं तो संन्यासी होके मठ बाँधके व्यापार करते हैं; जो स्त्रीविवाहित नहीं तो परस्त्रीगमन करते हैं. पुत्रोंकी जगह शिष्य करते हैं; ऐसे ही और भी सामान्य गृहस्थोंसे अधिक रखके केवल प्रपञ्चरत होते हैं इससे श्रीकृष्णने निष्कामकर्म कर्त्ताको ही संन्यासी योगी कहा है और अग्निकर्म तथा क्रिया त्यागनेका निषेध किया है"॥

यं संन्यासमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पाण्डव।
न ह्यसंन्यस्तसंकल्पो योगी भवति कश्चन ॥ २॥

अब कहे हुए कर्मयोगमें ज्ञान भी दिखाते हैं. हे पांडुपुत्र ! जिसको संन्यास कहते हैं उसको अभेदकरके योग जानो जैसे कि; कर्मफलसंकल्पत्याग विना कोई भी योगी नहीं होता है. अर्थात् कर्मफलको ईश्वरार्पण किये विना योगी संन्यासी होता नहीं. जो कर्मफलको ईश्वरार्पण करता है वही योगी और संन्यासी है ॥ २ ॥

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते।
योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते ॥ ३ ॥

आत्मज्ञानकी प्राप्ति चाहनेवाले मननशीलको ज्ञानप्राप्ति-कारण कर्म कहा है, उसी ज्ञान प्राप्त हुएको मुक्तिकारण संकल्प-विकल्पत्यागपूर्वक कर्म ही कहा है ॥ ३ ॥

यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते।
सर्वसंकल्पसंन्यासी योगारूढस्तदोच्यते ॥ ४ ॥

जब न इंद्रियोंके विषयोंमें न कर्मोंमें आसक्त हो तब सर्वसं-कल्पोंका त्यागी योगारूढ कहाता है इससे कर्म करना आव-श्यक है ॥ ४ ॥

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बंधुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥ ५ ॥

ऐसे अपने वश मनके द्वारा अपना उद्धार करे, अपना अवसाद याने घात अर्थात् अधोगति न करे, कारण कि, अपना मन ही अपना मित्र है और वह मन ही अपना शत्रु है ॥ ५ ॥

बंधुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्ततात्मैव शत्रुवत् ॥ ६ ॥

जिसने बुद्धिकरके निश्चय मन जीता है उस जीवात्माका मन मित्र है और जिसने मन नहीं जीता है उसका मन शत्रुत्वमें शत्रु सरीखा होता है ॥ ६ ॥

जितात्मनः प्रशांतस्य परमात्मा समाहितः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः ॥ ७ ॥

शीत, उष्ण, सुख और दुःखोंमें तथा मान, अपमानोंमें जीता है मन जिसने ऐसे शांतकी बुद्धि अतिशय परिपूर्ण रहती है ॥७॥

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः ।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकांचनः ॥ ८ ॥

ज्ञान जो आत्मज्ञान, विज्ञान जो विशेष ज्ञान अर्थात् अनात्म आत्मविवेक इन करके जिसका मन तृप्त हो कूटस्थ याने निर्विकार सर्व शरीरोंमें आत्माको समान जाननेवाला जितेंद्रियत्वसे जो ठीकरी, पत्थर और सोना इनको सम जान रहा है ऐसा योगी युक्त याने आत्मदर्शनयोगयुक्त कहलाता है ॥ ८ ॥

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबंधुषु ।
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते ॥ ९ ॥

सुहृद् जो प्रत्युपकार विना हितकारक, मित्र परस्पर उपकारी, अरि शत्रु, उदासीन जो प्रीति वैर रहित, मध्यस्थ जो सबकाल प्रीति वैर समान, द्वेष्य जो सदा ईर्षा करता हो सो, जो सदा हितेच्छु सो बंधु, जो धर्मशील सो साधु और जो पापशील सो पापी इन सबोंमें भी जो समबुद्धि हो सो श्रेष्ठ है ॥ ९ ॥

योगी युंजीत सततमात्मानं रहसि स्थितः ।
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः ॥ १० ॥

एक ही बैठा, स्ववश मनवाला, सांसारिक आशारहित, परिग्रहरहित ऐसा योगी एकांतमें बैठा हुआ मनको निरंतर परमात्मामें लगांता रहे ॥ १० ॥

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः ।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम् ॥ ११ ॥
तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः ।
उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये ॥ १२ ॥

अब योगाभ्यासमें आसन नियम कहते हैं—पवित्र स्थानेमें न अति ऊंचा, न अतिनीचा, कुशासनपर मृगचर्मादिक उसपर वस्त्र ऐसा स्थिर अपना आसन बिछाके उस आसनपर बैठकर मनको एकाग्र कर चित्त और इंद्रियोंके कर्म स्ववश कर अपने बंधन छूटनेके वास्ते योगको करे ॥ ११ ॥ १२ ॥

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरम् ।
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ॥ १३ ॥
प्रशांतात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः ।
मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः ॥ १४ ॥

अब बैठनेका नियम कहते हैं—काय जो मध्यशरीर शिर और ग्रीवा इनको अचल स्थिर और सम रखते हुए अपने नासिकाग्रको देखकर और और ओर न देखता हुआ प्रशांतचित्त भयरहित ब्रह्मचर्यव्रतमें स्थित मुझमें चित्त लगाये हुए मनको नियमित करके आत्मनिष्ठ पुरुष मुझमें लीन हुआ बैठा रहे ॥ १३ ॥ १४ ॥

युंजन्नेवं सदात्मानं योगी नियतमानसः ।
शांतिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति ॥ १५ ॥

ऐसे नियममें मन है जिसका ऐसा योगी ऐसे ही सबकालमें

मनको मुझमें लगाता हुआ आनंद है परम जिसमें ऐसी मेरे सदृश शांतिको पाता है ॥ १५ ॥

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकांतमनश्नतः ।
न चातिस्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन ॥ १६ ॥

अब योगीके आहारादिकोंका नियम कहते हैं—हे अर्जुन ! जो अति भोजन करता है उसका योग नहीं सिद्ध होता है और जो कुछ भी भोजन न करे उसका भी योग नहीं सिद्ध होता है और अतिसोनेवालेका योग नहीं सिद्ध होता है, अतिजागनेवालेका भी योग नहीं सिद्ध होता है ॥ १६ ॥

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्तस्वप्नाऽवबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥ १७ ॥

जो आहार और स्त्रीप्रसंग प्रमाणमें करेगा " आहारका प्रमाण यह कि,आधा पेट अन्नसे और चौथाई जलसे भरकर चौथाई पवन-संचारके लिये खाली रखे.स्त्रीप्रसंगप्रमाण यह है कि, अतिकामकी इच्छा होनेसे स्त्रीसंग करे; जो कोई यहां शंका करे कि, योगीको तो ब्रह्मचर्य कह आये हैं; जैसे कि, इसी अध्यायके चौदहवें श्लोक-में कहा है सो सत्य है, परंतु "ऋतौ भार्यामुपेयात्" इस श्रुतिप्र-माणसे ऋतुसमयमें स्त्रीप्रसंग करनेमें भी एक ब्रह्मचर्य है, और भी कहा है कि, "इंद्रियाणींद्रियार्थेषु वर्त्तंत इति धारयन् ॥ कर्मेंद्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन" इत्यादि तथा कहेंगे कि, "अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम्"तो जो योगी स्त्रीप्रसंग न करेगा तो उसके कुलमें जन्म कैसे होगा? इत्यादि प्रमाणोंसे योगी स्त्रीप्रसंग प्रमाणसे करे यह विहारशब्दका अर्थ सिद्ध है. ऐसे ही कर्ममें भी चेष्टा प्रमाणसे ही करे, अति परिश्रम न करना यहाँ भागवतका प्रमाण देते हैं "सिद्धेऽन्यथार्थे न यतेत तत्र परिश्रमं तत्र समीक्षमाणः " ऐसा द्वितीय स्कंधके दूसरे अध्यायके तीसरे

श्लोकमें कहा है। ऐसे ही जो प्रमाणसे सोवे और प्रमाणसे ही जागे उसका दुःखनाशक योग सिद्ध होता है ॥ १७ ॥

यदा विनियतं चित्तमात्मन्येवावतिष्ठते ।
निःस्पृहः सर्वकामेभ्यो युक्त इत्युच्यते तदा ॥ १८ ॥

जब आत्मामें ही अतिनिश्चल चित्त लगा रहता है तब सब कामनाओंसे निस्स्पृह हो वह पुरुष युक्त ऐसा कहाता है ॥ १८ ॥

यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता ।
योगिनो यतचित्तस्य युंजतो योगमात्मनः ॥ १९ ॥

जैसे निवातस्थानमें धरा हुआ दीपक नहीं हिलता वैसे ही वश है चित्त जिसका ऐसे योगको करनेवाले योगीके मनकी जो उपमा सोई कही है ॥ १९ ॥

यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया ।
यत्र चैवात्मनाऽऽत्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति ॥ २० ॥

योगसेवन करके विषयोंसे रोका हुआ चित्त जहां विश्रामको प्राप्त होता है और जहां बुद्धिकरके आत्मस्वरूपका निश्चय करता हुआ मनमें ही संतुष्ट हो ॥ २० ॥

सुखमात्यंतिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम् ।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः ॥ २१ ॥

जो इंद्रियोंके जाननेमें न आवे, बुद्धिसे ही ग्रहण करनेमें आवे ऐसा जो अत्यंत सुख उसको जिस योगमें स्थित हुआ यह पुरुष जानता है ऐसे निश्चय और फिर आत्मस्वरूपसे मैंचलायमान हो ॥ २१ ॥

यं लब्ध्वा चाऽपरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः ।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ॥ २२ ॥

जिसको पाकर फिर उससे अधिक श्रेष्ठ लाभ नहीं मानता है जिसमें प्रवृत्त हो भारी भी दुःखसे नहीं घबराता है ॥ २२ ॥

तं विद्याद्दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम् ।
स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा॥२३॥

उसको दुःखका संयोग और वियोगकारक योगनामक जानना सो योग निर्विकल्प चित्तसे निश्चयकरके करने ही योग्य है ॥२३॥

संकल्पप्रभवान्कामांस्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः ।
मनसैवेन्द्रियग्रामं विनियम्य समंततः ॥ २४ ॥
शनैः शनैरुपरमेद्बुद्ध्या धृतिगृहीतया ।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किंचिदपि चिन्तयेत्२५॥

स्पर्शजन्य और संकल्पज इस भेदसे कामना दो प्रकारकी है, उनमें स्पर्शज शीत उष्णादिक, संकल्पज पुत्रवित्तादिक इनमें स्पर्शजका त्याग स्वरूपसे नहीं हो सकता इससे संकल्पज सर्व कामनाओंको समग्रतासे मनसे ही त्यागकर सब इंद्रियोंको सर्वत्रसे नियमित करके विवेकशुद्ध बुद्धि करके धीरे धीरे विश्रामको प्राप्त होना फिर मनको आत्मस्वरूपमें स्थिर करके आत्मस्वरूपके अतिरिक्त और किसीको भी न चिंतन करना ॥ २४ ॥ २५ ॥

यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम् ।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥ २६ ॥

यह मन चंचल है इसीसे आत्मस्वरूपमें स्थिर नहीं रहता है सो यह मन जहां जहां लगे वहां वहांसे इसको फिराके आत्म-स्वरूपमें ही लगाना ॥ २६ ॥

प्रशांतमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम् ।
उपैति शांतरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम् ॥ २७ ॥

कारण कि, जिसका मन आत्मस्वरूपमें स्थिर है उसीसे उसका रजोगुण भी नष्ट हुआ है, उससे वह निष्पाप है, उससे वह अपने स्वरूपमें स्थिर है ऐसे इस योगीको उत्तम याने आत्मानुभवरूप सुख प्राप्त होता है ॥ २७ ॥

युंजन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः ।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यंतं सुखमश्नुते ॥ २८ ॥

ऐसे निष्पाप योगी इसीतरह सर्वदा मनको स्वरूपज्ञानमें युक्त करता करता ब्रह्मानुभवरूप अत्यंत सुखको सुखसे पाता है २८॥

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ॥ २९ ॥

सर्वत्र शत्रुमित्रादिकोंमें समदृष्टि योग जो " द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया " इस श्रुतिप्रमाणसे सखित्वरूप संयोग उसमें लगाया है मन जिसने वह सब जगह आपरूपको आकाशादि सर्वभूतोंमें स्थित और उन आकाशादि सर्वभूतोंको आपमें देखता है॥२९॥

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥३०॥

ऐसे जो मुझको सर्वत्र मालाके मणिकोंमें सूत्रकी तरह देखता है और सब जगत् सूत्रमें मणिकोंकी तरह मुझमें देखता है मैं उसके अदृश्य नहीं होता हूँ और वह मेरे अदृश्य नहीं है ॥ ३० ॥

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः ।
सर्वथा वर्त्तमानोऽपि स योगी मयि वर्त्तते ॥३१॥

जो एकत्व अर्थात् सबसे मित्रभाव, (एकत्वका अर्थ जो स्वरूपकी एकता करे तो भजन किसका करे ? इससे मित्रता ही अर्थ है. वाल्मीकीयसुंदरकांडमें भी " रामसुग्रीवयोरैक्यं देव्येवं

समजायत" इस हनुमानके वाक्यसे एकताका अर्थ मित्रता ही सिद्ध होता है इससे) जो सबकी मित्रतामें रहता हुआ सब भूतोंमें व्यापकै मुझको भजता है निश्चय वह योगी सब आचरण करता हुआ मुझमें वर्त्तमान है याने मेरे हृदयमें वसता है ॥३१॥

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन ।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः॥३२॥

हे अर्जुन ! जो सुखं अथवा दुःखको अपने समत्व करके सर्वत्र समानं देखता है वह योगी उत्तम है. यह श्लोक उनतीसवें श्लोकको स्पष्ट करनेवाला है ॥ ३२ ॥

अर्जुन उवाच ।

योऽयं योगस्त्वया प्रोक्तः साम्येन मधुसूदन ।
एतस्याहं न पश्यामि चंचलत्वात्स्थितिं स्थिराम्३३

श्रीकृष्णके वाक्य सुनके अर्जुन बोले-कि, हे मधुसूदन ! जो यह योग समतासे तुमने कहा सो मनके चंचल होनेसे मैं इसकी स्थिर स्थिति नहीं देखता हूं ॥ ३३ ॥

चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम् ।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥३४॥

हे कृष्ण! जिससे कि यह मन चंचल इंद्रियोंका क्षोभक दृढ बली है मैं इसका रोकना पवनका रोकना जैसा दुष्कर मानता हूं३४॥

श्रीभगवानुवाच ।

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् ।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ॥३५॥

ऐसा सुन श्रीकृष्ण भगवान् बोले-कि, हे महाबाहो ! यह मन चंचल है इसीसे रोकनेमें आना कठिन है, यहां संशय नहीं तो

भी हे कुंतीपुत्र ! अभ्यास करके और वैराग्य करके रोकनेमें आता है ॥ ३५ ॥

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः ।
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः॥३६॥

यह योग जिसने मन वश न किया उससे प्राप्त होनेका नहीं ऐसी मेरी मति है और जिसने मनको वश किया है उससे यत्न करते करते उपायसे प्राप्त हो सकता है ॥ ३६ ॥

अर्जुन उवाच ।

अयतिः श्रद्धयोपेतो योगाच्चलितमानसः ।
अप्राप्य योगसंसिद्धिं कां गतिं कृष्ण गच्छति ३७॥

"नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते" इत्यादि वाक्यों करके योगमाहात्म्य सुना था तो भी विशेषज्ञानके वास्ते फिर पूंछते हैं जैसे कि, हे कृष्ण ! जो श्रद्धाकरके युक्त और यत्न न कर सका इससे योगसे मन चलायमान हुआ इससे योगसिद्धिको न पाकर किस गतिको जाता है ॥ ३७ ॥

कच्चिन्नोभयविभ्रष्टश्छिन्नाभ्रमिव नश्यति ।
अप्रतिष्ठो महाबाहो विमूढो ब्रह्मणः पथि ॥ ३८ ॥

हे महाबाहो ! वेदके मार्गमें भूलाहुआ याने स्वर्गादि प्राप्ति निमित्त कर्म त्यागकर निष्कामकर्मरूप योगको भी न प्राप्त हुआ इसीसे वह अप्रतिष्ठित और उभयभ्रष्ट अर्थात् स्वर्गादि प्राप्तिकारक कर्म भी छोड़ा और योग भी न मिला इसीसे कदाचित छिन्नाभ्रकी तरह जैसे बड़े मेघमेंसे निकलकर मेघका टुकडा दूसरे मेघको न प्राप्त होकर बीचमें ही नष्ट होता है वैसे न नष्ट हो" ॥ ३८ ॥

एतन्मे संशयं कृष्ण च्छेत्तुमर्हस्यशेषतः ।
त्वदन्यः संशयस्यास्य च्छेत्ता न ह्युपपद्यते ॥ ३९ ॥

हे कृष्ण ! इस मेरे संशयको अच्छी तरहसे छेदन करनेको योग्य हो क्योंकि, इस संशयको दूरकरनेवाला तुम्हारे विना दूसरा नहीं मिलेगा ॥ ३९ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते ।
न हि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति ॥४०॥

अर्जुनके वाक्य सुनके कृष्ण बोले—कि,हे पार्थ ! उस योगीका नाश न इस लोकमें ही न परलोकमें होता है; क्योंकि,हे तात ! शुभकर्त्ता कोई भी दुर्गतिको नहीं पाता है ॥ ४० ॥

प्राप्य पुण्यकृतांल्लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः ।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ॥४१॥

जो योग पूरा किए विना मर जाय तो भी वह योगभ्रष्ट पुण्य करनेवालोंके लोकोंको प्राप्त होकर वहां अनेक वर्ष रहकर पवित्र और धनवालोंके घरमें जन्म लेता है ॥ ४१ ॥

अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम् ।
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम् ॥४२॥

अथवा बुद्धिमान् योगियोंके कुलमें ही जन्मलेता है, जो ऐसा यह जन्म सो इस लोकमें निश्चय दुर्लभ है ॥ ४२ ॥

तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम् ।
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनंदन ॥ ४३ ॥

हे कुरुनंदन ! वहां जन्म लेकर वही पूर्वदेहसंबंधी बुद्धि संयोगको पाता है और उसके पीछे फिर भी उस सिद्धिके निमित्त यत्न करता है ॥ ४३ ॥

पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः ।
जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्त्तते ॥ ४४ ॥

जो न करना चाहे इंद्रियजित न हो तो भी वह पुरुष उसी

पूर्वाभ्यासकरके उसीको प्राप्त होता है. क्योंकि, जो योगके जाननेकी इच्छा भी करे तो भी शब्दब्रह्म याने देवादिनाम शब्द-युक्त जो प्रकृति उसको उल्लंघन कर जाता है अर्थात् मुक्त हो जाता है ॥ ४४ ॥

प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्बिषः ।
अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम् ॥४५॥

ऐसे प्रयत्नसे योग करता करता निष्पाप हुआ योगी अनेक जन्मोंसे सिद्ध होकर निश्चय मुक्तिको प्राप्त होता है ॥ ४५ ॥

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः॥
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥४६॥

हे अर्जुन ! योगी जो निष्काम कर्म कर्ता है वह सकामिक तपस्वियोंसे अधिक माना है, ज्ञानियोंसे भी अधिक है और सकाम कर्म करनेवालोंसे भी "योगी अधिक है इससे तुम "योगी हो" याने निष्काम होके स्वधर्मरूप क्षत्रियकर्मसे युद्ध करो॥४६॥

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना ।
श्रद्धावान् भजते यो मां स "मे युक्ततमो मतः ॥४७॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां
योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे अभ्यास-
योगो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

जो श्रद्धावान् पुरुष मुझमें लगे हुए चित्तसे (श्रद्धायुक्त हो मुझको भजता है सो सर्व योगियोंमें भी श्रेष्ठ योगी है ऐसा मेरा अभिप्राय है ॥ ४७ ॥

इति श्रीमत्सुकुलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादविरचितायां श्रीमद्भगवद्गीतामृत-
तरंगिण्यां षष्ठाऽध्यायप्रवाहः ॥ ६ ॥

इति प्रथमं षट्कं समाप्तम् ।

अथ द्वितीयषट्कं प्रारभ्यते ।

प्रथम षट्कमें याने प्रथमके छः अध्यायोंमें ईश्वरप्राप्तिका उपायरूप भक्तियोगका अंग आत्मस्वरूपज्ञानकी प्राप्ति ज्ञानयोग और कर्मयोगसे कही. अब मध्य षट्कमें याने छः से बारह पर्यंत छः अध्यायोंमें परमात्मस्वरूपका यथार्थ ज्ञान और उस ज्ञानके माहात्म्यपूर्वक भगवत्की उपासना याने भक्ति इसीको प्रतिपादन करते हैं. इसका खुलासा अठारहवें अध्यायमें पैतालीस श्लोक पीछे "यतः प्रवृत्तिः" यहाँसे लेके "मद्भक्तिं लभते पराम्" इस चौवनवे श्लोकपर्यंत कहेंगे अब सातवें अध्यायमें भगवान् अपना स्वरूप वैभव वर्णन करते हैं।

श्रीभगवानुवाच ।

मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युंजन्मदाश्रयः ।
असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु ॥ १ ॥

हे पृथापुत्र अर्जुन ! तुम मुझमें चित्त लगाये हुए मेरे आश्रित होकर योगमें युक्त हुए जैसे संशयरहित समग्र याने विभूतिबलसहित मुझको जानोगे सो सुनो ॥ १ ॥

ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः ।
यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते ॥२॥

मैं तुमको इस विज्ञानसहित ज्ञानको संपूर्णकरके कहता हूं जिसको जानके फिर इस लोकमें और कुछ भी जानने योग्य नहीं रहता है ॥ २ ॥

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये ।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ॥३॥

मनुष्योंके हजारोंमें याने अनेक हजार मनुष्योंमें आत्मज्ञानसिद्धिके वास्ते कोई एक यत्न करता है यत्न करनेवाले सिद्धोंमें

भी कोई एक मुझको निश्चयकरके जानता है अर्थात् ऐसा जाननेवाला ही दुर्लभ है ॥ ३ ॥

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥ ४ ॥
अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ॥ ५ ॥

हे महाबाहो! पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार ऐसे आठ प्रकारकरके अलहदा २ हुई यह जो मेरी प्रकृति सो यह अपरा याने जड है और इससे और जीवरूपको मेरी परा याने चेतन प्रकृति जानो, जिस प्रकृतिकरके यह जगत् धारण किया गया है ॥ ४ ॥ ५ ॥

एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय।
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा ॥ ६ ॥

सम्पूर्ण प्राणिमात्र इन्हीं दोनोंसे प्रगट होते हैं ऐसा जानो मैं सर्व जगत्का उत्पत्तिस्थान तथा प्रलयस्थान भी हूं ॥ ६ ॥

मत्तः परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति धनंजय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ॥ ७ ॥

सूत्रमें मालाके मणियोंकी तरह मुझमें यह सर्व जगत् गुंथा है इसीसे हे धनंजय मुझसे न्यारा और कुछ भी नहीं है ॥ ७ ॥

रसोऽहमप्सु कौंतेय प्रभाऽस्मि शशिसूर्ययोः।
प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु ॥ ८ ॥

"सूत्रे मणिगणा इव" इसीको दिखाते हैं. हे कुंतीपुत्र! जलमें रस चंद्रसूर्यकी कांति सर्व वेदोंमें ॐकार, आकाशमें शब्द पुरुषोंमें पुरुषार्थ मैं हूं याने इन जलादिकोंके सार जो रसादिक उनका

भी शरीर में और ये मेरे शरीर हैं ऐसे अहं शब्दका अर्थ सर्वत्र शरीर शरीरी संबंधसे जानना ॥ ८ ॥

पुण्यो गंधः पृथिव्यां च तेजश्चास्मि विभावसौ ।
जीवनं सर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु ॥ ९ ॥

पृथिवीमें पवित्र गंध और अग्निमें तेज मैं ही हूं, सब भूतप्राणियोंमें आयुष्य और तपस्वियोंमें तप मैं हूं ॥ ९ ॥

बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम् ।
बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ॥१०॥

हे पार्थ! सब भूतोंका सनातन उत्पत्तिकारण मुझको जानो, मैं बुद्धिमानोंमें बुद्धि, तेजस्वियोंमें तेज हूं ॥ १० ॥

बलं बलवतां चाहं कामरागविवर्जितम् ।
धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ ॥ ११ ॥

हे भरतर्षभ! मैं जो वस्तु प्राप्त नहीं उनकी कामना और प्राप्त वस्तुमें जो अनुराग इन कामरागोंसे रहित बलवंतोंका बल और भूत प्राणियोंमें धर्मसे अविरुद्ध काम हूं ॥ ११ ॥

ये चैव सात्त्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये ।
मत्त एवेति तान्विद्धि न त्वहं तेषु ते मयि ॥१२॥

जो शमादिक सात्त्विक भाव और द्वेषादिक राजस और जो मोहादिक तामस भाव हैं वे मुझसे "ही हैं ऐसे" उनको जानो तो "भी मैं" उनमें नहीं याने उनके स्वाधीन नहीं हूँ वे मुझमें हैं-अर्थात् मेरे स्वाधीन हैं ॥ १२ ॥

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत् ।
मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम् ॥१३॥

इन तीनों गुणमय भावोंसे मोहित यह सब जगत् इनसे परे अविनाशी मुझको नहीं जानता है ॥ १३ ॥

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरंति ते ॥१४॥

इस लिए यह गुणमयी दैवी याने मेरी संबंधिनी मेरी माया दुरत्यय है इसीसे जो मेरे शरण होते हैं वे इस मायाको तरते हैं ॥ १४ ॥

न मां दुष्कृतिनो मूढा प्रपद्यंते नराधमाः ।
माययाऽपहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः ॥ १५ ॥

मायासे हरा गया है ज्ञान जिनका ऐसे मनुष्य असुरपनेको प्राप्त हुए निंदित कर्म करनेवाले नरोंमें अधम मूर्ख मुझको नहीं प्राप्त होते हैं ॥ १५ ॥

चतुर्विधा भजंते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन ।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥ १६ ॥
तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते ।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं च स च मे प्रियः १७

हे अर्जुन ! एक प्रकारके जो संसारसे दुःखी (आर्त) दूसरे जाननेकी इच्छा करनेवाले (जिज्ञासु) तीसरे धनादिक चाहनेवाले (अर्थार्थी) चौथे स्वरूपज्ञाता(ज्ञानी) ऐसे चार प्रकारके सुकृति जन मुझको भजते हैं. हे भरतर्षभ ! उनमें ज्ञानी नित्य योगयुक्त मेरी मुख्य भक्तिवाला श्रेष्ठ है कारण कि, ज्ञानियोंको मैं अत्यन्त प्रिय हूं और वह मेरे अतिशय प्रिय हैं ॥ १६ ॥ १७ ॥

उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम् ।
आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम्॥१८॥

ते सब ही उदार हैं तो भी ज्ञानी मुझको पुत्रवत् प्रिय है ऐसा मेरा अभिप्राय है कारण कि, वह मुझमें ही चित्तको युक्त किये हुए सर्वोत्तम प्राप्ति मेरेको ही ध्याता है ॥ १८ ॥

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते ।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥ १९ ॥

अनेक जन्मोंके अंतमें सब जगत् वासुदेवरूप है ऐसा ज्ञानवान् होता है याने वासुदेवात्मक जानकर ईर्षादिसे रहित होता है तब मुझको भजता है वह महात्मा अतिदुर्लभ है अर्थात् कोट्यवधिमें कोई एक होता है ॥ १९ ॥

कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यंतेऽन्यदेवताः ।
तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया॥२०॥

दूसरे सब तो अपनी राजस तामस प्रकृति करके राजस तामस कर्मोंमें लगे हुए उन उन कामनाओंसे नष्टज्ञान हो उन उन पुत्रादिनिमित्त नियमोंको धारण करके अन्यदेवोंको भजते हैं ॥ २० ॥

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति ।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम् ॥२१॥
स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते ।
लभते च ततः कामान्मयैव विहितान्हितान् ॥२२॥
अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम् ।
देवान् देवयजो यांति मद्भक्ता यांति मामपि ॥२३॥

"तदेवाग्निस्तत्सूर्यस्तदु चन्द्रमाः" इत्यादि श्रुतियोंके अर्थको स्पष्ट करनेवाली जो "यस्यादित्यः शरीरं" इत्यादि श्रुतियोंके अर्थ रूप इन श्लोकोंसे अन्य देवताओंका भी भगवान् आपहीके शरीरभूत दिखाते हैं-जैसे कि, जो जो भक्त जिस जिस इंद्रादिरूप

मेरे शरीरको श्रद्धाकरके अर्चनेको चाहता है उस उस भक्तको मैं वेही अचलश्रद्धा धारण करता हूँ वह भक्त उसी श्रद्धासे युक्त हो उसी इंद्रादिरूप मेरी मूर्तिका आराधन करता है और उसीसे मेरे ही करके नियमित किये हुए हित कामनाओंको प्राप्त होता है; परंतु उन अल्पबुद्धियोंको वह फल नाशवान् होता है जैसे कि, इंद्रादिदेवपूजनेवाले देवोंको प्राप्त होते हैं मेरे भक्त निश्चय मुझको प्राप्त होते हैं ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यंते मामबुद्धयः ।
परं भावमजानंतो ममाव्ययमनुत्तमम् ॥ २४ ॥

मेरे अविनाशी सर्वोत्तम परस्वरूपको न जाननेवाले मूर्ख-लोग जो मैं सबके हृदयमें मूर्तिमान् प्राप्त मुझको अव्यक्त याने अमूर्ति मानते हैं तात्पर्य इसीसे अन्य देवोंको भजते हैं ॥२४॥

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः ।
मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम् २५॥

यहाँ न जाननेका कारण यह है कि, योगमायासे आच्छा-दित मैं सबको दीखता नहीं हूँ इसीसे यह मूर्ख जन अजन्मा अविनाशी मुझको नहीं जानता है ॥ २५ ॥

वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन ।
भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन॥२६॥

हे अर्जुन ! मैं जो प्रथम हुए उनको और हैं उनको और होंगे उन सर्वभूत प्राणिमात्रोंको जानता हूँ, परंतु मुझको कोई भी नहीं जानता है ॥ २६ ॥

इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वंद्वमोहेन भारत ।
सर्वभूतानि संमोहं सर्गे यांति परंतप ॥ २७ ॥

हे भारत ! हे परंतप ! इच्छा और द्वेषसे उत्पन्न हुए सुख, दुःख

लाभ अलाभादि द्वंद्वरूप मोहसे सर्वभूत प्राणी संसारमें मोहको प्राप्त होते हैं ॥ २७ ॥

येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम् ।
ते द्वंद्वमोहनिर्मुक्ता भजंते मां दृढव्रताः ॥ २८ ॥

और जिन पुण्यकर्मवाले मनुष्योंका पाप नाशको प्राप्त हुआ है वे द्वंद्व मोहसे छूटे हुए दृढव्रती मुझको भजते हैं ॥ २८ ॥

जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतंति ये ।
ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम् ॥ २९ ॥

जो मेरे आश्रित होकर जरा मरण छूटनेके लिये यत्न करते हैं वे उस ब्रह्मको और सर्व अध्यात्मको सर्व कर्मको जानते हैं इन ब्रह्मशब्दादिकोंका स्पष्ट बोध आठवें अध्यायमें होगा ॥ २९ ॥

साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः ।
प्रयाणकालेऽपि च मां ते विदुर्युक्तचेतसः ॥ ३० ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विज्ञानयोगो नाम
सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

जो मुझको अधिभूत और अधिदैवसहित और अधियज्ञसहित जानते हैं वे मनुष्य और मुझमें नित्य चित्त लगाये हुए मरणकालमें भी मुझको जानते हैं ॥ ३० ॥

इति श्रीमत्सुकुलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादविरचितायां गीतामृततरंगिण्यां सप्तमाध्यायप्रवाहः ॥ ७ ॥

अर्जुन उवाच ।

किं तद्ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम ।
अधिभूतं च किं प्रोक्तमधिदैवं किमुच्यते ॥ १ ॥

जो सातवें अध्यायमें कहा था कि, जो जरामरणसे मुक्त होनेके वास्ते मेरा आसरा करके यत्न करते हैं वे उस ब्रह्मके तथा सब अध्यात्म और सब कर्मको जानते हैं इत्यादि सुनकर अर्जुन कृष्णसे पूँछते हैं—कि, हे पुरुषोत्तम ! जो आपने कहा वह ब्रह्म कौन है, अध्यात्म कौन है, कर्म क्या है और अधिभूत कौन कहलाता है और अधिदैव कौन कहलाता है ? ॥ १ ॥

अधियज्ञः कथं कोऽत्र देहेऽस्मिन्मधुसूदन ।
प्रयाणकाले च कथं ज्ञेयोऽसि नियतात्मभिः ॥ २ ॥

हे मधुसूदन ! इस देहमें अधियज्ञ कैसे हुआ और कौन है और इस लोकमें मरणकालमें जिसने मन जीता है उससे कैसे जाननेमें आते हो ? ॥ २ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते ।
भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः ॥ ३ ॥

इस प्रकार अर्जुनके वचन सुनकर श्रीकृष्ण भगवान् बोले—कि पर है प्रकृति जिससे याने प्रकृतिमुक्त जो अक्षर याने मुक्त जीव सो ब्रह्म हैं स्वभाव अध्यात्म कहलाता है जो सर्व भूतप्राणियोंकी उत्पत्ति करनेवाला विसर्ग याने सृष्टि सो कर्मसंज्ञक है॥ ३॥

अधिभूतं क्षरो भावः पुरुषश्चाधिदैवतम् ।
अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृतां वर ॥ ४ ॥

जो क्षर भाव याने नाशवान् देहादिक सो अधिभूत है और पुरुष जो सूर्यमंडलवर्ती सो मेरा ही एकरूप अधिदैवत है.

देहधारियोंमें श्रेष्ठ अर्जुन! इस देहमें अधियज्ञ मैं हूं याने जीवका पूज्य मैं हूं ॥ ४ ॥

अंतकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम् ।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ॥५॥

जो पुरुष अंतसमयमें मुझे ही स्मरण करता करता देहको त्यागके इस लोकसे जाता है सो मेरी समताको प्राप्त होता है इसमें संशय नहीं ॥ ५ ॥

यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजत्यंते कलेवरम् ।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः ॥६॥

जो मेरा सदा और अंतकालमें भी स्मरण करते करते शरीर त्यागे सो तो मुझहीको पावे अथवा जो जो भाव याने वस्तु अथवा कोई प्राणीको सुमिरता सुमिरता सदा उसीमें लवलीन भया हुआ अंतमें देहको त्यागता है, सो हे कुंतीपुत्र! वह उसी उसीको प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युद्ध्य च ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयः ॥ ७ ॥

इस कारण सब कालमें मुझको सुमिरो और युद्ध करो; ऐसे मुझमें मन बुद्धिको लगाये हुए मुझे ही पाओगे, इसमें संदेह नहीं ॥७॥

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नाऽन्यगामिना ।
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिंतयन् ॥ ८ ॥

हे पृथापुत्र! सदा अभ्यासयोगयुक्त आत्मस्वरूप विना दूसरेमें नहीं जानेवाला ऐसे चित्तकरके मेरा चिंतन करता करता देदीप्यमान अतिउत्तम ऐसा जो परमपुरुष मैं उस मुझमें लय होता है ॥८॥

कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः ।

सर्वस्य धातारमचिंत्यरूपमादित्यवर्णं तमसः पर-
स्तात् ॥ प्रयाणकाले मनसाऽचलेन भक्त्या युक्तो
योगबलेन चैव ॥ भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक्
स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥ ९ ॥ १० ॥

जो कोई भक्तिकरके युक्त पुरुष मरणसमयमें अचेल मनके द्वारा; और योगबलकरके भौंहोंके मध्यमें निश्चल अच्छी तरहसे प्राणोंको प्रवेश करके अर्थात् कुंभक करके जो सर्वज्ञ, पुरातन, सबका शिक्षक, सूक्ष्मसे सूक्ष्म, सर्वको पालनेवाला, नहीं चिंतनमें आता है रूप जिसका, सूर्य सरीखा है प्रकाशमान जो पुरुष और प्रकृतिसे पर उसको सुमिरता है सो उस पर देदीप्यमान पुरुषको प्राप्त होता है ॥ ९ ॥ १० ॥

यदक्षरं वेदविदो वदन्ति विशंति यद्यतयो वीतरागाः।
यदिच्छंतो ब्रह्मचर्यं चरंति तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये ११

वेदके जाननेवाले जिसको अक्षर कहते हैं, वीतराग ईश्वरप्राप्तिका यत्न करनेवाले जिसको प्राप्त होते हैं, जिसको चाहनेवाले ब्रह्मचर्यको आचरते हैं, उस पदको तुमसे संक्षेपकरके कहूंगा ११॥

सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च।
मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम् १२॥
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन् देहं स याति परमां गतिम् ॥१३॥

जो योगी देहको त्यागता त्यागता सर्व इंद्रियोंको संयममें करके और हृदयमें मनको रोकके अपने प्राणोंको मस्तकमें चढाके योगधारणामें स्थिर भया हुआ 'ॐ' इस एक अक्षर ब्रह्मका उच्चारण करता करता मुझको सुमिरता सुमिरता देह त्यागके जाता है सो अतिउत्तम गतिको प्राप्त होता है ॥ १२ ॥ १३ ॥

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः ।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः ॥१४॥

हे पृथापुत्र ! जो अनन्यचित्त मुझको नित्य निरंतर सुमिरता है उस नित्य मेरे संयोग चाहनेवाले योगीको मैं सुलभ हूं॥१४॥

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम् ।
नाप्नुवंति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः ॥१५॥

यहांसे अध्यायसमाप्तिपर्यंत ज्ञानी जो कैवल्यार्थी उसकी मुक्ति और ऐश्वर्य चाहनेवालेकी पुनरावृत्ति कहते हैं-सो ऐसे कि, जो मेरी उपासनारूप परम सिद्धिको प्राप्त हुए हैं वे महात्माजन मुझको प्राप्त होकरं फिर दुःखके घर नाशवान् जन्मको नहीं प्राप्त होते हैं ॥ १५ ॥

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन ।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते ॥ १६ ॥

हे अर्जुन ! ब्रह्मलोकपर्यंत सर्वलोक, पुनरावर्ती हैं और हे कुंतीपुत्र ! मुझको प्राप्त होकर फिर जन्म नहीं होता है ॥ १६ ॥

सहस्रयुगपर्यंतमहर्यद्ब्रह्मणो विदुः ।
रात्रिं युगसहस्रां तां तेऽहोरात्रविदो जनाः ॥१७॥

ब्रह्मलोकपर्यंत पुनरावृत्ति देखनेको ब्रह्माके दिनरात्रिका प्रमाण दिखाते हुए उसको जाननेवालोंकी श्रेष्ठता कहते हैं-जो ब्रह्माका हजार चतुर्युगीपर्यंत दिन और हजार चतुर्युगीपर्यंत रात्रिको जानते हैं वे मनुष्य दिन रातके जाननेवाले हैं,याने दीर्घदर्शी हैं १७॥

अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वाः प्रभवंत्यहरागमे ।
रात्र्यागमे प्रलीयंते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके ॥ १८ ॥

दीर्घदर्शित्व दिखाते हैं-सो ऐसे कि, ब्रह्माके दिनके आगममें

ब्रह्मांके शरीरसे सर्व जीवोंके शरीर होते हैं रात्रिके आगममें उसी ब्रह्माके शरीरमें लीन होते हैं ॥ १८ ॥

भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते ।
रात्र्यागमेऽवशः पार्थ प्रभवत्यहरागमे ॥ १९ ॥

हे पृथापुत्र ! वही यह भूतप्राणीसमूह कर्मपरवश हुआ जन्म ले लेके रात्रिके आगममें लीन होता है, दिनके आगममें उत्पन्न होता है ॥ १९ ॥

परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः ।
यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति ॥ २० ॥

उस ब्रह्माके जड़प्रकृतिशरीरसे श्रेष्ठ और जो अव्यक्त सनातन भाव है याने शुद्धचेतन है सो सर्व आकाशादि और शरीर नष्ट होनेसे भी नष्ट नहीं होता है ॥ २० ॥

अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम् ।
यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥ २१ ॥

वह अव्यक्त अक्षर ऐसे कहा है 'कूटस्थोऽक्षर उच्यते' उसको परमगति कहते हैं जिस शुद्धरूपको प्राप्त होके नहीं लौटते हैं वह मेरा सर्वोत्तम धाम है, याने जैसे प्रकृतिमें मेरा शरीर है और जीव भी मेरा शरीर है परंतु जैसे सर्व घर किसी पुरुषका है उसमें निजमंदिर श्रेष्ठ होता है तैसे जीव प्रकृतिमें और जीवमें मैं रहता हूँ इससे वह मेरा मुख्य शरीर है. यह कैवल्यमुक्ति कही, अब ऐश्वर्यप्राप्ति कहते हैं ॥ २१ ॥

पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया ।
यस्यांतःस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम् ॥ २२ ॥

हे पृथापुत्र ! ये सर्व भूतप्राणी जिसके अंतस्थ हैं और यह सर्व

जगत् जिसकरके विस्तारित है सो पर पुरुष याने परमात्मा अनन्यभक्ति करके प्राप्त होने योग्य है ॥ २२ ॥

यत्र काले त्वनावृत्तिमावृत्तिं चैव योगिनः ।
प्रयाता यांति तं कालं वक्ष्यामि भरतर्षभ ॥२३॥

हे पुरुषोंमें श्रेष्ठ! जिस कालमें देहत्याग कर गये हुए योगी अनावृत्तिको और आवृत्तिको जाते हैं उस कालको मैं कहता हूँ॥२३॥

अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम् ।
तत्र प्रयाता गच्छंति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः ॥ २४ ॥

जिस कालमें अग्नि प्रकाशक है तथा दिन शुक्ल पक्ष है ऐसे छः महीने उत्तरायण उसमें गये हुए ब्रह्मज्ञानी जन ब्रह्मको प्राप्त होते हैं ॥ २४ ॥

धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः षण्मासा दक्षिणायनम् ।
तत्र चांद्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्तते॥ २५ ॥

जिस कालमें धूम रात्रि तथा कृष्णपक्ष छः महीने दक्षिणायन इसमें गया हुआ योगी चांद्रमस ज्योतिको याने स्वर्ग पाके यज्ञादि फल भोगके फिर यहाँ जन्म लेता है ॥ २५ ॥

शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते ।
एकया यात्यनावृत्तिमन्ययाऽऽवर्त्तते पुनः ॥ २६ ॥

ये शुल्क कृष्ण मार्ग जगत्के सनातन नियमित हैं एककरके मुक्तिको जाता है दूसरेकरके फिर जन्मता है ॥ २६ ॥

नैते सृती पार्थ जानन्योगी मुह्यति कश्चन ।
तस्मात्सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भवार्जुन ॥ २७ ॥

हे पृथापुत्र ! इन मार्गोंको जानता हुआ कोई भी योगी नहीं मोहित होता है.हे अर्जुन!इससे सर्व कालमें योगयुक्त हो ॥२७॥

वेदेषु यज्ञेषु तपस्सु चैव दानेषु यत्पुण्यफलं प्रदिष्टम् । अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम् ॥ २८ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां
योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे अक्षरब्रह्मयोगो
नाम अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

मनुष्य इसको जानके फिर जो पुण्यफल वेदाध्ययनमें, यज्ञमें तपमें और दानमें कहा है उस सबको अतिक्रमण करता है याने उससे भी अधिक फल पाता है, फिर योगी होके सर्वोत्तम आदि स्थानको पाता है, याने मुक्त होता है ॥ २८ ॥

इति श्रीमत्सुकुलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादविरचितायां श्रीगीतामृत-
तरंगिण्यामष्टमाऽध्यायप्रवाहः ॥ ८ ॥

इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे ।
ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् ॥ १ ॥

सप्तम और अष्टम अध्यायोंमें अपनी स्वरूपप्राप्ति भक्तिसेही कही अब नवममें अपना सर्वोत्तम प्रभाव और भक्तिका भी प्रभाव कहते हैं-सो ऐसे कि, हे अर्जुन ! इस अतिगुप्त करनेयोग्य विज्ञानसहित ज्ञानको असूया जो पराये गुणमें दोष लगाना उसकरके रहित जो तुम तिनसे कहूंगा जिसको जानके संसार-दुःखसे छूटोगे ॥ १ ॥

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम् ।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम् ॥ २ ॥

यह भक्तिज्ञान राजविद्या और गोप्य वस्तुओंमें सर्वोत्तम पवित्र

अतिउत्तम प्रत्यक्षफलरूप धर्मयुक्त करनेको भी अतिसुगम और अविनाशी है ॥ २ ॥

अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परंतप ।
अप्राप्य मां निवर्तंते मृत्युसंसारवर्त्मनि ॥ ३ ॥

हे परंतप अर्जुन ! इस धर्मसंबंधी श्रद्धाको न धारण करनेवाले पुरुष मुझको प्राप्त हुए विना मृत्युरूप संसारमार्गमें फिरते रहते हैं ॥ ३ ॥

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना ।
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः ॥ ४ ॥
न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम् ।
भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः ॥ ५ ॥

यह सर्व जगत् अतिसूक्ष्म अंतर्यामीरूप मुझ करके व्याप्त है; इससे सर्वभूत प्राणी मेरे स्वाधीन हैं और मैं उनमें नहीं स्थित हूं याने उनके स्वाधीन नहीं हूँ और वे भूत प्राणी मुझमें स्थित नहीं हैं याने जैसे घड़ेमें जल तैसे नहीं हैं मेरे ईश्वरसंबंधी इस योगको देखो भूतोंका भरने पोषनेवाला भी मेरा आत्मा याने मेरा शरीरभूत जीवात्मा भूतोंको धारण करनेवाला और भूतोंमें स्थित नहीं है ॥ ४ ॥ ५ ॥

यथाऽऽकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान् ।
तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय ॥ ६ ॥

जैसे महान् वायु नित्य ही आकाशमें रहा हुआ मेरे आधारसे सर्वत्र विचरता है तैसे ही सर्व भूत मेरे आधार हैं ऐसे निश्चय करो ॥ ६ ॥

सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम् ।
कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम् ॥ ७ ॥

हे कुंतीपुत्र! प्रलयकालमें सर्व भूत प्राणी मेरी प्रकृतिमें लीन होते हैं, कल्पकी आदिमें मैं उनको फिर अनेक प्रकारसे उत्पन्न करता हूं ॥ ७॥

प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः।
भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात् ॥ ८ ॥

अपनी प्रकृतिको आश्रय देके प्राचीन स्वभावके वशसे परवश संपूर्ण इस भूत प्राणी समूहको वारंवार सृजता हूं ॥ ८ ॥

न च मां तानि कर्माणि निबध्नन्ति धनंजय।
उदासीनवदासीनमसक्तं तेषु कर्मसु ॥ ९ ॥

हे अर्जुन! जो कहोगे कि,ऐसे विषमसृष्टि सृजनेवालेको विषमताके वैषम्यनिर्दयत्वदोष क्यों न लगेंगे? तहाँ सुनो, जो सृष्ट्यादिक कर्म करता हूँ उन कर्मोंमें आसक्त और उदासीन सरीखा स्थित ऐसे मुझको वे कर्म बंधन नहीं करते हैं ॥ ९ ॥

मयाऽध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।
हेतुनाऽनेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते ॥ १० ॥

हे कुंतीपुत्र! जब मैं अध्यक्ष याने सर्वकृत्यका सम्हारनेवाला होता हूँ तब मुझ करके प्रकृति चराचर जगतको उत्पन्न करती है इस कारण करके जगत् उत्पन्न होता है ॥ १० ॥

अवजानंति मां मूढा मानुषीं तनुमास्थितम्।
परं भावमजानंतो मम भूतमहेश्वरम् ॥ ११ ॥
मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः।
राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः ॥१२॥

जो राक्षसी और आसुरी, आपसरीखी मोहकारक प्रकृतिको धारण कर रहे हैं याने ऐसे स्वभाववाले, निष्फल आशावाले,

निष्फले कर्मवाले, निष्फलज्ञानवाले वे भ्रष्टचित्त पुरुष जो सर्व भूतोंके ईश्वरोंका भी ईश्वर ऐसे मेरे प्रभावको न जानते हुए मूर्ख अतिकरुणासे मनुष्यरूपशरीरमें स्थित मेरी अवज्ञा करते हैं ॥ ११ ॥ १२ ॥

महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः ।
भजंत्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम् ॥ १३ ॥

हे पृथापुत्र ! दैवी प्रकृतिको प्राप्त हुए महात्माजन मुझको सर्वभूतोंका आदि और अविनाशी जानके अनन्यमनवाले होकर मुझको ही भजते हैं ॥ १३ ॥

सततं कीर्त्तयंतो मां यतंतश्च दृढव्रताः ।
नमस्यंतश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते ॥ १४ ॥

अब महात्माओंके भजनकी रीति कहते हैं-जैसे कि, निरंतर मेरा कीर्तन करते हुए और दृढसंकल्प किये हुए मेरी प्राप्तिके वास्ते यत्न करते और भक्तिकरके मुझको नमस्कार करते हुए नित्य मेरे समागमकी इच्छा करनेवाले मेरी उपासना करते हैं ॥ १४ ॥

ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजंतो मामुपासते ।
एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखम् ॥ १५ ॥

और कितनेक महात्मा एकत्वकरके याने सख्यभावसे और कितनेक पृथक्त्वसे याने दास्यभावसे ऐसे बहुधा याने कोई वात्सल्य और कोई शृंगार इत्यादि भावना करके सर्वतोमुख याने सर्वव्यापी मुझको ज्ञानयज्ञ करके पूजते हुए उपासना करते हैं ॥ १५ ॥

अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाऽहमहमौषधम् ।
मंत्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम् ॥ १६ ॥

अब अपना सर्वव्यापित्व दिखाते हैं-सो ऐसे कि, भगवान् कहते हैं कि, क्रतु याने अग्निष्टोमादिक श्रौत यज्ञ मैं हूं, यज्ञ जो

स्मार्त पंचमहायज्ञ सो मैं हूँ, स्वधा जो पितृनके श्राद्धादिकर्म सो मैं हूँ, औषध याने अन्न सो मैं हूँ, मंत्र मैं हूँ, आज्य याने घृत सो मैं हूँ, अग्नि मैं हूँ, होम मैं हूँ, यह निश्चय है ॥ १६ ॥

पिताऽहमस्य जगतो माता धाता पितामहः ।
वेद्यं पवित्रमोङ्कार ऋक् साम यजुरेव च ॥ १७ ॥
गतिर्भर्त्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत् ।
प्रभवः प्रलयस्थानं निधानं बीजमव्ययम् ॥ १८॥

इस जगत्का पिता, माता, धाता, पितामह जो जानने योग्य सो और पवित्र है सो और ओंकार, ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद इस जगतकी गति, पालनकर्त्ता, स्वामी, शुभाशुभकर्मोंका साक्षी, रहनेका स्थान, इच्छितवस्तु देनेवाला और अनिष्टका निवारक सुहृद, उत्पत्ति और नाशका स्थान, धारणकरनेवाला, अविनाशी, उत्पत्तिकारक सर्व मैं ही हूँ ॥ १७ ॥ १८ ॥

तपाम्यहमहं वर्षं निगृह्णाम्युत्सृजामि च ।
अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन ॥ १९ ॥

हे अर्जुन ! अग्नि और सूर्यरूप होके मैं ही तपाता हूँ मैं ही ग्रीष्मादि ऋतुओंमें वर्षाको बंद करता हूँ और वर्षाऋतुमें वर्षता हूं, अमृत और मृत्यु और सत् और असत् मैं निश्चय हूँ ॥१९॥

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयंते ॥ ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोकमश्नंति दिव्यान् दिवि देवभोगान् ॥ २० ॥ ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशंति ॥ एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना गतागतं कामकामा लभंते ॥ २१ ॥

इस तरहसे महात्मा ज्ञानियोंका व्यवहार और अपना वैभव कहा. अब सकाम जनोंकी रहनि रीति कहते हैं-जैसे कि, त्रैविद्या याने ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेदोक्त इंद्रादिदेव निमित्त यज्ञ करनेवाले सोमपाने किये हुए पापरहित यज्ञोंकरके इंद्रादिरूप मुझको आराधनकरके स्वर्गकी प्राप्ति मानते हैं वे पुण्यरूप इंद्रलोकमें प्राप्त होके वहां स्वर्गमें दिव्य देवभोगोंको भोगते हैं, फिर वे उस विशाल स्वर्गलोकको भोगके पुण्य क्षीण होनेसे इस मनुष्यलोकमें प्राप्त होते हैं. ऐसे वेदत्रयी धर्मको केवल वारंवार करते हुए सकामी जन गतागत याने स्वर्ग जाना मनुष्यलोकको आना फिर जाना फिर आना ऐसे फलको पाते हैं॥ २० ॥ २१ ॥

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥२२॥

जो मनुष्य अनन्य होकर मेरा चिंतवन करते मुझको भजते हैं उन नित्य मेरे संयोग चाहनेवालोंका योग जो धनादिककी और मेरी प्राप्ति क्षेम जो धनादि संरक्षण और अपुनरावृत्ति इनको मैं प्राप्त करता हूं॥ २२ ॥

येऽप्यन्यदेवताभक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम्॥२३॥

जो कि, औरदेवताओंके भक्त उनका श्रद्धायुक्त पूजन करते हैं वे भी मेरा ही पूजन करते हैं; परंतु हे कुन्तीपुत्र! वे अविधिपूर्वक पूजन करते हैं याने विधिपूर्वक नहीं॥ २३ ॥

अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च।
न तु मामभिजानन्ति तत्त्वेनातश्च्यवन्ति ते॥२४॥

मैं निश्चय करके सर्व यज्ञोंका भोक्ता और स्वामी भी हूं परंतु

वे सकामिक जन मुझको ऐसे निश्चय करके नहीं जानते हैं इससे जन्म मरणको प्राप्त होते हैं ॥ २४ ॥

यांति देवव्रता देवान् पितॄन्यांति पितृव्रताः ।
भूतानि यांति भूतेज्या यांति मद्याजिनोऽपि माम् ॥

अहो जो कहोगे कि, एक ही कर्ममें संकल्पमात्रसे कैसे भेद हुआ तहां सुनो जो इंद्रादि देवोंको भक्तिपूर्वक आराधन करते हैं तो उनहीको प्राप्त होते हैं, पितृभक्त पितरोंको प्राप्त होते हैं; जो कोई भी राजा साधु चोर इत्यादि भूत प्राणीकी सेवा संगति करते हैं वे उनहीकी समताको प्राप्त होते हैं; जो मेरी भक्ति करते हैं वे निश्चय मुझको प्राप्त होते हैं याने मेरी समताको पाते हैं॥२५॥

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥ २६ ॥

यदि कहो कि, बडोंको प्रसन्न करनेके लिये बडे उपाय चाहिये तो—जो कोई पत्र, पुष्प, फल, जल मुझको भक्तिसे अर्पण करता है मैं उस शुद्धचित्त भक्तके भक्तिपूर्वक अर्पण किये हुए उस पत्रादिके पदार्थको स्वीकार करता हूं ॥ २६ ।

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥ २७ ॥
शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः ।
संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि ॥ २८ ॥

हे कुंतीपुत्र ! मुझको ऐसा सुलभ जानकर जो कुछ भी तुम करो, जो खाओ, जो हवन करो, जो देओ, जो तप करो उसको मेरे अर्पण किये हुए करो; ऐसे करते हुए जो कर्मबंधनकारक हैं उन शुभाशुभ फल कर्मों करके छूटोगे ऐसे ही इस कर्मफल अर्पण संन्यासयोगयुक्त चित्तवाले तुम मुक्त भये हुए मुझको प्राप्त होवेंगे ॥ २७ ॥ २८ ॥

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः ।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम् २९

मैं सर्वभूतोंपर सम हूं मुझे न कोई अप्रिय न कोई प्रिय है परंतु जो मुझको भक्तिकरके भजते हैं वे मेरे हृदयमें और उनके हृदयमें निश्चय करके मैं रहता हूं ॥ २९ ॥

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥३०॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति ।
कौंतेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ॥३१॥

कचित् कोई पुरुष अति दुराचारी भी हो और वह मुझको अनन्यभाक् याने औरको न भाग देता हुआ सर्वत्र मुझकोही जानकर सब मेरे अर्पण करता हुआ भजता हो वह साधु ही है ऐसे माननां चाहिये, जिससे कि वह सम्यक् निश्चय किये है उससे वह शीघ्र ही धर्मात्मा होगा और मोक्षको ही प्राप्त होगा.हे कुन्ती-पुत्र ! तुम यह निश्चय जानो कि मेरा भक्त नाशको नहीं पाता है अर्थात् मुक्त हो जाता है ॥ ३० ॥ ३१ ॥

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेपि यान्ति परां गतिम्३२
किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा ।
अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्३३॥

हे पृथापुत्र! निश्चयपूर्वक मुझको आश्रय करके जो पापयोनि भी हो तथा स्त्री शूद्र वैश्य वे भी मोक्ष पाते हैं. जो पवित्र ब्राह्मण तथा क्षत्रिय भक्त हैं उनकी मोक्षमें फिर क्या शंका है ? इससे अनित्य दुःखरूप इस लोकको पाकर मुझको भजो ३२।३३॥

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः ॥ ३४ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योग-
शास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे राजविद्याराजगुह्य-
योगो नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

भजनेकी रीति यह है कि, मुझमें ही मनको युक्त किये हुए रहो, मेरे ही भक्त मेरा ही पूजन करनेवाले बनो मुझे ही नमस्कार करो; ऐसे मनको मुझमें युक्तकरके मेरे ही परायण हुए मुझको ही प्राप्त हो जाओगे ॥ ३४ ॥

इति श्रीमत्सुकुलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादविरचितायां श्रीगीतामृततरं-
गिण्यां नवमाध्यायप्रवाहः ॥ ९ ॥

सप्तमादिक तीनों अध्यायोंमें श्रीकृष्णजीने अपना भगवत्तत्त्व और विभूति वर्णन की. जैसे कि, सप्तममें "रसोऽहमप्सु कौंतेय" अष्टममें "अधियज्ञोऽहमेवात्र" इत्यादि, नवममें "अहं क्रतुः" इत्यादिकरके संक्षेपसे कहीं उनको और भक्तिकी आवश्यकता अब दशमाध्यायमें विस्तारसे कहते हैं-

श्रीभगवानुवाच ।

भूय एव महाबाहो शृणु मे परमं वचः ।
यत्तेऽहं प्रीयमाणाय वक्ष्यामि हितकाम्यया॥१॥

श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं-कि, हे महबाहो ! मेरा सर्वोत्तम वाक्य फिर भी सुनो; जो वाक्य प्रीतियुक्त जो तुम तिन तुमसे तुम्हारे हितके वास्ते मैं कहता हूं ॥ १ ॥

न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः ।
अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः ॥ २ ॥

मेरा जन्म हुआ ऐसा न देव और महर्षि भी नहीं जानते हैं; कारण कि, मैं देवोंका और सब महर्षियोंका भी आदि हूं ॥ २ ॥

यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम् ।
असंमूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ३ ॥

जो मुझको अजन्मा और अनादि लोकमहेश्वर जानता है वह मनुष्योंमें ज्ञानी, सब पापोंकरके छूटा है ॥ ३ ॥

बुद्धिर्ज्ञानमसंमोहः क्षमा सत्यं दमः शमः ।
सुखं दुःखं भवो भावो भयं चाभयमेव च ॥ ४ ॥
अहिंसा समता तुष्टिस्तपो दानं यशोऽयशः ।
भवंति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः ॥ ५ ॥

बुद्धि, ज्ञान, अव्याकुलता, क्षमा, सत्य, दम, शम, सुख, दुःख, उत्पत्ति, नाश, भय और अभय और अहिंसा, समता, संतोष, तप, दान, यश, अयश ये पृथक् पृथक् भूतोंके भाव मुझसे ही होते हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥

महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा ।
मद्भावा मानसा जाता येषां लोक इमाः प्रजाः ॥६॥

सात महाऋषि अर्थात् मरीचि वसिष्ठादिक महाऋषि, चार इनके भी पूर्वज याने सनकादिक ऋषि तथा चौदह मनु मेरे संकल्पज मन इच्छा प्रमाण उत्पन्न हुए जिनके लोकमें ये प्रजा हैं६॥

एतां विभूतिं योगं च मम यो वेत्ति तत्त्वतः ।
सोऽविकंपेन योगेन युज्यते नात्र संशयः ॥ ७ ॥

जो पुरुष मेरी महर्षि इत्यादिकोंकी उत्पत्तिरूप इस विभूतिको

और कल्याणगुणादिरूप योगको तत्त्वसे जानता है सो अचल भक्तियोगकरके मुक्त होता है इसमें संशय नहीं है ॥ ७ ॥

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्त्तते ।
इति मत्वा भजंते मां बुधा भावसमन्विताः ॥ ८ ॥

मैं सबका उत्पत्तिस्थान हूं मुझसे सब प्रवृत्त होता है ऐसा मुझको मानकर भावसंयुक्त ज्ञानी जन मुझको भजते हैं ॥ ८ ॥

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम् ।
कथयंतश्च मां नित्यं तुष्यंति च रमंति च ॥ ९ ॥

उनका भजनप्रकार यह है कि—मुझमें ही जिनका चित्त है, श्वासोच्छ्वास पर मेरा स्मरण करते रहते हैं, परस्पर एक दूसरेको उपदेश करते हुए निश्चयपूर्वक मुझको याने मेरे ही गुणगणोंको कहते कहते निरंतर संतुष्ट होते हैं और मेरी की हुई क्रीडायें करने लगते हैं ॥ ९ ॥

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयांति ते ॥ १० ॥

इस प्रकार वे निरंतर मेरे संगी मुझको प्रीतिपूर्वक भजनेवाले उनको उस बुद्धियोगको देता हूं कि, जिससे वे मुझको प्राप्त होते हैं ॥ १० ॥

तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः ।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता ॥ ११ ॥

उनकी ही दयाके लिये उनकी मनोवृत्तिमें स्थित हुआ मैं प्रकाशित ज्ञानरूप दीपकसे उनके अज्ञानजन्य तिमिरका नाश करता हूं ॥ ११ ॥

अर्जुन उवाच ।

परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान् ।
पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम् ॥ १२ ॥

आहुस्त्वामृषयः सर्वे देवर्षिर्नारदस्तथा ।
असितो देवलो व्यासः स्वयं चैव ब्रवीषि मे ॥१३॥

ऐसे श्रीकृष्णजीके वाक्य सुनके अर्जुन बोले-कि, आप परब्रह्म हो, श्रेष्ठ प्रभाव हो, पवित्र हो; परम सर्व ऋषिजन आपको अविनाशी दिव्य पुरुष आदिदेव अजन्म व्यापक ऐसे कहते हैं, वे ये जैसे कि, देवऋषि नारद तथा असित देवल व्यास और आप भी मुझसे कहते हो ॥ १२ ॥ १३ ॥

सर्वमेतदृतं मन्ये यन्मां वदसि केशव ।
न हि ते भगवन् व्यक्तिं विदुर्देवा न दानवाः ॥१४॥

हे केशव ! जो मेरेसे कहते हो यह सर्व सत्य मानता हूं, कारण कि, हे भगवन् ! तुम्हारी उत्पत्तिको न देवता जानते हैं न दानव जानते हैं ॥ १४ ॥

स्वयमेवात्मनात्मानं वेत्थ त्वं पुरुषोत्तम ।
भूतभावन भूतेश देवदेव जगत्पते ॥ १५ ॥

हे पुरुषोत्तम ! हे भूतभावन ! हे भूतेश ! हे देवदेव ! हे जगत्पते आप आपको आपकीही बुद्धिसे आपही जानते हो ॥१५॥

वक्तुमर्हस्यशेषेण दिव्या ह्यात्मविभूतयः ।
याभिर्विभूतिभिर्लोकानिमांस्त्वं व्याप्य तिष्ठसि १६

जो दिव्य आपकी विभूति हैं उनको समग्रतासे कहनेको योग्य हो जिन विभूतियोंकरके इन लोकोंमें व्यापक रहे हो ॥ १६ ॥

कथं विद्यामहं योगी त्वां सदा परिचिन्तयन् ।
केषु केषु च भावेषु चिन्त्योऽसि भगवन्मया॥१७॥

मैं भक्तिसमाधिस्थ हुआ आपको सदा ध्याता हुआ कैसे जानूं, हे भगवन् ! आप मुझकरके कौन कौनसे रूपोंमें ध्याने-योग्य हो ॥ १७ ॥

विस्तरेणात्मनो योगं विभूतिं च जनार्दन ।
भूयः कथय तृप्तिर्हि शृण्वतो नास्ति मेऽमृतम् १८

हे जनार्दन ! अपनी प्राप्तिका उपाय और विभूति याने वैभव है सो विस्तारसे फिर कहो याने संक्षेपसे कहा, अब विस्तारसे कहो, क्योंकि, इस अमृतरूप माहात्म्यको सुनते सुनते मेरी तृप्ति नहीं होती है ॥ १८ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

हंत ते कथयिष्यामि दिव्या ह्यात्मविभूतयः ।
प्राधान्यतः कुरुश्रेष्ठ नास्त्यन्तो विस्तरस्य मे १९॥

ऐसे सुनके भगवान् बोले-कि, हंत याने हे अर्जुन ! तुम्हारेसे दिव्य अपनी विभूतियोंको प्रधानतासे याने मुख्य मुख्य कहूंगा क्योंकि, हे कुरुश्रेष्ठ ! मेरे विस्तारका अन्त नहीं ॥ १९ ॥

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः ।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामंत एव च ॥ २० ॥

हे गुडाकेश! सर्व भूतोंके अंतःकरणमें स्थित हुआ मैं सर्वभूतोंका अंतर्यामी हूँ और मैं ही आदि और मध्य और अंतभी हूँ अब यहांसे मैं मैं कहते जायँगे. यहां ऐसा अर्थ करना कि, जैसे आदित्योंमें विष्णु नाम आदित्य मैं हूं ऐसे कहनेसे यह हुआ कि, विष्णु आदित्य मेरी श्रेष्ठ विभूति है, याने उसमें मेरी शक्ति ज्यादा है. ऐसा ही जहां मैं ही हूँ शब्द आवे तहां समझना. विशेष गीतावाक्यार्थबोधिनी टीकामें मैंने लिखा है, वहां श्रुतिस्मृतियोंका भी प्रमाण दिया है सो देख लेना ॥ २० ॥

आदित्यानामहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान् ।
मरीचिर्मरुतामस्मि नक्षत्राणामहं शशी ॥ २१ ॥

द्वादश आदित्योंमें विष्णुनाम आदित्य मैं हूं, ज्योतियोंमे किरणवंत सूर्य उनचास मरुतोंमें मरीचि मरुत, नक्षत्रोंमें चंद्रमा मैं हूं ॥ २१ ॥

वेदानां सामवेदोऽस्मि देवानामस्मि वासवः ।
इंद्रियाणां मनश्चास्मि भूतानामस्मि चेतना ॥२२॥

वेदोंमें सामवेद हूं देवोंमें इंद्र हूं और इंद्रियोंमें मन हूं भूतप्राणियोंमें चेतना हूं ॥ २२ ॥

रुद्राणां शंकरश्चास्मि वित्तेशो यक्षरक्षसाम् ।
वसूनां पावकश्चास्मि मेरुः शिखरिणामहम् ॥२३॥

रुद्रोंमें शंकर हूं, यक्षराक्षसोंमें कुबेर, अष्टवसुओंमें अग्नि, शिखरवालोंमें मेरुपर्वत मैं हूं ॥ २३ ॥

पुरोधसां च मुख्यं मां विद्धि पार्थ बृहस्पतिम् ।
सेनानीनामहं स्कंदः सरसामस्मि सागरः ॥ २४ ॥

हे पृथापुत्र ! पुरोहितोंमें मुख्य बृहस्पति मुझको ही जानो सेनापतियोंमें स्वामिकार्तिक, सरोवरोंमें समुद्र मैं ही हूं २४।

महर्षीणां भृगुरहं गिरामस्म्येकमक्षरम् ।
यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणां हिमालयः॥२५॥

महर्षियोंमें भृगु; वाक्योंमें एक अक्षर याने "ओम्" मैं हूं यज्ञोंमें जपयज्ञ, स्थावरोंमें हिमाचल हूं॥ २५ ॥

अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारदः ।
गंधर्वाणां चित्ररथः सिद्धानां कपिलो मुनिः॥२६॥

सर्ववृक्षोंमें पीपर और देवऋषियोंमें नारद, गंधर्वोंमें चित्ररथ, सिद्धोंमें कपिलमुनि हूं ॥ २६ ॥

उच्चैःश्रवसमश्वानां विद्धि माममृतोद्भवम् ।
ऐरावतं गजेन्द्राणां नराणां च नराधिपम् ॥ २७ ॥

घोडोंमें अमृतसे उत्पन्न उच्चैःश्रवाको, हाथियोंमें ऐरावतको और मनुष्योंमें राजा मुझे ही जानो ॥ २७ ॥

आयुधानामहं वज्रं धेनूनामस्मि कामधुक् ।
प्रजनश्चास्मि कंदर्पः सर्पाणामस्मि वासुकिः ॥२८॥

आयुधोंमें वज्र, धेनुओंमें कामधेनु मैं हूं, उत्पत्तिकारक कामदेव हूं, एकशिरवाले सर्पोंमें वासुकिसर्प मैं हूं[१२] ॥ २८ ॥

अनंतश्चास्मि नागानां वरुणो यादसामहम् ।
पितॄणामर्यमा चास्मि यमः संयमतामहम् ॥२९॥

अनेक शिरवाले सर्पोंमें शेषजी मैं हूं, जलजीवोंमें मैं वरुण हूं पितरोंमें अर्यमा, शासन करनेवालोंमें मैं यम हूं[१२] ॥ २९ ॥

प्रह्लादश्चास्मि दैत्यानां कालः कलयतामहम् ।
मृगाणां च मृगेंद्रोऽहं वैनतेयश्च पक्षिणाम् ॥३०॥

दैत्योंमें प्रह्लाद हूं अनर्थकारकोंकी गिनतीकारकोंमें मैं काल हूं, मृगोंमें मैं सिंह हूं पक्षियोंमें गरुड हूं ॥ ३० ॥

पवनः पवतामस्मि रामः शस्त्रभृतामहम् ।
झषाणां मकरश्चास्मि स्रोतसामस्मि जाह्नवी॥३१॥

पवित्रकारकोंमें पवन हूं, शस्त्रधारियोंमें राम साक्षात् मैं हूं यहां अस्त्रधारणमात्र विभूति है, मच्छोंमें मकर हूं, प्रवाहवालोंमें श्रीभागीरथी हूं[१२] ॥ ३१ ॥

सर्गाणामादिरन्तश्च मध्यं चैवाहमर्जुन ।
अध्यात्मविद्या विद्यानां वादः प्रवदतामहम् ॥३२॥

सर्ग जो ब्रह्माके दिवस उनमें आदि उत्पत्तिकारक, अंत प्रलयकारक और मध्य रक्षक भी मैं ही हूं। हे अर्जुन! सर्वविद्याओंमें अध्यात्मविद्या, वाद करनेवालोंमें वाद याने सिद्धांत मैं हूं" ॥ ३२ ॥

अक्षराणामकारोऽस्मि द्वंद्वः सामासिकस्य च।
अहमेवाक्षयः कालो धाताहं विश्वतोमुखः ३३॥

अक्षरोंमें अकार हूं, समासोंमें द्वंद्वसमास; अक्षय काल मैं चौतरफ मुख जिसके ऐसा सबोंको भरनेपोषनेवाला मैं हूं" ॥३३॥

मृत्युः सर्वहरश्चाहमुद्भवश्च भविष्यताम्।
कीर्तिः श्रीर्वाक् च नारीणां स्मृतिर्मेधा धृतिः क्षमा३४

सर्वका हरनेवाला मृत्यु मैं और अपनी बढ़ती चाहनेवालोंमें उद्भव याने बढती मैं हूं स्त्रीजनोंमें कीर्त्ति, श्री, वाक्, स्मृति, मेधा, धृति और क्षमा मैं हूं ॥ ३४ ॥

बृहत्साम तथा साम्नां गायत्री छंदसामहम्।
मासानां मार्गशीर्षोऽहमृतूनां कुसुमाकरः ॥३५॥

तैसे सामवेदके मंत्रोंमें बृहत्साम, छंदोंमें गायत्रीमंत्र मैं हूं महीनोंमें मार्गशीर्ष, ऋतुओंमें वसंत मैं हूं" ॥ ३५ ॥

द्यूतं छलयतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम्।
जयोस्मि व्यवसायोस्मि सत्त्वं सत्त्ववतामहम्३६

छलकारियोंमें जूवा और तेजस्वियोंमें तेज मैं हूं जीतनेवालोंमें जय हूं, निश्चयवालोंमें निश्चय हूं, उदारोंमें उदारता मैं हूं३६

वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि पांडवानां धनंजयः।
मुनीनामप्यहं व्यासः कवीनामुशना कविः॥३७॥

वृष्णिवंशियोंमें वासुदेव यहां वसुदेवपुत्रत्वमात्र विभूति जानना पांडवोंमें अर्जुन तुम हो; सो श्रेष्ठ विभूति हो. इससे तुम

भी मैं हूँ; मुनियोंमें व्यास मैं हूँ, कवि जो शास्त्रदर्शी उनमें शुक्राचार्य कवि मैं हूं ॥ ३७ ॥

दंडो दमयतामस्मि नीतिरस्मि जिगीषताम् ।
मौनं चैवास्मि गुह्यानां ज्ञानं ज्ञानवतामहम् ॥३८॥

स्ववशकर्ताओंमें दंड हूं, जय चाहनेवालोंमें नीति हूं गुप्तकरनेके उपायोंमें मौन हूं, ज्ञानियोंमें ज्ञान हूं ॥ ३८ ॥

यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन ।
न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम् ॥३९॥

हे अर्जुन ! सर्वभूतोंका जो आदिकारण है सो मैं हूं, जो चराचर भूत मेरे विना होय सो नहीं है ॥ ३९ ॥

नांतोऽस्ति मम दिव्यानां विभूतीनां परंतप ।
एष तूद्देशतः प्रोक्तो विभूतेर्विस्तरो मया ॥ ४० ॥

हे अर्जुन ! मेरी दिव्य विभूतियोंका अंत नहीं है परंतु यह विभूतिका विस्तार मैंने संकेतमात्रसे कहा है ॥ ४० ॥

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम् ॥४१॥

जो जो प्राणी ऐश्वर्यवान्, शोभायमान अथवा बडा हो सो सो मेरे तेजके अंशयुक्त है ऐसे तुम जानो ॥ ४१ ॥

अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन ।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्॥४२॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विभूतियोगो नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

हे अर्जुन! अथवा इस बहुत ज्ञानकरके तुम्हारे क्या प्रयोजन है मैं इसे सर्व जगत्को एक अंशकरके धारण किये हुए स्थितहूं ४२

इति श्रीमत्सुकुलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादविरचितायां श्रीगीतामृततरंगिण्यां दशमाध्यायप्रवाहः ॥ १० ॥

अर्जुन उवाच।

मदनुग्रहाय परमं गुह्यमध्यात्मसंज्ञितम्।
यत्त्वयोक्तं वचस्तेन मोहोऽयं विगतो मम ॥१॥

जब भगवान्ने अपनी विभूति कही और उसमें अपने स्वरूपका वर्णन किया तब सुनके अर्जुन देखनेकी इच्छा करके बोले कि हे भगवन्! मेरे अनुग्रहके वास्ते सर्वोत्तम गोप्य अध्यात्मसंज्ञित याने आत्मज्ञानविषयक जो वचन आपने कहा उससे मेरा यह मोह गया ॥ १ ॥

भवाप्ययौ हि भूतानां श्रुतौ विस्तरशो मया।
त्वत्तः कमलपत्राक्ष माहात्म्यमपि चाव्ययम् ॥२॥

कारण कि, हे कमलदलनयन! भूतप्राणियोंके उत्पत्ति, प्रलय आपसे मैंने विस्तारपूर्वक सुने और आपका अक्षय माहात्म्य भी सुना ॥ २ ॥

एवमेतद्यथात्थ त्वमात्मानं परमेश्वर।
द्रष्टुमिच्छामि ते रूपमैश्वरं पुरुषोत्तम ॥ ३ ॥

हे परमेश्वर! तुम अपने आपको जैसे कहते हो यह ऐसा ही है, हे पुरुषोत्तम! तुम्हारे ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य, तेज इन छः ऐश्वर्ययुक्त रूपको देखनेको मैं चाहता हूं ॥ ३ ॥

मन्यसे यदि तच्छक्यं मया द्रष्टुमिति प्रभो।
योगेश्वरं ततो मे त्वं दर्शयात्मानमव्ययम् ॥४॥

हे प्रभो ! जो वह रूप मुझकरके देखनेको योग्य है ऐसा मानते हो हे योगेश्वर ! तो तुम अविनाशी अपने रूपको मुझको दिखाओ ॥ ४ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्रशः ।
नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च॥५॥

ऐसे वचन सुनके भगवान् बोले—कि, हे पृथापुत्र!सैकेडों फिर हजारों अनेक प्रकारके दिव्य और अनेक वर्ण आकारके मेरे रूपोंको देखो ॥ ५ ॥

पश्यादित्यान् वसून् रुद्रानश्विनौ मरुतस्तथा ।
बहून्यदृष्टपूर्वाणि पश्याश्चर्याणि भारत ॥ ६ ॥
इहैकस्थं जगत्कृत्स्नं पश्याद्य सचराचरम् ।
मम देहे गुडाकेश यच्चान्यद्द्रष्टुमिच्छसि ॥७॥

हे भारत ! मेरी देहमें द्वादश सूर्य अष्ट वसु ११ रुद्र अश्विनीकुमार२,४९ मरुत् देखो तथा जो प्रथम न देखे ऐसे बहुत आश्चर्य देखो हे गुडाकेश ! इस मेरे देहमें सचराचर सब जगत् एक ही ठिकाने इकट्ठे आज देखो और जो और भी देखनेको चाहते हो उसे भी देखो ॥ ६ ॥ ७ ॥

न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा ।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम् ॥८॥

इस अपनी दृष्टिकरके मुझको देखनेको न समर्थ होगे इससे तुमको दिव्य नेत्र देता हूं तिस करके मेरे ईश्वरसंबंधी योगको देखो ॥ ८ ॥

संजय उवाच ।

एवमुक्त्वा ततो राजन्महायोगेश्वरो हरिः ।

दर्शयामास पार्थाय परमं रूपमैश्वरम् ॥ ९ ॥

संजय धृतराष्ट्रसे कहते भये-कि हे राजन् ! महायोगेश्वर श्रीकृष्ण ऐसे कहके फिर सर्वोत्तम ईश्वरसंबंधी रूप अर्जुनको दिखाते भये ॥ ९ ॥

अनेकवक्त्रनयनमनेकाद्भुतदर्शनम् ।
अनेकदिव्याभरणं दिव्यानेकोद्यतायुधम् ॥ १० ॥

जिस रूपमें अनेक मुख और नेत्र हैं और अनेक अद्भुत दर्शन हैं अनेक दिव्य आभूषणयुक्त हैं और दिव्य अनेक उठाये हैं आयुध जिसने ॥ १० ॥

दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगंधानुलेपनम् ।
सर्वाश्चर्यमयं देवमनंतं विश्वतोमुखम् ॥ ११ ॥

दिव्य माला और वस्त्र धारण किये हैं दिव्य चंदनादि गंधका लेपन किये हैं सर्व आश्चर्यमय प्रकाशमान अंतरहित और सब ओर जिसमें मुख हैं ऐसा रूप अर्जुनको दिखाते भये ॥ ११ ॥

दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता ।
यदि भाः सदृशी सा स्याद्भासस्तस्य महात्मनः ॥ १२ ॥

जो आकाशमें हजारों सूर्योंका एक समयमें उत्पन्न भया हुआ तेज हो सो तेज उन महात्मा भगवान्के तेजके समान हो ॥ १२ ॥

तत्रैकस्थं जगत्कृत्स्नं प्रविभक्तमनेकधा ।
अपश्यद्देवदेवस्य शरीरे पांडवस्तदा ॥ १३ ॥

उस देवोंके भी प्रकाशक श्रीकृष्णके शरीरमें उस समयमें अनेक प्रकारका न्यारा न्यारा एकही ठिकाने इकट्ठा ऐसे सर्व जगत्को अर्जुन देखते भये ॥ १३ ॥

ततः स विस्मयाविष्टो हृष्टरोमा धनंजयः।
प्रणम्य शिरसा देवं कृतांजलिरभाषत॥ १४॥

तब विस्मय करके व्याप्त रोमांचयुक्त वह अर्जुन कृष्णको मस्तकसे प्रणाम करके हाथ जोडे हुए बोले॥ १४॥

अर्जुन उवाच।

पश्यामि देवांस्तव देव देहे सर्वांस्तथा भूतविशेषसंघान्॥ ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थमृषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान्॥ १५॥

अर्जुन कहते हैं-कि, हे देव! तुम्हारे शरीरमें देवोंको तथा सर्व भूत प्राणियोंके समूहोंको तथा ब्रह्माको और कमलासन जो ब्रह्मा उनमें स्थित जो ईश्वर याने आप ही उनको और सर्व ऋषियोंको और दिव्य सर्पोंको देखता हूं॥ १५॥

अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रं पश्यामि त्वां सर्वतोऽनंतरूपम्॥ नान्तं न मध्यं न पुनस्तवादिं पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप॥ १६॥

हे विश्वेश्वर! हे विश्वरूप! तुमको सर्व ओरसे अनेक भुजा उदर मुख और नेत्रवाले अनंतरूप देखता हूं तुम्हारा न अन्त न मध्य न फिर आदि देखता हूं॥ १६॥

किरीटिनं गदिनं चक्रिणं च तेजोराशिं सर्वतो दीप्तिमंतम्॥ पश्यामि त्वां दुर्निरीक्ष्यं समंताद्दीप्तानलार्कद्युतिमप्रमेयम्॥ १७॥

तुमको किरीटवान् गदावान् चक्रवान् और तेजकी राशि सर्व ओरसे प्रकाशमान सर्व ओरसे दुर्निरीक्ष्य प्रदीप्त अग्नि और सूर्योंकी कांतिसरीखी कांतिमान् और अपरिमितरूप देखता हूं॥ १७॥

त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ॥ त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे ॥ १८ ॥

मुमुक्षु जनोंकरके जानने योग्य सर्वोत्तम विष्णु आप हो इस विश्वके श्रेष्ठ आधार आप हो सनातनधर्मके रक्षक अविनाशी आप हो सनातन पुरुष आप हो यह मैंने जाना है ॥ १८ ॥

अनादिमध्यांतमनंतवीर्यमनंतबाहुं शशिसूर्यनेत्रम् ॥ पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रं स्वतेजसा विश्वमिदं तपन्तम् ॥ १९ ॥

नहीं है आदि, मध्य और अंत जिनके अनंत हैं पराक्रम जिनके अनंत हैं भुजा जिनके चंद्र सूर्य नेत्र हैं जिनके प्रदीप्त है अग्निसदृश मुख जिनके जो आपके तेजकरके इस विश्वको तपायमान कर रहे हो ऐसे तुमको देखता हूँ ॥ १९ ॥

द्यावापृथिव्योरिदमंतरं हि व्याप्तं त्वयैकेन दिशश्च सर्वाः ॥ दृष्ट्वाऽद्भुतं रूपमुग्रं तवेदं लोकत्रयं प्रव्यथितं महात्मन् ॥ २० ॥

हे महाशरीर ! द्यावापृथिवीका यह अंतर याने इस ब्रह्मांडका पोल आप एक करके व्याप्त है और सर्व दिशा व्याप्त हैं अर्थात् ऊँचाई करके ब्रह्मांड पोल और चौड़ाई करके सर्व दिशा पूर गयी हैं ऐसे आपके इस अद्भुत उग्र रूपको देखके तीनों लोक याने तीनों लोकोंके वासी देव मनुष्यादिक व्याकुल हैं ॥ २० ॥

अमी हि त्वां सुरसंघा विशंति केचिद्भीताः प्रांजलयो गृणंति ॥ स्वस्तीत्युक्त्वा महर्षिसिद्धसंघाः स्तुवंति त्वां स्तुतिभिः पुष्कलाभिः ॥ २१ ॥

ये देवताओंके समूह आपके समीप प्राप्त हुए हैं कितनेक भयभीत हाथ जोरे हुए तुम्हारे गुण नाम उच्चारण करते हैं महर्षि और सिद्धोंके समूह स्वस्ति ऐसे कहके अनेक प्रकारकी स्तुतियों करके तुम्हारी स्तुति करते हैं ॥ २१ ॥

रुद्रादित्या वसवो ये च साध्या विश्वेऽश्विनौ
मरुतश्चोष्मपाश्च ॥ गंधर्वयक्षासुरसिद्धसंघा
वीक्षंते त्वां विस्मिताश्चैव सर्वे ॥ २२ ॥

एकादश रुद्र द्वादश आदित्य अष्ट वसु और जो साध्य नामक उपदेव तेरह विश्वेदेव, दो अश्विनीकुमार, उंचाश मरुत् और पितर और गंधर्व यक्ष देवता और सिद्ध इनके समूह ये सर्व विस्मित हुए तुमको देखे रहे हैं ॥ २२ ॥

रूपं महत्ते बहुवक्त्रनेत्रं महाबाहो बहुबाहूरुपादम् ।
बहूदरं बहुदंष्ट्राकरालं दृष्ट्वा लोकाः प्रव्यथिता-
स्तथाहम् ॥ २३ ॥

हे महाबाहो ! बहुत हैं मुख और नेत्र जिसमें, बहुत हैं भुज जांघ और चरण जिसमें बहुत हैं उदर जिसमें बहुत दाढों करके विकराल ऐसे तुम्हारे महत् रूपको देखके लोक व्याकुल हैं तैसेही मैं भी व्याकुल हूं ॥ २३ ॥

नभःस्पृशं दीप्तमनेकवर्णं व्यात्ताननं दीप्तविशा-
लनेत्रम् ॥ दृष्ट्वा हि त्वां प्रव्यथितान्तरात्मा धृतिं
न विन्दामि शमं च विष्णो ॥२४॥ दंष्ट्राकरालानि
च ते मुखानि दृष्ट्वैव कालानलसन्निभानि॥ दिशो
न जाने न लभे च शर्म प्रसीद देवेश जगन्निवास
॥२५॥ अमी च त्वां (दृष्ट्वा दिशो न जानंति शमं न

लभंते इति पूर्वेण पंचविंशतितमेन पद्येनान्वयः)
धृतराष्ट्रस्य पुत्राः सर्वे सहैवावनिपालसंघैः । भीष्मो
द्रोणः सूतपुत्रस्तथाऽसौ सहास्मदीयैरपि योध-
मुख्यैः ॥ २६ ॥ वक्राणि ते त्वरमाणा विशंति
दंष्ट्राकरालानि भयानकानि ॥ केचिद्विलग्ना
दशनांतरेषु संदृश्यन्ते चूर्णितैरुत्तमाङ्गैः ॥ २७ ॥

हे विष्णो ! नभ जो प्रकृतिसे परे परम आकाश वैकुंठ तहां पर्यंत है स्पर्श जिनका जो प्रकाशमान अनेक वर्णयुक्तरूप तथा मुख फैलाये प्रदीप्त और विशाल नेत्र ऐसे आपको देखके जिससे कि, व्याकुलचित्त होकर धीरजको और शांतिको नहीं प्राप्त होता हूं और डाढें हैं कराल जिनमें और कालानलके तुल्य हैं ऐसे तुम्हारे मुखोंको देखके ही दिशाओंको नहीं जानता हूं और सुखको भी नहीं प्राप्त होता हूं और राजाओंके समूहों करके सहित ये सब धृतराष्ट्रके पुत्र तथा भीष्म द्रोण यह कर्ण और हमारे योद्धाओंमें मुख्य जो हैं उनकरके सहित तुमको (देखके दिशाओंको नहीं जानते हैं और सुखको नहीं प्राप्त होते हैं "ऐसे प्रथमके पच्चीसवें श्लोककरके अन्वय है") ये सब अतिवेगको प्राप्त हुये डाढें हैं कराल जिनमें ऐसे भयानक आपके मुखोंमें प्रवेश करते हैं कितनेक चूर्णित होकर मस्तकोंकरके सहित तुम्हारे दांतोंकी संधियोंमें फटके हुए दीखते हैं इससे हे देवेश ! हे जगन्नि-वास ! आप कृपा करो याने हम सब डरते हैं इससे आप प्रथम सरीखे सौम्यरूपको धारण करो ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥

यथा नदीनां बहवोऽम्बुवेगाः समुद्रमेवाभिमुखा
द्रवंति ॥ तथा तवामी नरलोकवीरा विशन्ति वक्त्रा-
ण्यभितो ज्वलन्ति ॥ २८ ॥

जैसे नदियोंके बहुतसे पानीके वेग समुद्रकेही संमुख धांवते हैं वैसे ये नरलोकवीर तुम्हारे प्रज्वलित मुखोंमें प्रवेश करते हैं२८॥

यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतंगा विशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः॥ तथैव नाशाय विशन्ति लोकास्त-वापि वक्राणि समृद्धवेगाः ॥ २९ ॥

जैसे अतिवेगवंते पतंग अपने ही नाशके वास्ते प्रदीप्त अग्निमें प्रवेश करते हैं तैसे ही अतिवेगवंते ये लोग भी अपने विनाशके वास्ते तुम्हारे मुखोंमें प्रवेश करते हैं ॥ २९ ॥

लेलिह्यसे ग्रसमानः समंताल्लोकान्समग्रान्वदनै-र्ज्वलद्भिः ॥ तेजोभिरापूर्य जगत्समग्रं भासस्त-वोग्राः प्रतपंति विष्णो ॥ ३० ॥

हे विष्णो ! प्रज्वलित अपने मुखोंकरके सर्व लोगोंको सब ओरसे घेरते हुए चाटे जाते (खाये जाते) हो तुम्हारे उग्र प्रकाश सब जगत्को अपने तेजसे परिपूरित करके तप रहे हैं३०॥

आख्याहि मे को भवानुग्ररूपो नमोऽस्तु ते देव-वर प्रसीद ॥ विज्ञातुमिच्छामि भवंतमाद्यं न हि प्रजानामि तव प्रवृत्तिम् ॥ ३१ ॥

हे देववर ! ऐसे उग्ररूप आप कौन हो सो मुझसे कहो,क्योंकि तुम्हारी प्रवृत्तिको मैं नहीं जानता हूँ जो आप आदि हो उनको जाननेकी इच्छा करता हूं आप कृपा करो आपको नम-स्कार हो ॥ ३१ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो लोकान्समाहर्त्तु-मिह प्रवृत्तः ॥ ऋतेऽपि त्वां न भविष्यंति सर्वे येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः ॥ ३२ ॥

ऐसे सुनके श्रीकृष्ण भगवान् बोले-कि,मैं इन लोगोंके क्षयके वास्ते बढ़ा हुआ काल हूं यहां इन लोगोंका संहार करनेके लिये प्रवृत्त हुआ हूं जो ये योधा तुम्हारी शत्रुसेनाओंमें खडे हैं ये सब तुम्हारे विना निश्चयपूर्वक न रहेंगे ॥ ३२ ॥

तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व जित्वा शत्रून् भुंक्ष्व राज्यं समृद्धम् ॥ मयैवैते निहताः पूर्वमेव निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन् ॥ ३३ ॥

हे सव्यसाचिन् हे अर्जुन ! जिससे कि ये मरेहींगे इससे तुम उठो यश लो शत्रुओंको जीतकर समृद्ध राज्यको भोगो प्रथम ही ये सब मैंने मार रखे हैं तुम तो निमित्तमात्र होओ ॥ ३३ ॥

द्रोणं च भीष्मं च जयद्रथं च कर्णं तथाऽन्यानपि योधवीरान् ॥ मया हतांस्त्वं जहि मा व्यथिष्ठा युध्यस्व जेतासि रणे सपत्नान् ॥ ३४ ॥

द्रोण और भीष्म और जयद्रथ और कर्ण तथा और भी शूर वीर मेरे मारे हुए इनको तुम मारो मत दुःखित होओ रणमें शत्रुओंको जीतोगे युद्ध करो ॥ ३४ ॥

संजय उवाच ।

एतच्छ्रुत्वा वचनं केशवस्य कृतांजलिर्वेपमानः किरीटी॥ नमस्कृत्वा भूय एवाह कृष्णं सगद्गदं भीतभीतः प्रणम्य ॥ ३५ ॥

संजय धृतराष्ट्रसे कहते हैं-कि, किरीटी जो अर्जुन वह श्रीकृष्णके इतने वचन सुनके कांपते कांपते हाथ जोड़े हुए नमस्कार करके फिर भी भयभीत हो प्रणाम करके गद्गदकंठयुक्त श्रीकृष्णसे बोले ॥ ३५ ॥

अर्जुन उवाच ।

**स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या जगत्प्रहृष्यत्यनुर-
ज्यते च ॥ रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवंति सर्वे
नमस्यंति च सिद्धसंघाः ॥ ३६ ॥**

अर्जुन कहते हैं-कि, हे हृषीकेश ! तुम्हारी उत्तम कीर्तिकरके जगत् आनंदित होता है और आपसे प्रीति करता है, राक्षस भयको प्राप्त होकर सब दिशाओंको भागते हैं और सब सिद्धसं-मूह नमस्कार करते हैं सो यह योग्य ही है ॥ ३६ ॥

**कस्माच्च ते न नमेरन् महात्मन् गरीयसे ब्रह्मणो-
ऽप्यादिकर्त्रे ॥ अनंत देवेश जगन्निवास त्वमक्षरं
सदसत्तत्परं यत् ॥ ३७ ॥**

हे महात्मन् ! ब्रह्मासे भी बडे आदिकर्त्ता जो आप ऐसे आपको वे क्यों न नमन करें अर्थात् करें हीं गे । हे अनन्त ! हे देवेश ! हे जगन्निवास ! जो अक्षर याने जीवतत्त्व सत् जो कार्य स्थूलप्रकृति असत् जो सूक्ष्मप्रकृति कारण तत्पर जो शुद्ध आत्मा सो सब आप हो अर्थात् सबके अंतर्यामी हो ॥ ३७ ॥

**त्वमादिदेवः पुरुषः पुराणस्त्वमस्य विश्वस्य परं नि-
धानम् ॥ वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम त्वया ततं
विश्वमनन्तरूप ॥ ३८ ॥**

आप आदिदेव पुराण पुरुष हो तुम इस विश्वके परम आधार हो इसके जाननेवाले और जानने योग्य और इसके सर्वोत्तम वास-स्थान हो हे अनंतरूप ! यह विश्व तुमसे व्याप्त है ॥ ३८ ॥

वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशांकः पितामहस्त्वं प्रपि-

तामहश्च ॥ नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः पुन-
श्च भूयोपि नमो नमस्ते ॥ ३९ ॥

पवन अग्नि यम वरुण चंद्र पितामह और प्रपितामह तुम हो इससे तुमको हजारों वार नमोनमः हो फिर और फिर भी तुमको वारंवार नमस्कार है ॥ ३९ ॥

नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व ॥ अनंतवीर्यामितविक्रमस्त्वं सर्वं समा-
प्नोषि ततोऽसि सर्वः ॥ ४० ॥

हे सर्व ! तुमको अगाड़ी और पिछाड़ीसे नमस्कार और तुमको सब ओरसे भी नमस्कार हो । हे अनन्तवीर्य ! आप अनंत बल और अमित पराक्रम तुम सबमें व्यापक हो इसीसे तुम सर्वरूप हो ॥ ४० ॥

सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं हे कृष्ण हे यादव हे सखेति ॥ अजानता महिमानं तवेदं मया प्रमादा-
त्प्रणयेन वाऽपि ॥ ४१ ॥ यच्चावहासार्थमसत्कृतो ऽसि विहारशय्यासनभोजनेषु॥एकोऽथवाऽप्यच्युत तत्समक्षं तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम् ॥ ४२ ॥

हे अच्युत ! तुम्हारी महिमाको और इस विश्वरूपको न जान-
नेवाला जो मैं उसे मैंने प्रमादसे अथवा प्रणयसे भी सखा ऐसे मानके हे कृष्ण ! हे यादव ! हे सखे ! ऐसे हठसे जो कहा हो और क्रीडा शयन आसन तथा भोजनकालमें अकेला अथवा और उन सखाओंके संमुख हँसीके वास्ते जो आपका अपमान किया हो सो परिमितिरहित जो आप उनें आपसे मैं क्षमा कराता हूं ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

पितासि लोकस्य चराचरस्य त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान् ॥ न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव ॥४३॥ तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं प्रसादये त्वामहमीशमीडयम् ॥ पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम् ॥ ४४ ॥

हे सर्वोत्तमप्रभाव ! आप इस चराचर लोकके पिता हो और सब गुरुओंसे बडे गुरु हो इसीसे पूज्य हो तीनों लोकमें भी आपके समान और नहीं है तो कहांसे और अधिक होगा इससे मैं शरीरको पृथिवीपर धारण किये हुए प्रणाम करके ईश्वर अतः स्तुति करनेयोग्य आपको प्रसन्न करता हूं, हे देव ! जैसे पुत्रके प्रियके वास्ते पिता, सखाके प्रियके वास्ते सखा ऐसे मेरे प्रिय आप हो सो मेरे प्यारके वास्ते मेरे अपराध सहनेको योग्य हो ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

अदृष्टपूर्वं हृषितोऽस्मि दृष्ट्वा भयेन च प्रव्यथितं मनो मे ॥ तदेव मे दर्शय देव रूपं प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥ ४५ ॥

जो रूप मैंने और किसीने भी प्रथम नहीं देखा था उसको देखकर चकित हुआ हूं और भयसे मेरा मन व्याकुल है, हे देव ! मुझको वही प्रथमका रूप दिखावो हे देवेश ! हे जगन्निवास ! आप मुझपर प्रसन्न हो ॥ ४५ ॥

किरीटिनं गदिनं चक्रहस्तमिच्छामि त्वां द्रष्टुमहं तथैव ॥ तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन सहस्रबाहो भव विश्वमूर्त्ते ॥ ४६ ॥

हे सहस्रबाहो ! हे विश्वमूर्त्ते !! मैं वैसों ही किरीटयुक्त गदायुक्त चक्रहस्त आपको देखना चाहता हूं इस वास्ते उसी चतुर्भुज रूपकरके युक्त होओ ॥ ४६ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

मया प्रसन्नेन तवार्जुनेदं रूपं परं दर्शितमात्मयोगात् ॥ तेजोमयं विश्वमनंतमाद्यं यन्मे त्वदन्येन न दृष्टपूर्वम् ॥ ४७ ॥

ऐसी अर्जुनकी प्रार्थना सुनके भगवान् बोले-कि, हे अर्जुन ! जो तेजोमय विश्वरूप अंतरहित सर्वका आदि तुम्हारे विना और किसीने नहीं प्रथम देखा सो यह परं रूप प्रसन्न मैंने स्वकीय सत्यसंकल्परूप योगसे तुमको दिखाया ॥४७॥

न वेदयज्ञाध्ययनैर्न दानैर्न च क्रियाभिर्न तपोभिरुग्रैः ॥ एवंरूपः शक्य अहं नृलोके द्रष्टुं त्वदन्येन कुरुप्रवीर ॥ ४८ ॥

हे कुरुवंशियोंमें श्रेष्ठ वीर ! ऐसे रूपको मैं इस मनुष्यलोकमें तुम्हारे विना औरोंको न वेदपाठ, यज्ञ और मंत्रजपकरके, न दान करके और न योगक्रियाकरके, न उग्र तपकरके दिखानेको योग्य हूँ ॥ ४८ ॥

मा ते व्यथा मा च विमूढभावो दृष्ट्वा रूपं घोरमीदृङ् ममेदम् ॥ व्यपेतभीः प्रीतमनाः पुनस्त्वं तदेव मे रूपमिदं प्रपश्य ॥ ४९ ॥

ऐसे घोर मेरे इस रूपको देखकर तुमको व्यथा मत हो और मोहभाव भी मत हो, भयरहित, प्रसन्नमन तुम वही यह मेरा रूप फिर देखो ॥ ४९ ॥

संजय उवाच ।

इत्यर्जुनं वासुदेवस्तथोक्त्वा स्वकं रूपं दर्शयामास भूयः ॥ आश्वासयामास च भीतमेनं भूत्वा पुनः सौम्यवपुर्महात्मा ॥ ५० ॥

संजय धृतराष्ट्रसे कहते हैं—कि, वसुदेवपुत्र कृष्ण ऐसे अर्जुनको कहकर पूर्ववत् अपने रूपको फिर दिखाये और जो बडे शरीरयुक्त थे सो सौम्यरूप होके फिर भयभीत अर्जुनको आश्वासन देने लगे ॥ ५० ॥

अर्जुन उवाच ।

दृष्ट्वेदं मानुषं रूपं तव सौम्यं जनार्दन ।
इदानीमस्मि संवृत्तः सचेताः प्रकृतिं गतः ॥५१॥

तब अर्जुन बोले—कि, हे जनार्दन ! तुम्हारे इस सौम्य मानुष रूपको देखके अब सचेत हुआ अपने स्वभावको प्राप्त हुआ सावधान हूं ॥ ५१ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

सुदुर्दर्शमिदं रूपं दृष्टवानसि यन्मम ।
देवा अप्यस्य रूपस्य नित्यं दर्शनकांक्षिणः ॥५२॥

अर्जुनके वाक्य सुनकर श्रीकृष्ण बोले—कि, हे अर्जुन ! जो अतिदुर्लभदर्शन इस मेरे रूपको तुम देखे इस रूपके देवता भी निरंतर दर्शनाभिलाषी रहा करते हैं ॥ ५२ ॥

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया ।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा ॥५३॥

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन ।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप ॥ ५४ ॥

हे अर्जुन ! जैसे मुझको तुम देखते हुएँ इस प्रकारका मैं नँ वेदोंकँरके नँ तंपकरके नँ दीनकरके और नँ यज्ञकँरके देखँनेके योग्य हो सँकता हूं । क्यौं कि, हे परंतप ! ऐसा मैं अनन्यै भक्तिकेंरके निश्चयपूर्वक जाननेको और देखँनेको समीप प्रौप्त होनेके भी योग्य हो सकता हूँ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः संगवर्जितः ।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पांडव ॥५५॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विश्वरूपदर्शनयोगो नाम एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

हे पांडव ! जो मनुष्य मेरे लिये लौकिक वैदिक सब कर्म करता है मुझको ही सबसे अतिउत्तम मानता है मेरा ही भक्त है मेरे संबंध विना अन्यसंगोंकरके रहित है और सर्वभूत प्राणियोंमें निर्वैर है सो मुझको प्राप्त होता है ॥ ५५ ॥

इति श्रीमत्सुकुलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादविरचितायां श्रीमद्भगवद्गीतामृततरंगिण्यामेकादशाऽध्यायप्रवाहः ॥ ११ ॥

अर्जुन उवाच ।

एवं संततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते ।
ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः ॥ १ ॥

ऐसे प्रथम आत्मज्ञानकी महिमा श्रीकृष्णजीने वर्णन की और कहा कि मैं भक्तिसे ही जानने तथा देखनेमें और प्राप्त होनेमें आता हूँ सो दोनोंको सुनके अर्जुन पूँछते हैं-कि; निरंतर भक्तियोगयुक्त हुए जो भक्त ऐसे जो आपने पीछेकी अध्यायके अंतमें कहा है तैसे आपकी उपासना करते हैं और जो इंद्रियोंके अदृश्य अक्षर याने आत्मस्वरूप उसकी उपासना

करते हैं उनमें दोनोंमें अतिश्रेष्ठ कौन हैं, आत्मज्ञानी श्रेष्ठ हैं कि, आपके उपासक श्रेष्ठ हैं सो कहो ॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते ।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः ॥ २ ॥

ऐसा अर्जुनका प्रश्न सुनके श्रीकृष्ण भगवान् बोले—कि, जो निरंतर भक्तियोगयुक्त हो मुझमें मनको लगाके परम श्रद्धाकरके युक्त मुझको भजते हैं वे योगियोंमें श्रेष्ठ मेरे मान्य हैं ॥ २ ॥

ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते ॥ सर्वत्रगम-
चिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम् ॥ संनियम्येन्द्रिय-
ग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः ॥ ते प्राप्नुवन्ति मामेव
सर्वभूतहिते रताः ॥ क्लेशोऽधिकतरस्तेषाम-
व्यक्तासक्तचेतसाम् ॥ अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं
देहवद्भिरवाप्यते ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥

जो कोई इंद्रियसमूहको नियममें रखके सर्वत्र समबुद्धि सर्वभूतोंके हितमें रत हुए अनिर्देश्य याने देवादिशरीरोंकरके कहनेमें न आवे ऐसे अव्यक्त याने इंद्रियगोचर नहीं " सर्वत्रगं " याने, सर्वत्र देवादिशरीरोंमें रहनेवाला अचिन्त्य याने ध्यानमें न आवे और कूटस्थ याने सर्वत्र एकसा रहे अचल याने स्वस्वरूपहीमें स्थिर इसीसे नित्य ऐसे अक्षरको याने आत्मस्वरूपको भजते हैं अर्थात् आत्मस्वरूपहीका अनुसंधान करते हैं वे भी मुझको ही प्राप्त होते हैं परन्तु आत्मज्ञानमें दशा दुःखपूर्वक देहधारियों करके प्राप्त होती है इससे उन अव्यक्तासक्तचित्तोंको अतिशय क्लेश है ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः ।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते ॥ ६ ॥
तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात् ।
भवामि न चिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम् ॥ ७ ॥

हे पृथापुत्र ! जो कोई सर्व कर्मोंको मुझमें अर्पण करके मेरे ही शरण भये हुए अनन्य भक्तियोगकरके मुझको ध्यावते पूजते हैं ऐसे मुझमें लगाया है चित्त जिन्होंने उनका मैं थोडेही कालमें मृत्युदुःखरूप संसारसागरसे उद्धारकर्ता होऊंगा ॥ ६ ॥ ७ ॥

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय ।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः ॥ ८ ॥

इससे तुम मुझमें ही मनको लगावो, मुझमें ही बुद्धिको लगावो इस मन, बुद्धिके लगाये पीछे मेरे ही समीप रहोगे इसमें संशय नहीं है ॥ ८ ॥

अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम् ।
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनंजय ॥ ९ ॥

हे अर्जुन ! जो कदाचित् मुझमें चित्तको स्थिर समाधान कर नहीं सकते हो तो अभ्यासयोगकरके मेरे प्राप्त होनेको इच्छते रहो ॥ ९ ॥

अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव ।
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि ॥१०॥

जो अभ्यासमें भी असमर्थ होओ तो मेरे पूजनादिक कर्मोंमें मुख्य स्थिर होउ मेरे अर्थ भी कर्मोंको करते करते मेरी प्राप्ति-रूप सिद्धिको प्राप्त होओगे ॥ १० ॥

अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगमाश्रितः ।
सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान् ॥ ११ ॥

जो कि, तुम यहभी करनेको अशक्त हो तो मनको सावधान किये हुए मेरे भक्तियोगका आश्रय किये हुए सर्व कर्मफलका त्याग करो ॥ ११ ॥

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते ।
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छांतिरनंतरम् ॥ १२॥

जिससे कि, अभ्याससे कल्याणकारक ज्ञान होता है ज्ञानसे विचार (यानी ध्यान) होता है विचारसे कर्मफलत्याग होता है कर्मफलके त्यागसे फिर शांति याने संसारसे वैराग्य होता है १२ ॥

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च ।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी ॥ १३ ॥
संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥१४॥

जो सर्वभूतोंका न द्वेषकारक हो और सबका मित्र हो और दयालु भी हो ममतारहित अहंकाररहित सुखदुःखमें सम क्षमावान् यथालाभसंतुष्ट निरंतर भक्तियोगवान् जितचित्त दृढनिश्चय मुझमें मन, बुद्धिको लगाये हो सो मेरा भक्त मुझको प्रिय है ॥ १३ ॥ १४ ॥

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः ।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ॥ १५ ॥

जिससे कोई भी जन्तु त्रास न पावे और जो किसीसे भी दुःख न पावे और जो हर्ष, ईर्षा, भय और उद्वेगोंकरके रहित हो सो मेरा प्रिय है ॥ १५ ॥

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः ।
सर्वारंभपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥१६॥

जो मनुष्य मेरे संबधं विना सर्वत्र अपेक्षारहित शुचि याने शुद्ध आहारी और बाहर मृत्तिका जलादिकरके और अंदर चित्त-की शुद्धता करके पवित्र स्वधर्म अनुष्ठानमें चतुर शत्रुमित्रादिर-हित शास्त्रोक्त कर्म करनेमें व्यथारहित सर्व आरंभोंके फलं और ममताका त्यागी हो ऐसा मेरा भक्त सो मुझको प्रिय है ॥ १६ ॥

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न कांक्षति ।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः॥१७॥

जो सुखकारक वस्तु पाके न हर्षे, दुःखकारक पाके न द्वेष करे, शोकनिमित्तमें न शोक करे और हर्षकारककी न इच्छा करे जो शुभाशुभ कर्मफलोंका त्यागी हुआ भक्त हो सो मुझको प्रिय है ॥ १७ ॥

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः संगविवर्जितः ॥ तुल्य-निंदास्तुतिर्मौनी संतुष्टो येन केनचित् ॥ अनिके-तः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः ॥१८॥१९॥

तथा शत्रु और मित्रमें सम तैसे ही मान अपमानमें, शीत उष्ण सुखदुःखोंमें सम विषयोंकी आसक्तिरहित हो निंदा स्तुति तुल्य माने, मितभाषी जो स्वतःप्राप्त हो इसीकरके संतुष्ट, घरमें अनासक्त स्थिरबुद्धि भक्तिमान् मनुष्य मेरी प्रिय है॥१८॥१९॥

ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते ।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः॥२०॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां
योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे भक्ति-
योगो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

जो कोई श्रद्धा धारे हुए मुझको सर्वोत्तम जाननेवाले भक्त इस यथोक्त धर्मरूप अमृतको याने मुझमें मन लगाना इत्यादि धर्म्यरूप अमृतको सेवते हैं व मनुष्य मेरे अतिशय प्रिय हैं॥२०॥

इति श्रीमत्सुकुलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादविरचितायां श्रीगीतामृततरंगिण्यां द्वादशाध्यायप्रवाहः ॥ १२ ॥

इति द्वितीयं षट्कं समाप्तम् ॥

अथ तृतीयं षट्कम् ।

श्रीभगवानुवाच ।

इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते ।
एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः ॥ १ ॥

प्रथमके छः अध्यायोंमें ईश्वरप्राप्तिका उपायभूत उपासना और उपासनाका अंगभूत आत्मस्वरूपज्ञान कहा और उस आत्मस्वरूपज्ञानकी प्राप्ति ज्ञानयोग कर्मयोगनिष्ठासे होती है ऐसे कहा। मध्यके छह अध्यायोंमें परमात्मस्वरूपका यथार्थ-ज्ञान और उसके माहात्म्यज्ञानपूर्वक उपासना जिस उपास-नाको भक्ति भी कहते हैं सो कह चुके। अब अंतके छह अध्या-योंमें प्रकृतिपुरुषका निरूपण और इस प्रपंचका प्रकृतिपुरुषके संयोगसे होना कहेंगे और प्रथम बारह अध्यायोंमें जो कहे परमा-त्मस्वरूपका यथार्थ निश्चय और कर्मज्ञानभक्तिस्वरूप और इन-के ग्रहणके न्यारे न्यारे प्रकार कहेंगे। तहां तेरहवें अध्यायमें देह और आत्मके स्वरूप और आत्मस्वरूपप्राप्तिका उपाय तथा प्रकृतिमुक्त आत्माका स्वरूप और उसके प्रकृतिसंबंधका कारण और प्रकृतिपुरुषविवेकका अनुसंधानप्रकार कहेंगे। श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं-कि, हे कुंतिपुत्र ! यह शरीर क्षेत्र ऐसा कहा

है जो इसको जानता है उसको देहात्मज्ञानिजन क्षेत्रज्ञ ऐसा कहते हैं याने देह क्षेत्र और आत्मा क्षेत्रज्ञ है ॥ १ ॥

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत ।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम ॥ २ ॥

हे भारत ! सर्व क्षेत्रोंमें याने सर्व देहोंमें क्षेत्रज्ञ जो जीव और मैं जो परमात्मा उस मुझको भी जानो जो क्षेत्र और क्षेत्रज्ञका ज्ञान याने इनका विवेकज्ञान है सो ज्ञान मुझको अंगीकार है ॥ यहाँ जो शरीरोंमें आत्मा परमात्मा दोनों कहे उसपर श्रुति प्रमाण है सो यह "द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते ॥ तयोरेकः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति ॥" अर्थ-दो पक्षी संग संग रहनेवाले परस्पर सखा एकसदृश वृक्षपर रहते हैं उनमेंसे एक उस वृक्षके स्वादु फल खाता है. दूसरा खाये विना प्रकाशता है अर्थात् ईश्वर और जीव सदा संग रहते हैं, परस्पर सखा एकसरीखे देहमें रहते हैं उनमें जीव शरीरजन्य कर्मफलोंका भोक्ता है और ईश्वर साक्षिमात्र प्रकाशक है। दूसरा यह अर्थ होता है कि, क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ मैं ही हूँ अर्थात् इन दोनोंका अंतर्यामी हूँ तो भी देहांतर्यामी जीव जीवांतर्यामी परमात्मा ऐसे भी यही अर्थ सिद्ध हुआ। जो यहां जीव और ईश्वर एक ही कहते हैं उनको "उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः" यहां अर्थकी पंचाइत होनेकी अंतर्यामित्वमें तो "ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ॥ न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम्" और "यस्यात्मा शरीरं य आत्मनि तिष्ठन् य आत्मानमंतरो यमयति यमात्मा न वेद स ते आत्मा अमृतः" इत्यादिक श्रुति भी प्रमाण हैं ॥ २ ॥

तत्क्षेत्रं यच्च यादृक्च यद्विकारि यतश्च यत् ।
स च यो यत्प्रभावश्च तत्समासेन मे शृणु ॥ ३ ॥

सो क्षेत्र जिस द्रव्यका है और जिनके आश्रयभूत है और जिन विकारोंकरके और जिस प्रयोजनके वास्ते उत्पन्न हुआ है और जिस रूपसे वर्तमान है और वह क्षेत्रज्ञ जो है याने जैसे रूपयुक्त है और जैसे प्रभाववाला है सो संक्षेप करके मुझसे सुनो ॥३॥

ऋषिभिर्बहुधा गीतं छन्दोभिर्विविधैः पृथक् ।
ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः ॥ ४ ॥

वह क्षेत्रक्षेत्रज्ञका यथास्वरूप बहुत प्रकारकरके पराशरादिक ऋषियोंने और ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद ऐसे अनेक प्रकार वेदोंने और ब्रह्मके प्रतिपादन करनेवाले जो ब्रह्मसूत्र याने व्यासकृत शारीरिक सूत्ररूप पदोंने जो कारणयुक्त निश्चय याने सिद्धान्त करनेवाले उन्नने भी क्षेत्रक्षेत्रज्ञके स्वरूपको न्यारा न्यारा कहा है सो मैं संक्षेपसे कहूँगा तुम मुझसे सुनो ॥ ४ ॥

महाभूतान्यहंकारो बुद्धिरव्यक्तमेव च ।
इंद्रियाणि दशैकं च पंच चेन्द्रियगोचराः ॥ ५ ॥
इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं संघातश्चेतना धृतिः ।
एतत्क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम् ॥ ६ ॥

पंचमहाभूत, अहंकार, बुद्धि याने महतत्त्व और अव्यक्त याने सूक्ष्मरूप प्रकृति ये क्षेत्रके उत्पत्तिकारक द्रव्य हैं अब विकार याने कार्य कहते हैं दश और एक ऐसे ग्यारह इंद्रियां हैं जैसे कि कान, त्वचा, नेत्र, जीभ और नासिका ये पांच ज्ञानइंद्रियां; वाणी, हाथ, पांय, गुदा और लिंग ये पांच कर्म इंद्रियां, एक मन ऐसे ग्यारह इंद्रियां और शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध ये पांच इंद्रियोंके विषय हैं ये सोलह विकार हैं इच्छा, द्वेष, सुख दुःख संघात याने सविकार भूत समूह चेतना जो ज्ञानशक्ति धृति जो धीरज ऐसे संक्षेपसे विकारसहित यह क्षेत्र कहा ॥ ५ ॥ ६ ॥

अमानित्वमदंभित्वमहिंसा क्षांतिरार्जवम् ।
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः ॥७॥

अब क्षेत्रकार्योंमें आत्मज्ञानसाधनके वास्ते ग्रहण करनेके गुण कहते हैं जैसे-कि, श्रेष्ठ जनोंमें मानका न चाहना लोक दिखानेको धर्म, कर्म रूप दंभ न करना परपीडारूप हिंसाका न करना अपनेसे बलहीनके अपराध सहनरूप क्षमा रखना, सबसे सरल स्वभाव रहना, मन, वचन, कर्म करके गुरुकी सेवा करना मृत्तिका जलादिसे बाहर और शुद्ध चित्तसे ईश्वरस्मरणरूप अंतर ऐसा शौच करना आत्मज्ञानमें स्थिर रहना मनको सर्वत्रसे निवारण करके ईश्वरमें लगाना ॥ ७ ॥

इंद्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च ।
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ॥ ८ ॥

इंद्रियविषयोंमें गुणबुद्धि न करना और देहमें और देहसंबंधी पदार्थोंमें अहंबुद्धि न करना, जन्म मृत्यु वृद्धावस्था अनेक रोग ऐसे शरीरमें इन दुःखरूप दोषोंका विचारना ॥ ८ ॥

असक्तिरनभिष्वंगः पुत्रदारगृहादिषु ।
नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥ ९ ॥

आत्मा विना अन्यत्र आसक्तिरहित पुत्र स्त्री और घर इत्यादिकोंमें अति मिलाप न रखना और इष्ट और अनिष्ट वस्तुकी प्राप्तिमें निरंतर समचित्त रहना ॥ ९ ॥

मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी ।
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ॥ १० ॥

मुझमें अनन्ययोग करके अखंड भक्ति एकांत रहनेमें प्रीति जनसभामें अप्रीति ॥ १० ॥

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम्।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा ॥११॥

आत्मसंबंधी ज्ञानकी नित्यता तत्त्वज्ञानके प्रयोजनका विचारना ऐसे यह ज्ञान कहा जो इससे अन्यथा है सो अज्ञान है११

ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वाऽमृतमश्नुते।
अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते ॥ १२ ॥

जो जाननेयोग्य है सो कहता हूँ जिसको जानके मोक्षको पाता है वह ऐसा है कि, अनादि याने जन्मरहित है मत्पर याने उससे श्रेष्ठ मैं ही हूँ वह केवल मेरे स्वाधीन है ब्रह्म याने प्रकृतिमुक्त शुद्ध चैतन्य जीवात्मा है वह आत्मा न सत् न असत् कहनेमें आता है याने कार्य कारण दोनों अवस्थाओं करके रहित है १२॥

सर्वतः पाणिपादं तत् सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥ १३ ॥

वह जीवात्मा सब ओरसे हाथ पांववला है सर्व ओरसे नेत्र मस्तक और मुखवाला है सब ओरसे कानवाला है लोकमें वस्तुमात्रमें व्यापक होके रहता है यह स्वरूप मुक्तजीवका कहा। मुक्तदशामें जीवकी समता परमात्माके सरीखी है सो यहां गीतामें भी कहेंगे " इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः " सूत्र भी है "भोगमात्रसाम्यलिंगाच्च" और "तथा विद्वान् पुण्यपापे विधूय निरंजनः परमं साम्यमुपैति" ऐसे जो परमात्माकी समता कही है तो परमात्मासरीखा स्वरूप होनेमें क्या शंका है ॥ १३ ॥

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्।
असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च ॥ १४ ॥

सर्व इंद्रियोंकी वृत्तियों करके भी विषयोंको जाननेमें समर्थ है

और आप स्वभावसे सब इंद्रियोंकरके रहित भी हैं याने इंद्रियोंकी वृत्ति विना भी विषयोंको जाननेमें समर्थ हैं आप स्वयं देवादिशरीरोंमें आसक्त नहीं हैं और सब देवादिशरीरोंका धारण करनेवाला है सत्त्वादिगुणरहित और गुणोंका भोगनेवाला है ॥१४॥

बहिरंतश्च भूतानामचरं चरमेव च ।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चांतिके च तत् ॥१५॥

वह आत्मा मुक्तावस्थामें पृथिव्यादि भूतोंके बाहर और वृद्धावस्थामें भीतर रहता है स्वयं आप अचर है और देहसंयोगसे चर होता है। सूक्ष्म है इससे जानने योग्य नहीं है वह अज्ञानियोंको दूर है और ज्ञानियोंको समीप है ॥ १५ ॥

अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम् ।
भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च ॥१६॥

वह पृथिव्यादि भूतविकार देवादि शरीरोंमें एकरस रहता है और अज्ञानियोंको देवादिशरीरोंमें देवादिशरीरोंके सदृश दीखता है कि यह देव यह मनुष्य पशु इत्यादिक विभक्तसरीखा स्थित दीखता है और सबभूतोंका पोषक है और अन्नादिक भूतोंकां भक्ष है देहरूपसे आहार करनेवाला है और उसी अन्नादि विकारसे उत्पत्तिकर्ता भी है ऐसे जानने योग्य है ॥ १६ ॥

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते ।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य धिष्ठितम् ॥१७॥

वह सूर्यादिक ज्योतियोंका भी प्रकाशक है सूक्ष्मकारणरूप प्रकृतिसे परे याने न्यारा कहता है ज्ञानरूप जाननेयोग्य ज्ञानसे प्राप्त होने योग्य सबके हृदयमें रहता है याने सब देव मनुष्य पशु पक्ष्यादि शरीरोंके हृदयमें रहता है ॥ १७ ॥

इति क्षेत्रं तथा ज्ञानं ज्ञेयं चोक्तं समासतः।
मद्भक्त एतद्विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते ॥ १८ ॥

ऐसे 'महाभूतान्यहंकारः' यहांसे लेके, 'संघातश्चेतना धृतिः' यहां पर्यंत क्षेत्र कहा तथा " अमानित्वं " यहांसे लेके "तत्त्वज्ञानार्थदर्शनं" यहांपर्यंत ज्ञान कहा और "अनादिमत्परं" यहांसे लेके "हृदि सर्वस्य धिष्ठितं" यहांपर्यंत ज्ञेय याने जानने योग्य आत्मस्वरूप यहं संक्षेपसे कहा इतनोंको जानके मेरा भक्त होके मुझसरीखे स्वरूपको प्राप्त होता है ॥ १८ ॥

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि।
विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसंभवान् ॥१९॥

प्रकृतिको और पुरुषको याने जीवको इन दोनोंको भी अनादि याने सनातन जानो जो बंधनकारक इच्छा द्वेष सुख दुःखादिक विकार इनको और मोक्षकारक अमानित्व अदंभित्व गुण इनको निश्चयपूर्वक प्रकृतिसंभव जानो अर्थात् इच्छादिविकारयुक्त प्रकृति पुरुषको बंधनकारक और अमानित्वगुणयुक्त मोक्षदायक होती है ॥ १९ ॥

कार्यकारणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते।
पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते ॥ २० ॥

अब एकसंग रहे हुए प्रकृतिपुरुषोंके कार्यभेद कहते हैं जैसे कि, जो प्रकृतिपरिणाम देहकारण मनसहित इंद्रियां इनका व्यापार करानेमें कारण प्रकृति कही है सुखदुःखोंके भोक्तापनेमें कारण पुरुष कहा है याने भोगसाधनकर्मकी आश्रय प्रकृति परिणाम और पुरुषयुक्त देह तथा सुखादिभोक्तृत्व आश्रय पुरुष है ॥२०॥

पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुंक्ते प्रकृतिजान् गुणान्।
कारणं गुणसंगोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु ॥ २१ ॥

जिसवास्ते कि, यह पुरुष प्रकृतिहीमें रहा हुआ प्रकृतिजन्य गुणोंको भोगता है इसीसे इसका ऊँच नीच योनियोंमें जन्म लेनेमें कारण प्रकृति गुणोंका याने सत्त्वादिगुणोंका संग ही है अर्थात् उन गुणोंकी आसक्तिहीसे ऊंच नीच जन्म होते हैं ॥ २१ ॥

उपद्रष्टाऽनुमन्ता च भर्त्ता भोक्ता महेश्वरः ।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन् पुरुषः परः २२॥

इस देहमें यह पुरुष देखनेवाला है याने चौकसी करनेवाला है और अनुमोदन देनेवाला याने सलाह देनेवाला है और इस देहका पोषनेवाला है और भोगनेवाला है और इसका महेश्वर है जैसे कि, इस देहमें ईश्वर इन्द्रिय विषय इत्यादि हैं उनका भी ईश्वर है ऐसे इस देहसे यह जीव न्यारा भी है परंतु अज्ञानसे केवल यह देह ऐसा कहाता है ॥ २२ ॥

य एवं वेत्ति पुरुषं प्रकृतिं च गुणैः सह ।
सर्वथा वर्त्तमानोऽपि न स भूयोऽभिजायते ॥२३॥

जो ऐसे इस जीवको और गुणोंकरके सहित प्रकृतिको जानता है सो सर्व प्रकारसे संसारमें रहता है तो भी फिर नहीं उत्पन्न होता है ॥ २३ ॥

ध्यानेनात्मनि पश्यंति केचिदात्मानमात्मना ।
अन्ये सांख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे ॥ २४ ॥
अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वाऽन्येभ्य उपासते ।
तेऽपि चातितरंत्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः ॥ २५ ॥

कितनेक पुरुष अपने अंतःकरणमें बुद्धिसे विचार करके इस जीवात्माको जानते हैं और कितनेक सांख्ययोगकरके जानते हैं और कितनेक कर्मयोगकरके याने ईश्वरार्पण कर्म करते करते

जानते हैं और कितनेक दूसरे ऐसे नहीं जानते हुए दूसरोंसे सुनके उपासना करते हैं याने सुनके प्रथमसरीखे उपाय करके जानते हैं और कितनेक केवल श्रद्धायुक्त श्रवण ही करते रहते हैं तो वे भी संसारको तैरते हैं ॥ २४ ॥ २५ ॥

यावत्संजायते किंचित्सत्त्वं स्थावरजंगमम् ।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्तद्विद्धि भरतर्षभ ॥ २६ ॥

हे भरतवंशियोंमें श्रेष्ठ अर्जुन ! जितने कुछ स्थावर और जंगम प्राणी उत्पन्न होते हैं उनको क्षेत्र और क्षेत्रज्ञके संयोगसे याने शरीर और जीवके संयोगसे जानो ॥ २६ ॥

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमीश्वरम् ।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति ॥२७॥

जो कोई सर्व भूतोंमें सम रहे हुए केवल मन इंद्रियादिकोंके ईश्वर इस जीवको इन इंद्रियादिकोंके नाश होते हुए भी इसको नाशरहित देखता है याने जानता है सो ही जानता है ॥२७॥

समं पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम् ।
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम्॥२८॥

सर्व देवादि शरीरोंमें एकसरीखे रहे हुए इस मन इंद्रियादिकोंके ईश्वर जीवात्माको सम देखता हुआ जो कि, बुद्धिपूर्वक अपने आपको नहीं हनता है याने संसारमें नहीं गिराता है उससे वह परम गतिको याने मुक्तिको पाता है ॥ २८ ॥

प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वशः ।
यः पश्यति तथात्मानमकर्त्तारं स पश्यति ॥२९॥

जो सर्व कर्मोंको प्रकृति करके ही याने प्रकृति विकार इंद्रियों करके ही करे हुए जानता है और तैसें ही अपने आपको अकर्त्ता जानता है सो जानता है ॥ २९ ॥

यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति ।
तत एव च विस्तारं ब्रह्म संपद्यते तदा ॥ ३० ॥

जब भूतोंका पृथग्भाव याने देवमनुष्यादिक शरीरोंकी छोटाई बड़ाई मोटाई पतलाई इत्यादि न्यारे न्यारे भावोंको एकस्थ याने एक प्रकृतिहीमें देखता है और उसी प्रकृतिमें पुत्रादि-रूप विस्तारको देखताहै तब शुद्ध स्वरूपको प्राप्त होता है॥१३॥

अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्मायमव्ययः ।
शरीरस्थोऽपि कौंतेय न करोति न लिप्यते ॥३१॥

हे कुंतीपुत्र ! यह जीवात्मा अनादिपनसे अविनाशी है केव-ल शरीरमें रहा हुआ भी निर्गुणपनेसे न कुछ कर्मोंको करता है न उन कर्मफलों करके लिप्त होता है ॥ ३१ ॥

यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते ।
सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते ॥३२॥

जैसे सर्वत्र प्राप्त भया हुआ आकाश सूक्ष्मतासे उन भूतोंके गुणोंकरके लिप्त नहीं होता है तैसे सर्व देवादि शरीरोंमें रहा हुआ जीवात्मा देहगुणोंकरके नहीं लिप्त होता है ॥ ३२ ॥

यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः ।
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत ॥३३॥

हे भारत ! जैसे एक सूर्य इस सर्व लोकोंको प्रकाशता है तैसे यह जीव सर्व शरीरको प्रकाशता है ॥ ३३ ॥

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमन्तरं ज्ञानचक्षुषा ।
भूतप्रकृतिमोक्षं च ये विदुर्यान्ति ते परम् ॥३४॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे प्रकृतिपुरुषविवेकयोगो
नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

जो कोई ज्ञानदृष्टिकरके क्षेत्र और क्षेत्रज्ञका ऐसे अंतरको और भूतप्रकृतिके मोक्षको जानते हैं वे मुझको प्राप्त होते हैं ॥ ३४ ॥

इति श्रीमत्सुकुलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादविरचितायां श्रीमद्भगवद्गीता-
मृततरंगिण्यां त्रयोदशाऽध्यायप्रवाहः ॥ १३ ॥

परं भूयः प्रवक्ष्यामि ज्ञानानां ज्ञानमुत्तमम् ।
यज्ज्ञात्वा मुनयः सर्वे परां सिद्धिमितो गताः ॥ १ ॥

श्रीकृष्ण भगवान् अर्जुनसे कहते हैं-कि सर्व ज्ञानोंमें उत्तम प्रसिद्ध भया हुआ ज्ञान फिर कहता हूं जिसको जानके सर्व मुनिजन यहांसे श्रेष्ठ सिद्धिको याने परमपदको जाते भये ॥ १ ॥

इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः ।
सर्गेऽपि नोपजायंते प्रलये न व्यथंति च ॥ २ ॥

जो कहता हूं इस ज्ञानको प्राप्त होके मेरी सधर्मताको याने मेरे समान रूप वैभवको वे मुनिजन प्राप्त होते हुए वे उत्पत्तिकालमें न उत्पन्न होते हैं और प्रलयमें न दुःखी होते हैं ॥ २ ॥

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम् ।
संभवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत ॥ ३ ॥

हे भारत ! मम महद्ब्रह्म याने मेरी प्रकृति सर्व भूतोंकी योनि याने उत्पत्तिस्थान है मैं उस प्रकृतिमें जीवरूप गर्भको धारण करता हूं तब उससे सर्व भूतोंकी उत्पत्ति होती है ॥ ३ ॥

सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्त्तयः संभवंति याः ।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता ॥ ४ ॥

हे कुंतीपुत्र ! देव मनुष्यादि सर्व योनियोंमें जो देही उत्पन्न

होते हैं उन सबकी महत् ब्रह्म याने प्रकृति कारण है मैं चेतनरूप बीजका देनेवाला पिता हूं ॥ ४ ॥

सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसंभवाः ।
निबध्नंति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम् ॥ ५ ॥

हे महाबाहो ! सत्त्वगुण रजोगुण और तमोगुण ये प्रकृतिसे उत्पन्न गुण इस देहमें अविनाशी जीवको बंधन करते हैं ॥ ५ ॥

तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम् ।
सुखसंगेन बध्नाति ज्ञानसंगेन चानघ ॥ ६ ॥

हे निष्पाप ! उन गुणोंमें सत्त्वगुण निर्मलतासे प्रकाशक याने शुभाशुभ कर्मोंका दिखानेवाला रोगरहित है इसीसे यह सुखकी आसक्तिसे और ज्ञानके संग करके बांधता है याने ज्ञानसुखसे शुभकर्म शुभकर्मसे स्वर्गादि फिर उत्तम कुलमें जन्म फिर ज्ञानसुख ऐसे बांधता है ॥ ६ ॥

रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासंगसमुद्भवम् ।
तन्निबध्नाति कौंतेय कर्मसंगेन देहिनम् ॥ ७ ॥

हे कुंतीपुत्र ! तृष्णा और स्त्री धनादिमें आसक्तिका करनेवाला रजोगुण विषयादिकमें प्रीति उपजानेवाला जानो वह जीवको कर्मसंगसे बांधता है जैसे प्रीत्यात्मक कर्मसे उन कर्मसंगियोंमें जन्म फिर कर्म फिर जन्म ऐसे ॥ ७ ॥

तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम् ।
प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबध्नाति भारत ॥ ८ ॥

हे भारत ! सर्वदेहधारी जीवोंको मोहनेवाला तमोगुण अज्ञानका कारण जानो वह प्रमाद आलस और निद्राकरके बंधन करता है ॥ ८ ॥

सत्त्वं सुखे संजयति रजः कर्मणि भारत ।

ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे संजयत्युत ॥ ९ ॥

हे भारत ! सत्त्वगुण मनुष्यको सुखमें लगाता है रजोगुण कर्ममें तमोगुण ज्ञानको ढकके फिर प्रमादमें लगाता है ॥ ९ ॥

रजस्तमश्चाभिभूय सत्त्वं भवति भारत ।
रजः सत्त्वं तमश्चैव तमः सत्त्वं रजस्तथा ॥१०॥

हे भारत ! यद्यपि ये गुण प्रकृतिके हैं तो भी विपरीतताका कारण यह कि, रजोगुण और तमोगुणको जीतके सत्त्वगुण प्रबल होता है और रजोगुण सत्त्वगुणको जीतके तमोगुण प्रबल होता है तैसा ही तमोगुण सत्त्वगुणको जीतके रजोगुण प्रबल होता है यहां कारण प्राचीनकर्म और नित्य आहारादिक है॥१०॥

सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन् प्रकाश उपजायते ।
ज्ञानं यदा तदा विद्याद्विवृद्धं सत्त्वमित्युत ॥ ११ ॥
लोभः प्रवृत्तिरारंभः कर्मणामशमः स्पृहा ।
रजस्येतानि जायंते विवृद्धे भरतर्षभ ॥ १२ ॥

हे भरतवंशियोंमें श्रेष्ठ ! इस देहमें जब सर्व नेत्रादि द्वारोंमें प्रकाश याने वस्तुका यथार्थ निश्चय सोई ज्ञान उत्पन्न हो तब सत्त्वगुण बढा है ऐसा जानना और रजोगुणके बढनेसे लोभ जो धनादिक खरचे विना और मिलनेकी इच्छा प्रवृत्ति याने प्रयोजन विना चंचलता कर्मोंका आरंभ इंद्रियलोलुपता विषयेच्छा इतने उत्पन्न होते हैं ॥ ११ ॥ १२ ॥

अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोह एव च ।
तमस्येतानि जायंते विवृद्धे कुरुनंदन ॥ १३ ॥

हे कुरुनंदन ! तमोगुणके बढनेसे विवेककी हानि निरुद्यमता और न करनेका करना और विपरीतज्ञान इतने ये होते हैं ॥१३॥

यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याति देहभृत्।
तदोत्तमविदां लोकानमलान्प्रतिपद्यते ॥ १४ ॥

जब सत्त्वगुणके बढ़ते समयमें देहधारी प्रलय याने मृत्युको प्राप्त हो तब आत्मज्ञानियोंके शुद्ध लोकोंको" प्राप्त होता है अर्थात् आत्मज्ञानियोंके कुलमें आत्मज्ञान जाननेयोग्य शरीरोंको प्राप्त होता है " लोकस्तु भुवने जने " इस प्रमाणसे यहाँ लोकशब्द जनवाची है॥ १४॥

रजसि प्रलयं गत्वा कर्मसंगिषु जायते ।
तथा प्रलीनस्तमसि मूढयोनिषु जायते ॥ १५ ॥

रजोगुणकी वृद्धिमें मृत्युको प्राप्त होके कर्मसंगियोंमें जन्म लेता है याने उनमें जन्म लेके सकाम कर्म करके स्वर्गको जाता है फिर उनहीमें जन्म लेके फिर कर्म करके स्वर्गमें ऐसे ही फिरता रहता है तथा तमोगुणमें मरा हुआ नीच योनिमें जन्मता है वहाँ भी वैसा ही क्रम जानना ॥ १५ ॥

कर्मणः सुकृतस्याहुः सात्त्विकं निर्मलं फलम् ।
रजसस्तु फलं दुःखमज्ञानं तमसः फलम् ॥ १६ ॥

सुकृत कर्मका फल सात्त्विक निर्मल कहते हैं याने उसके करते २ किसी जन्ममें मुक्त होता है और रजोगुणी कर्मका फल दुःख याने उस सकामसे स्वर्ग स्वर्गसे मृत्युलोक फिर स्वर्ग ऐसे संसारदुःख ही है तमोगुणी कर्मका फल अज्ञान है याने उससे नरक ही है॥१६॥

सत्त्वात्संजायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च ।
प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च ॥ १७ ॥

सात्त्विक कर्मसे ज्ञान होता है और राजससे लोभ ही होता है तामससे प्रमाद और मोह होते हैं और अज्ञान भी होता है॥१७॥

ऊर्ध्वं गच्छंति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः ।
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छंति तामसाः ॥१८॥

सात्त्विककर्म करनेवाले मुक्तिको पाते हैं राजस कर्मवाले मध्यमें (स्वर्ग मृत्यु लोकमें ही) रहते हैं जैसे पुण्यसे स्वर्ग, पुण्य क्षीण होनेसे मनुष्यलोक फिर पुण्यसे स्वर्ग ऐसे वारंवार मध्यमेंही रहते हैं तमोगुणी नीचगुणकी वृत्तिमें वर्त्तनेवाले तामसी नीचजाति पशु कीटादिकमें जंन्मते रहते हैं ॥ १८ ॥

नान्यं गुणेभ्यः कर्त्तारं यदा द्रष्टाऽनुपश्यति ।
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति ॥१९॥

जब विवेकी पुरुष सत्त्वादिगुणोंके विना और किसीको कर्त्ता नहीं जानता है और अपने आपको गुणोंसे न्यारा जानता है तब सो मेरी साम्यताको प्राप्त होता है ॥ १९ ॥

गुणानेताननतीत्य त्रीन्देही देहसमुद्भवान् ।
जंन्ममृत्युजरादुःखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते ॥ २० ॥

यह देहधारी जीव देहमें उत्पन्न हुए इन सत्त्वादि गुणोंको उल्लंघन करके जन्म मृत्यु और जरापनके दुःखोंकरके छूटा हुआ मोक्षको पाता है गुणयुक्त नहीं ॥ २० ॥

अर्जुन उवाच ।

कैर्लिङ्गैस्त्रीन्गुणानेताननतीतो भवति प्रभो ।
किमाचारः कथं चैतांस्त्रीन्गुणाननतिवर्त्तते ॥ २१ ॥

ऐसे सुनके अर्जुन पूंछते हैं-कि, हे प्रभो ! कौनसे चिह्नोंकरके इन तीनें गुणोंको उल्लंघन किया हुआ होता है वह कैसे आचरणवाला होता है और इन तीनों गुणोंको कैसे उल्लंघन कर सकता है ॥ २१ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

प्रकाशं च प्रवृत्तिं च मोहमेव च पांडव ।
न द्वेष्टि संप्रवृत्तानि न निवृत्तानि कांक्षति ॥ २२ ॥
उदासीनवदासीनो यो गुणैर्न विचाल्यते ।
गुणा वर्त्तंत इत्येवं योऽवतिष्ठति नेङ्गते ॥ २३ ॥
समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः ।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिंदात्मसंस्तुतिः ॥२४॥
मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः ।
सर्वारंभपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते ॥ २५ ॥

अर्जुनका प्रश्न सुनके भगवान् कहते हैं-कि, हे पांडुपुत्र! जो पुरुष प्रकाश सत्त्वगुणके कार्य आरोग्यादिक और रजोगुणका कार्य प्रवृत्ति और तमोगुणका कार्य मोह ये प्रवृत्त हों तो इनका त्याग नहीं चाहता है तथा निवृत्त हुए इनकी प्रवृत्ति नहीं चाहता है। उदासीन सरीखा स्थित हुआ गुणों करके नहीं चलायमान होता है। आप ही अपने २ कार्योंमें गुण वर्तमान हैं ऐसा विचार कर जो स्थिर है चलायमान नहीं होता है, सुखदुःखमें सम स्वस्थ और ठीकरी कंकर पत्थर और सोना जिसके सम हैं जिसको प्रिय अप्रिय तुल्य हैं ऐसा जो धीर अपनी निंदा स्तुति समान जानता है, मान और अपमान तुल्य, मित्र शत्रुपक्षमें तुल्य मेरे सेवनादि विना सर्व आरंभोंका त्यागी सो गुणातीत कहाता है ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते ।
स गुणान्समतीत्यैतान्ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ २६ ॥

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाऽहममृतस्याव्ययस्य च ।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकांतिकस्य च ॥२७॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे गुणत्रयविभागयोगो नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

जिसवास्ते कि, मरणधर्मरहित और इसीसे अविनाशी जो ब्रह्म याने मुक्तजीव उसका और सनातन धर्म जो भक्तियोग उसका और मुख्य सुख जो स्वस्वरूपकी प्राप्ति उसका मैं आधार हूं इसीसे जो अखंडित भक्तियोगकरके मुझको भजता है सो इन गुणोंको उल्लंघन करके मेरी समताको प्राप्त होता है ॥ २६ ॥ २७ ॥

इति श्रीमत्सुकुलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादविरचितायां श्रीमद्भगवद्गीतामृततरंगिण्यां चतुर्दशाध्यायप्रवाहः ॥ १४ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम् ।
छंदांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ॥१॥

तेरहवें अध्यायमें क्षेत्ररूप प्रकृति और क्षेत्रज्ञ पुरुष याने जीव इनका स्वरूप कहा। शुद्ध जीवात्माको भी प्रकृतिसंबंधी गुणोंके प्रवाहनिमित्त देवादिक आकारसे परिणामको प्राप्त हुई जो प्रकृति उसका सम्बंध अनादि कहा. चौदहवें अध्यायमें कहा कि, इस जीवको जो कार्य और कारण अवस्थाओंमें यह गुणसंगप्रवाहमूलप्रकृतिसंबंध सो भगवान्हीने किया है ऐसे कहके विस्तारसहित गुणसंगप्रकारको कहके कहा कि, गुणसंगनिवृत्तिपूर्वक स्वस्वरूपकी प्राप्ति भगवद्भक्तिमूलक ही है. अब पंद्रहवें अध्यायमें

जो भजने योग्य भगवान् अपने कल्याण गुणादिकोंकरके बद्ध मुक्त दोनों प्रकारके जीवोंसे विलक्षण (न्यारे) उनको पुरुषोत्तमत्व कहनेको जो यह बन्धन आकारसे विस्तरित प्रकृतिका परिणाम विशेष संसार उसको पीपरवृक्षरूप कल्पित करके श्रीकृष्ण भगवान् कहने लगे-कि, जिसके वेद पैत्ते अर्थात् जैसे पत्तोंकरके वृक्ष बढ़ता है वैसे ही यह संसाररूप वृक्ष वेदोक्त कर्म करके बढ़ता है। इससे वेद पत्तारूप हैं, ऊर्ध्वमूल याने सत्यलोकमें ब्रह्मा जिसका मूल है अधःशाख याने सत्यलोकसे नीचे जो देव मनुष्य कीट पतंगपर्यंत शरीर ये उसकी शाखा हैं ऐसा अव्यय याने सम्यक् ज्ञानप्राप्ति होनेसे प्रथम अज्ञानदशामें प्रवाहरूप करके छेदनेके अयोग्य इसीसे अज्ञानकरके अविनाशी है ऐसा इस संसारको अश्वत्थ याने पीपरवृक्षरूप श्रुति कहती है उसको जो जानता है सो वेदका जाननेवाला है अर्थात् वेद इस संसारके छेदनेका उपाय कहता है तो जो इसको जानेगा तो छेदनेका भी उपाय जानेगा इससे वह वेद जाननेवाला है ॥ १ ॥

अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखा गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः ॥ अधश्च मूलान्यनुसंततानि कर्मानुबंधीनि मनुष्यलोके ॥ २ ॥

अब उस संसारवृक्षकी और भी विलक्षणता कहते हैं-जैसे कि सत्त्वादिगुणोंकरके बढ़ी हुई और शब्दादिक विषय जिनके प्रवाल याने कोंपर याने जो नये एक दिनके निकले हुए पत्ते वैसे पत्ते जिनके विषय हैं ऐसी उस वृक्षकी शाखें नीचे मनुष्यलोकमें और ऊपर देव गंधर्वादिलोकोंमें फैल रही हैं अर्थात् नीचकर्मसे नीचे मनुष्योंसे भी नीच पश्वादिशरीर ऊपर उत्तमकर्मसे उत्तम देवादिशरीररूप शाखें फैल रही हैं। नीचे मनुष्यलोकमें भी उसकी कर्मानुसारी

मूल फैली रही हैं अर्थात् मनुष्यलोकमें जो ऊंच नीच कर्म वही मूलरूप हैं। ऊंच नीच पदवी कर्म विना नहीं तथा कर्म मनुष्यशरीर विना नहीं होता है ॥ २ ॥

न रूपमस्येह तथोपलभ्यते नांतो न चादिर्न च संप्रतिष्ठा ॥ अश्वत्थमेनं सुविरूढमूलमसंगशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा ॥ ३ ॥ ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं यस्मिन्गता न निवर्त्तंति भूयः ॥ तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी॥४॥

इस संसारवृक्षका इस लोकमें जैसा कहा है वैसा रूप अज्ञानीजनोंके नहीं जाननेमें आता है न उसका अंत और न आदि और न स्थिति जाननेमें आती है ऐसे दृढमूल इस पीपर वृक्षको अतिदृढ वैराग्यरूप शस्त्रसे छेदन करके फिर जिससे यह प्राचीन प्रवृत्ति याने गुणमय भोगरूप संसारप्रवाह विस्तेरित है उसी आदि पुरुषके शरणागत होके उस पदको ढूंढना कि, जिसमें गये हुए मुनिजन फिर इस संसारमें नहीं आते हैं॥३॥४॥

निर्मानमोहा जितसंगदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः ॥ द्वंद्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञैर्गच्छंत्यमूढाः पदमव्ययं तत् ॥ ५ ॥

जो मानमोहकरके रहित हैं और जिसने संगदोषोंको जीता है तथा जो अध्यात्मशास्त्रमेंही नित्य वर्तमान हैं और जिनकी कामना निवृत्त हो जो सुखदुःखसंज्ञक द्वंद्वोंसे छूटे हुए हैं वे ज्ञानीजन उस अविनाशी पदको प्राप्त होते हैं याने स्वस्वरूपको प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥

न तद्भासयते सूर्यो न शशांको न पावकः ।
यद्गत्वा न निवर्त्तंते तद्धाम परमं मम ॥ ६ ॥

सूर्य उस आत्माको नहीं प्रकाश सकता है। न चंद्रमा और न अग्नि प्रकाश सकता है जिस रूपको याने शुद्ध आत्मस्वरूपको प्राप्त होके नहीं संसारमें आते हैं वह मेरा परम धाम है याने मेरे रहनेका मुख्य स्थान मेरा शरीर है इस जगह "यस्यात्मा शरीरम्" यह श्रुति भी प्रमाण है ॥ ६ ॥

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ।
मनः षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ॥७॥

जो यह ऐसा वर्णन किया सो यह मेरा ही सनातन अंश है याने जैसे प्रकृति और अनंतजीव मेरे ही हैं उनमें यह एक मेरा ही है मेरी ही विभूति है सो यह इस जीवलोकमें जीवभूत याने अति संकुचितज्ञान हुआ पांच ज्ञानेंद्रिय और एक मन ऐसे मनसहित छः प्रकृतिविकार इस देहमें रही हुई इंद्रियोंको खैंचता फिरता है ॥ ७ ॥

शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः ।
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गंधानिवाशयात् ॥ ८ ॥

जब यह जीव शरीरको प्राप्त होता है और जब वर्त्तमानशरीरसे जाता है तब यह मन इंद्रियोंका ईश्वर अपनी सेनारूप इन इंद्रियोंको जैसे ले जाता है पवन पुष्पादिक गंधस्थानसे गंधको वैसे ग्रहण करके ले जाता है ॥ ८ ॥

श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च ।
अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते ॥ ९ ॥

यह जीवात्मा श्रोत्र इंद्रिय याने कान नेत्र और स्पर्शन जो

त्वचा इंद्रिय रसना जो जिह्वा और घ्राण जो नासिका और मन इनको आश्रयकरके विषयोंको सेवता है ॥ ९ ॥

उत्क्रामंतं स्थितं वाऽपि भुंजानं वा गुणान्वितम् ।
विमूढा नानुपश्यंति पश्यंति ज्ञानचक्षुषः ॥ १० ॥

यह जो गुणोंकरके युक्त आत्मा उसको देह त्यागनेको अथवा देहमें रहते हुएको अथवा विषय भोगते हुएको भी अज्ञानी जन नहीं देखते जिनके ज्ञानदृष्टि है वे देखते हैं॥१०॥

यतंतो योगिनश्चैनं पश्यंत्यात्मन्यवस्थितम् ।
यतंतोऽप्यकृतात्मानो नैनं पश्यंत्यचेतसः ॥११॥

योगिजन प्रयत्न करते करते अपने अंतःकरणमें रहे हुए इस आत्माको देखते हैं और जो विषयासक्त हैं वे जो शास्त्रद्वारा उपाय करें तो भी वे अज्ञानी इस आत्माको नहीं देखे सकते ॥ ११ ॥

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम् ।
यच्चंद्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम् ॥१२॥

जो सूर्यमें रहा हुआ तेज सर्व जगत्को प्रकाशित कर रहा है और जो तेज चंद्रमामें और जो अग्निमें है उस तेजको मेरा ही तेज जानो ॥ १२ ॥

गामाविश्य च भूतानि धारयाम्यहमोजसा ।
पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः ॥१३॥

मैं पृथ्वीमें प्रविष्ट होके अपने अचिंत्य सामर्थ्यकरके सब भूतोंको धारण करता हूं और अमृतमय चंद्र होके सर्व औषधियोंको पालता हूं ॥ १३ ॥

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः ।
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम् ॥ १४ ॥

मैं जठराग्नि होके सर्व प्राणियोंके देहमें रहा हुआ प्राण और अपान संयुक्त भक्ष्य,भोज्य,लेह्य, पेय ऐसे चार प्रकारके अन्नको पचाता हूं ॥ १४ ॥

सर्वस्य चाहं हृदि संनिविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञान-
मपोहनं च ॥ वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदांत-
कृद्वेदविदेव चाहम् ॥ १५ ॥

मैं सर्वके हृदयमें प्रविष्ट हूं और सबके स्मृति ज्ञान और विचार मुझसे होते हैं और सर्व वेदोंकरके ही जानने योग्य हूं और वेदांतका कर्ता और वेदका जाननेवाला मैं ही हूं ॥ १५ ॥

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च ।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ॥ १६ ॥
उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः ॥ १७ ॥

इस लोकमें क्षर और अक्षर ऐसे ये दो प्रकारके पुरुष हैं उनमें सर्व शरीरधारी भूत प्राणी क्षर और मुक्त जीव अक्षर कहाता है इन दोनोंसे उत्तम पुरुष और है जो परमात्मा ऐसे कहाता है जो अविनाशी ईश्वर त्रिलोकीमें प्रवेश करके सर्व त्रिलोकीका भरण पोषण करता है ॥ १६ ॥ १७ ॥

यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः ।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ॥ १८ ॥

जिसवास्ते कि मैं बद्धावस्थ जीवसे श्रेष्ठ और मुक्तसे भी उत्तम हूं इससे स्मृति और वेदमें भी पुरुषोत्तम प्रसिद्ध हूं ॥ १८ ॥

यो मामेवमसंमूढो जानाति पुरुषोत्तमम् ।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत ॥ १९ ॥

हे भारत! जो सम्यक्ज्ञानी पुरुष ऐसे मुझको पुरुषोत्तम जानता है सो सर्वज्ञ है इसीसे वह सर्वभाव याने माता पिता सुहृद् धनादिक मुझको जानके मुझकोही भजता है॥ १९॥

इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयाऽनघ।
एतद्बुद्ध्वा बुद्धिमान्स्यात्कृतकृत्यश्च भारत॥२०॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योग-
शास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे पुराणपुरुषोत्तम-
योगो नाम पञ्चदशोऽध्यायः॥ १५॥

हे निष्पाप! ऐसे यह अतिगोप्य शास्त्र मैंने कहा हे भारत! इसको जानके बुद्धिमान् और कृतकृत्य होता है॥ २०॥

इति श्रीमत्सुकुलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादविरचितायां श्रीमद्भगवद्गीतामृत-
तरंगिण्यां पञ्चदशाऽध्यायप्रवाहः॥ १५॥

ऐसे तेरहवें अध्यायसे पंद्रहवेंकी समाप्तिपर्यन्त क्षेत्र और क्षेत्रज्ञका विवेक और गुणत्रयका विभाग और क्षराक्षर याने बद्ध मुक्त जीवोंका स्वरूप तथा परमात्माका पुरुषोत्तमत्व और सामर्थ्य कह चुके। अब सोलहवें अध्यायमें जीवकी शास्त्रवश्यता और दैवासुरसम्पत्तिविभाग कहेंगे॥

श्रीभगवानुवाच।

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्॥ १॥
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शांतिरपैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम्॥ २॥

तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता ।
भवंति संपदं दैवीमभिजातस्य भारत ॥ ३ ॥

श्रीकृष्ण भगवान् अर्जुनसे कहते हैं–कि, हे भारत ! दैवी संपदाको प्राप्त हुए मनुष्यको निर्भय रहना अंतःकरणकी शुद्धि, प्रकृतिसे भिन्न आत्मा है ऐसी निष्ठा सुपात्रको कुछ देना और मनको विषयोंसे निवृत्त करना और निष्कामतासे भगवानके पूजनरूप पंचमहायज्ञोंका करना वेदमन्त्रादिकोंका जप एकादशी व्रतादिरूप तप सर्वसे सरल रहना जीवमात्रको पीडा न देना हित और यथार्थ भाषण क्रोधका न करना उदारता शांति याने इंद्रियोंको वश करना चुगली न करना भूतप्राणिमात्रपर दया परस्त्री धनादि पर इच्छा न करना अक्रूरता लज्जा व्यर्थ कामको न करना तेज क्षमा याने सहनशीलता धीरज पवित्रता द्रोहको न करना मान प्राप्तिके वास्ते अति मानका न करना ये २६ गुण होते हैं ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥

दंभो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च ।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ संपदमासुरीम् ॥४॥

हे पृथापुत्र ! आसुरी संपदाको प्राप्त हुए मनुष्यके दंभ दर्प और अभिमान क्रोध और कटु भाषण और अज्ञान ये लक्षण होते हैं ॥ ४ ॥

दैवी संपद्विमोक्षाय निबंधायासुरी मता ।
मा शुचः संपदं दैवीमभिजातोऽसि पांडव ॥ ५ ॥

हे पांडुपुत्र ! दैवी संपदा मोक्षके वास्ते है आसुरी बन्धनके वास्ते निश्चय की गयी है तुम दैवी संपदाको प्राप्त हुए हो मत शोचो ॥ ५ ॥

द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन्दैव आसुर एव च ।
दैवो विस्तरशः प्रोक्त आसुरं पार्थ मे शृणु ॥ ६ ॥

हे पार्थ ! इस लोकमें दो प्रकारके प्राणी हैं एक दैव और दूसरे आसुर, दैव विस्तारसे कहा आसुरको सुनो ॥ ६ ॥

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः ।
न शौचं नाऽपि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते ॥७॥

असुर स्वभाववाले मनुष्य संसार साधन और मोक्ष साधन भी नहीं जानते हैं उनमें न शुचिता और न शास्त्रीय आचरण हैं उनमें न सत्य भी रहता है ॥ ७ ॥

असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम् ।
अपरस्परसम्भूतं किमन्यत्कामहैतुकम् ॥ ८ ॥

वे असुरप्रकृति मनुष्य इस जगत्को कोई तो असत्य याने मिथ्या और भ्रम कहते हैं कोई अप्रतिष्ठ याने इसका कोई आधार नहीं ऐसा कहते हैं कोई अनीश्वर कहते हैं स्त्रीपुरुषके परस्पर संयोगसे हुए विना और जगत् क्या है केवल कामहीके निमित्तसे याने स्त्रीपुरुषके संयोगसेही होता है ऐसा कहते हैं ॥ ८ ॥

एतां दृष्टिमवष्टभ्य नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः ।
प्रभवंत्युग्रकर्माणः क्षयाय जगतोऽहिताः ॥ ९ ॥

वे अज्ञानी जन खानपानादिक अल्पपदार्थमें बुद्धिवाले ऐसी समझको ग्रहण करके उग्र कर्म करनेवाले याने परस्त्री धन पुत्रादिकोंके हरण करनेवाले सर्वके अहित जगत्के नाशके वास्ते प्रवृत्त होते हैं ॥ ९ ॥

काममाश्रित्य दुष्पूरं दंभमानमदान्विताः ।
मोहाद्गृहीत्वाऽसद्ग्राहान्प्रवर्त्ततेऽशुचिव्रताः ॥१०॥

जो दुःखसे भी न पूरी होय ऐसी कामनाके आश्रित होके दंभ मान और मदयुक्त भये हुए मोहसे असद्ग्राहोंको ग्रहण करके याने

मारण मोहन वशीकरणके उपाय करनेमें भ्रष्ट आचरण स्वीकार करके अपवित्र व्रत भूतादि सेवनेवाले बनकर उनही मारणादिक कामोंमें प्रवृत्त होते हैं ॥ १० ॥

चिन्तामपरिमेयां च प्रलयान्तामुपाश्रिताः ।
कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः ॥ ११ ॥

अपार और मरणांत चिंताको प्राप्त हो कामोपभोगमें तत्पर इतनाँ ही सुख है ऐसा निश्चय किये हुए ॥ ११ ॥

आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः ।
ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसंचयान् ॥ १२ ॥

सैकडों आशाकी फांसियोंकरके बँधे हुए काम और क्रोधके स्वाधीन हुए कामभोगके वास्ते अन्यायकरके द्रव्यसंचयका उपाय करते रहते हैं ॥ १२ ॥

इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम् ।
इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम् ॥ १३ ॥

मैंने आज यह पाया इस मनोरथको पाऊँगा मेरे यह धन है फिर यह भी होगा ॥ १३ ॥

असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि ।
ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान्सुखी ॥ १४ ॥

मैंने यह वैरी मारा और औरोंको भी मारूंगा मैं ईश्वर हूं मैं भोगी हूं मैं सिद्ध हूं मैं बलवान् हूं मैं सुखी हूं ॥ १४ ॥

आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिताः ॥ १५ ॥

मैं योग्य हूं उत्तम कुलमें जन्मा हूं मेरे समान और कौन है

यज्ञ करूंगा दान दूंगा आनंद करूंगा ऐसे अज्ञानमें मोहे रहते हैं ॥ १५ ॥

अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः ।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतंति नरकेऽशुचौ ॥ १६ ॥

अनेक जगह चित्त लगनेसे भ्रमिष्ठ मोहके जालमें फंसे हुए जो कामभोगमें आसक्त वे अपवित्र नरकमें पडते हैं ॥ १६ ॥

आत्मसंभाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः ।
यजंते नामयज्ञैस्ते दंभेनाविधिपूर्वकम् ॥ १७ ॥

जो आपको आप ही श्रेष्ठ मान रहे हैं और अनम्र हैं धन मान मदयुक्त हैं वे दंभसे अविधिपूर्वक नाममात्रके यज्ञोंकरके यजन करते हैं ॥ १७ ॥

अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः ।
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषंतोऽभ्यसूयकाः ॥ १८ ॥

अहंकार बल दर्प काम और क्रोधका आश्रय कर रहे हैं ऐसे वे अपने और औरोंके देहोंमें रहे हुए मुझसे द्वेष करते हुए मेरी निंदा करते हैं ॥ १८ ॥

तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान् ।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु ॥ १९ ॥

मैं उन द्वेष करनेवाले क्रूर अशुभ नराधमोंको संसारमें आसुरी ही योनियोंमें वारंवार पटकता हूं ॥ १९ ॥

आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनिजन्मनि ।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यांत्यधमां गतिम् ॥ २० ॥

हे कुंतीपुत्र ! वे मूर्ख जन्मजन्ममें आसुरी योनिको प्राप्त हो मुझको न प्राप्त होके फिर अधमगतिको प्राप्त होते हैं ॥ २० ॥

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥२१॥

काम, क्रोध तथा लोभ यह तीन प्रकारका नरकका द्वार अपना नाशनेवाला है याने संसारमें भ्रमानेवाला है इससे इन तीनोंको त्यागना चाहिये ॥ २१ ॥

एतैर्विमुक्तः कौन्तेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः ।
आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परां गतिम् ॥२२॥

हे कुंतीपुत्र ! इन तीनों नरकद्वारोंसे छूटा हुआ मनुष्य अपने कल्याणका साधन करता है उससे परमपदको प्राप्त होता है ॥ २२ ॥

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्त्तते कामकारतः ।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम् ॥२३॥

जो शास्त्रविधिको त्यागके स्वइच्छाप्रमाण चलता है सो न सिद्धिको पाता है न सुखको न मोक्षको पाता है ॥ २३ ॥

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्त्तुमिहार्हसि ॥२४॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे दैवासुरसंपद्विभागयोगो नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

इससे तुमको कार्याकार्यव्यवस्थामें शास्त्र प्रमाण जानके इस लोकमें शास्त्रविधानोक्त कर्म करना योग्य है ॥ २४ ॥

इति श्रीमत्सुकुलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादविरचितायां श्रीमद्भगवद्गीतामृततरंगिण्यां षोडशाऽध्यायप्रवाहः ॥ १६ ॥

अर्जुन उवाच।

ये शास्त्रविधिमुत्सृज्य यजंते श्रद्धयान्विताः।
तेषां निष्ठा तु का कृष्ण सत्त्वमाहो रजस्तमः॥१॥

सोलहवें अध्यायमें ईश्वरतत्त्वका ज्ञान और ईश्वरप्राप्तिका उपाय इनके मूल कारण वेदही हैं ऐसे कहा और अंतमें कहा कि, शास्त्रविधिहीन कर्म करनेवालेको सुखादिक नहीं है सो सुनके अर्जुन बोले—कि, हे कृष्ण! जो शास्त्रविधिको त्यागके श्रद्धाकरके युक्त यजन करते हैं उनकी क्या निष्ठा है सत्त्वगुण है किंवा रजोगुण तमोगुण है॥ १॥

त्रिविधा भवंति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा।
सात्त्विकी राजसी चैव तामसी चेति तां शृणु॥२॥

अर्जुनका प्रश्न सुनके श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं—कि, सात्त्विकी और राजसी और तामसी ऐसे तीन प्रकारकी निश्चय श्रद्धा होती है सो देहधारियोंकी स्वभावसेही होती है उसको सुनो॥ २॥

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः॥ ३॥

हे भारत! सबकी श्रद्धा अंतःकरणके अनुरूप होती है यह पुरुष श्रद्धामय है जो जिस श्रद्धावाला होता है सो वही होता है जैसे सात्त्विकी श्रद्धावाला सात्त्विक इत्यादि॥ ३॥

यजंते सात्त्विका देवान् यक्षरक्षांसि राजसाः।
प्रेतान् भूतगणांश्चान्ये यजंते तामसा जनाः॥४॥

सात्त्विक पुरुष देवताओंको पूजते हैं, राजसी यक्षराक्षसोंको और अन्य तामसी जन प्रेत भूतगणोंको पूजते हैं॥ ४॥

अशास्त्रविहितं घोरं तप्यंते ये तपो जनाः।
दंभाहंकारसंयुक्ताः कामरागबलान्विताः॥ ५॥
कर्षयंतः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः।
मां चैवांतःशरीरस्थं तान्विद्ध्यासुरनिश्चयान्॥६॥

दंभ और अहंकारसे संयुक्त कामना और विषयानुराग इनकी ही सेनासे युक्त वे मनुष्य अशास्त्रविहित याने जो शास्त्रप्रसिद्ध नहीं ऐसे घोर तपको तपते हैं वे अज्ञानी जन शरीरमें रहेहुए भूतसमूहको और अंदर शरीरमें स्थित मुझको भी दुःख देते हैं उनको आसुर निश्चय याने असुरपनेमें निश्चय जिनका ऐसे उनको जानो॥ ५॥ ६॥

आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः।
यज्ञस्तपस्तथा दानं तेषां भेदमिमं शृणु॥ ७॥

आहार भी सर्वका तीन प्रकारका प्रिय होता है और यज्ञ तथा तप दान ये भी तीन प्रकारके हैं इनका भेद यह सुनो॥ ७॥

आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्द्धनाः।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः॥

जो आहार आयुष्य होशियारी बल आरोग्य सुख और प्रीतिके बढानेवाले हों मधुरादिरसयुक्त स्निग्ध स्थिर याने बहुतकाल रहनेवाले हृदयके वर्द्धक ऐसे आहार सात्त्विक जनोंको प्रिय होते हैं ८

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः।
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः॥ ९॥

अतिकटु जैसे बहुत मिर्चवाला पदार्थ अतिखट्टा अतिलोनवाला बड़ा वगैरह अति गरमागरम अति तीक्ष्ण राई आदि मिश्रित अति रूखे और दाहकारक राजसियोंके प्रिय आहार दुःख शोक और रोगोंके देनेवाले होते हैं॥ ९॥

यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत्।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम् ॥१०॥

जिस भात वगैरेको एक पहर बीता हो वह ठंढा पदार्थ रसविहीन दुर्गंधवाला और बासी और उच्छिष्ट भी ऐसा अपवित्र भोजन तामसियोंको प्रिय होता है ॥ १० ॥

अफलाकांक्षिभिर्यज्ञो विधिदृष्टो य इज्यते।
यष्टव्यमेवेति मनः समाधाय स सात्त्विकः ॥११॥

यज्ञ करना ही योग्य है ऐसे मनको समाधान करके फल-इच्छारहित मनुष्योंने विधिपूर्वक जो यज्ञ किया हो सो यज्ञ सात्त्विक है ॥ ११ ॥

अभिसंधाय तु फलं दम्भार्थमपि चैव यत्।
इज्यते भरतश्रेष्ठ तं यज्ञं विद्धि राजसम् ॥१२॥

हे भरतश्रेष्ठ! जो फलकी इच्छाकरके और दंभके वास्ते भी यज्ञ करे उस यज्ञको राजस जानो ॥ १२ ॥

विधिहीनमसृष्टान्नं मंत्रहीनमदक्षिणम्।
श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते ॥ १३ ॥

जो विधिहीन उचित अन्नहीन मंत्रहीन दक्षिणारहित और श्रद्धारहित यज्ञ हो सो तामस कहा है ॥ १३ ॥

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ॥ १४ ॥

देव ब्राह्मण गुरु और विद्वानोंका पूजन शुचिता सरलता ब्रह्मचर्य और परपीडावर्जन यह शरीरसंबंधी तप कहा है ॥१४॥

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते ॥१५॥

जो वचन उद्वेगकारक न होय और सत्यप्रिय हित होय और वेदपाठ मंत्रजपादिकोंका अभ्यास यह वाणीमय तप कहा है ॥ १५ ॥

मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः ।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते ॥ १६ ॥

मनकी प्रसन्नता सदयपना याने क्रूर न होना, मितभाषण मनको वश करना और अंतःकरणकी शुद्धता यह इतना तप मानस कहाता है ॥ १६ ॥

श्रद्धया परया तप्तं तपस्तत्त्रिविधं नरैः ।
अफलाकांक्षिभिर्युक्तैः सात्त्विकं परिचक्षते ॥ १७॥

फलकी इच्छा न करनेवाले योग्य पुरुष तिनकरके परम श्रद्धाकरके तपाहुआ सो तीनों प्रकारका याने मानस, कायिक, वाचिक तप सात्त्विक कहा है ॥ १७ ॥

सत्कारमानपूजार्थं तपो दंभेन चैव यत् ।
क्रियते तदिह प्रोक्तं राजसं चलमध्रुवम् ॥ १८ ॥

जो तप सत्कार मान और पूजाके वास्ते और दंभकरके भी किया जाता है सो यहां शास्त्रमें राजस चल और नाशमान कहा है ॥ १८ ॥

मूढग्राहेणात्मनो यत्पीडया क्रियते तपः ।
परस्योत्सादनार्थं वा तत्तामसमुदाहृतम् ॥ १९ ॥

जो तप दुराग्रह करके आपनी पीड़ाके निमित्त अथवा दूसरेके बिगाड़के वास्ते किया होय सो तामस कहा है ॥ १९ ॥

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे ।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम् ॥२०॥

जो दान देना ही चाहिये ऐसी बुद्धिकरके कुरुक्षेत्रादि देशमें और ग्रहणादिकालमें जिससे फिर कुछ अपना उपकार न होय

ऐसेको तथा वह पात्र याने तपस्वाध्याय करके रक्षक होय उसको दिया जाय सो दान सात्विक कहा है ॥ २० ॥

यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः।
दीयते च परिक्लिष्टं तद्राजसमुदाहृतम् ॥ २१ ॥

जो प्रत्युपकारके वास्ते अथवा फलके निमित्त करके फिर भी राहुवगैरह ग्रहनिमित्त उग्रदान दिया जाय सो राजस कहा है ॥ २१ ॥

अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते।
असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम् ॥ २२ ॥

जो दान तिरस्कार अवज्ञापूर्वक देशकालविना और कुपात्रोंको दिया जाता है सो दान तामस कहा है ॥ २२ ॥

ओं तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा ॥ २३ ॥

ओं तत् सत् ऐसे तीन प्रकारका वेदका निश्चय जाना गया है "याने ओंशब्दसे कर्मका स्वीकार करना उचित है, तत् शब्दसे तदर्थ याने परमेश्वरार्थ करना उचित है सत्से श्रेष्ठकर्म साधुवृत्तिसे करना ऐसा वेदका निश्चय है" उसी निश्चयकरके युक्त ब्राह्मण याने वेदकर्म करनेवाले तीनों वर्णकर्मस्वीकारार्थ और वेद जो ईश्वरार्थकर्मको प्रतिपादन करते हैं और यज्ञ दान जो सत्कर्म ये मैंने पूर्वकालमें स्थापित किये हैं ॥ २३ ॥

तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपःक्रियाः ॥
प्रवर्त्तंते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम् ॥ २४ ॥

जिससे कि वेदवादी तीनों वर्ण कर्म स्वीकारार्थ हैं इससे ओं ऐसे कहिके याने कर्म स्वीकार करके वेदवादी तीनों वर्णोंकी विधिसे कही हुई यज्ञ दान तपकी क्रियायें निरंतर प्रवर्त होती हैं २४॥

तदित्यनभिसंधाय फलं यज्ञतपःक्रियाः ॥
दानक्रियाश्च विविधाः क्रियंते मोक्षकांक्षिभिः २५॥

तत् याने कर्म तदर्थ है याने पमेश्वरार्थ है ऐसी बुद्धिसे फलै-कर अनुसंधान नहीं करके यज्ञ, दान, तप, क्रिया और अनेक प्रकारकी दानक्रिया मोक्षके चाहनेवालों करके की जाती हैं॥२५॥

सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते ॥
प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते ॥२६॥

हे अर्जुन ! श्रेष्ठपनेमें और साधुभावमें सत् ऐसा यह वाक्य युक्त करते हैं तथा श्रेष्ठ कर्ममें भी सत्शब्द युक्त करते हैं॥२६॥

यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति चोच्यते॥
कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाऽभिधीयते ॥ २७ ॥

जो यज्ञमें, तपमें और दानमें स्थिति है सो सत् ऐसे कहाती है और जो ईश्वरार्थ कर्म है सो सत् निश्चय है ऐसे कहते हैं इन चारों श्लोकोंमें ॐ तत् सत् इनका खुलासा किया है॥२७॥

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत् ॥
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह ॥२८॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे श्रद्धात्रयविभागयोगो नाम
सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

हे पृथापुत्र ! जो श्रद्धाविना होमाहुआ हवन दिया दान तपाहुआ तप और कियाहुआ कर्म है सो असत् ऐसा कहाता है सो न परलोकमें न इस लोकमें सुखदायक है ॥ २८ ॥

इति श्रीमत्सुकुलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादविरचितायां श्रीमद्भगवद्गी-
तामृततरंगिण्यां सप्तदशाऽध्यायप्रवाहः ॥ १७ ॥

अर्जुन उवाच ।

संन्यासस्य महाबाहो तत्त्वमिच्छामि वेदितुम् ॥
त्यागस्य च हृषीकेश पृथक्केशिनिषूदन ॥ १ ॥

अब इस अठारहवें अध्यायमें सर्वगीताका सारांश निरूपण होगा, तहां अर्जुन प्रश्न करते हैं कि, हे महाबाहो ! हे हृषीकेश ! हे केशिनिषूदन ! संन्यासका और त्यागका तत्त्व न्यारा न्यारा जाननेको चाहता हूं ॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः ।
सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः ॥ २ ॥

ऐसा अर्जुनका प्रश्न सुनिके श्रीकृष्णभगवान् बोलतेभये कि, कवि जो सारासारविवेकी वे कामनावाले कर्मोंके छोड़नेको संन्यास जानते हैं और विचक्षण जो तत्त्वज्ञानी हैं वे सर्वकर्मोंके फलत्यागको त्याग कहते हैं ॥ २ ॥

त्याज्यं दोषवदित्येके कर्म प्राहुर्मनीषिणः ।
यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यमिति चापरे ॥ ३ ॥

कोई एक ज्ञानीपुरुष दोषवाला कर्म त्यागना चाहिये ऐसे कहते हैं और कितनेक और आचार्य यज्ञ, दान, तप, कर्म नहीं त्यागना चाहिये ऐसे कहते हैं ॥ ३ ॥

निश्चयं शृणु मे तत्र त्यागे भरतसत्तम ।
त्यागो हि पुरुषव्याघ्र त्रिविधः परिकीर्तितः ॥ ४ ॥
यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत् ।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ॥ ५ ॥

हे भरतसत्तम ! उस त्यागमें मेरा निश्चय सुनो हे पुरुषनमें श्रेष्ठ !

जिससे कि, त्याग तीन प्रकारका कहा है इसीसे यज्ञ, दान तपरूप कर्म, नहीं त्याग करना ही योग्य है क्योंकि यज्ञ दान और तप ये ज्ञानियोंको भी पवित्र करनेवाले हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥

एतान्यपि तु कर्माणि संगं त्यक्त्वा फलानि च ।
कर्त्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम् ॥ ६ ॥

हे पार्थ ! ये यज्ञादिक भी कर्म ममता और फलोंको त्यागके करनेयोग्य हैं ऐसा निश्चय कियाहुआ मेरा उत्तम मत है ॥ ६ ॥

नियतस्य तु संन्यासः कर्मणो नोपपद्यते ।
मोहात्तस्य परित्यागस्तामसः परिकीर्तितः ॥ ७ ॥

कारण कि, जो नियमित संध्यादि पंचमहायज्ञादिक हैं उस कर्मका त्याग नहीं हो सकता है जो मोहसे किया उसका त्याग सो तामस कहाता है ॥ ७ ॥

दुःखमित्येव यत्कर्म कायक्लेशभयात्त्यजेत् ।
स कृत्वा राजसं त्यागं नैव त्यागफलं लभेत् ॥ ८ ॥

जो, कर्म दुःख ऐसे शरीरक्लेशके भयसे ही त्यागे वह त्यागनेवाला राजस त्यागको करके त्यागके फलको नहीं पाता है ॥ ८ ॥

कार्यमित्येव यत्कर्म नियतं क्रियतेऽर्जुन ।
सङ्गं त्यक्त्वा फलं चैव स त्यागः सात्त्विको मतः ॥ ९ ॥

हे अर्जुन ! जो कर्म करनेही योग्य है ऐसीबुद्धिसे ममता और फलको त्यागिके नियमित याने उचित है ऐसी ही बुद्धिसे कियाजाय सो त्याग सात्त्विक जाना है ॥ ९ ॥

न द्वेष्ट्यकुशलं कर्म कुशले नानुषज्जते ।
त्यागी सत्त्वसमाविष्टो मेधावी छिन्नसंशयः ॥ १० ॥

जो सत्त्वगुणयुक्त बुद्धिमान्, संशयरहित कर्मफलत्यागी है सो अकुशलको याने संसारकारक कर्मको न निंदता है न कुशल याने यज्ञादिक कर्ममें आसक्त होता है ॥ १० ॥

न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः ।
यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते ॥११॥

जिसवास्ते कि, देहधारी सब कर्म त्यागनेको समर्थ नहीं हो सकता है इससे जो कर्मफलका त्यागी है वह त्यागी ऐसा कहा है ॥ ११ ॥

अनिष्टमिष्टं मिश्रं च त्रिविधं कर्मणः फलम् ।
भवत्यत्यागिनां प्रेत्य नु च संन्यासिनां क्वचित् ॥१२॥

अप्रिय प्रिय और मिश्रित ऐसा कर्मका तीन प्रकारका फल कर्मफलानुरागियोंके मरेपरे होता है और कर्मफलत्यागियोंको कहीं भी नहीं होता ॥ १२ ॥

पञ्चैतानि महाबाहो कारणानि निबोध मे ।
सांख्ये कृतान्ते प्रोक्तानि सिद्धये सर्वकर्मणाम् ॥१३॥

हे महाबाहो ! सबकर्मोंकी सिद्धिके वास्ते ये पांच कारण सांख्यसिद्धांतमें कहे गये हैं सो मेरेसे सुनो ॥ १३ ॥

अधिष्ठानं तथा कर्त्ता करणं च पृथग्विधम् ।
विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पंचमम् ॥१४॥

वे ये कि, अधिष्ठान याने आधार अर्थात् शरीर तथा कर्त्ता याने जीव इस जीवके कर्त्तापनमें "ज्ञोऽत एव" "कर्त्ता शास्त्रार्थत्वात्" यह ब्रह्मसूत्र प्रमाण है, और न्यारे न्यारे प्रकारके करण याने मनसहित पंच इंद्रियोंके व्यापार और अनेक प्रकारकी न्यारी न्यारी चेष्टा याने पांच प्राणवायुओंकी चेष्टा और

यहां पांचवां दैव याने अंतर्यामी अर्थात् मैं हूं इस विषयमें "परात्तु तच्छ्रुतेः" यह ब्रह्मसूत्र भी प्रमाण है। इसका शंकासमाधान वाक्यार्थबोधिनीमें किया है ॥ १४ ॥

शरीरवाङ्मनोभिर्यत्कर्म प्रारभतेऽर्जुन ।
न्याय्यं वा विपरीतं वा पञ्चैते तस्य हेतवः ॥१५॥

हे अर्जुन ! शरीर वाणी और मन करके जो न्याय अथवा अन्यायपूर्वक जो कर्म प्रारंभ किया जाता है उसके ये पांचें कारण हैं ॥ १५ ॥

तत्रैवं सति कर्त्तारमात्मानं केवलं तु यः ।
पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्न स पश्यति दुर्मतिः ॥ १६ ॥

ऐसे सिद्धांत होनेपर भी तहां जो केवल आत्माको कर्त्ता जानता है सो दुर्बुद्धिपुरुष अकृतबुद्धित्वसे याने यथार्थनिश्चयकारक बुद्धिहीन होनेसे नहीं जानता है ॥ १६ ॥

यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते ।
हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हंति न निबध्यते ॥१७॥

जिसके अपने कर्त्तापनका भाव नहीं है जिसकी बुद्धि कर्ममें नहीं लिप्त होती है सो इन लोकोंको मारके भी न मारता है न पापमें बँधता है तात्पर्य यह कि, तुम भीष्मादिकके वधसे डरते हो जो मनुष्य ममता अहंतारहित होके स्वधर्माचरण करता है उसको उस कर्मजन्य पापपुण्यका भय नहीं होता ॥ १७ ॥

ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा कर्मचोदना ।
करणं कर्म कर्त्तेति त्रिविधः कर्मसंग्रहः ॥ १८ ॥

ज्ञान जो कर्त्तव्यकर्मका जानना ज्ञेय जो वह कर्म, परिज्ञाता उसके सम्यक् जाननेवाले ऐसे तीन प्रकारका शास्त्रविधान है तहां करण जो कर्म करनेकी साधनसामग्री जैसे यज्ञमें स्रुवादिक युद्धमें शस्त्रादिक, कर्म जो करना हो, कर्त्ता करनेवाला

ऐसे तीन प्रकारका कर्मके वास्ते संग्रह है अर्थात् इनहीसे होस-
केगा इनविना नहीं ॥ १८ ॥

ज्ञानं कर्म च कर्त्तेति त्रिधैव गुणभेदतः ।
प्रोच्यते गुणसंख्याने यथावच्छृणु तान्यपि ॥ १९ ॥

ज्ञान कर्म और कर्त्ता ऐसे ये गुणभेदकरके सांख्यशास्त्रमें
तीन प्रकारहीके कहे हैं उनको भी यथावत् सुनो ॥ १९ ॥

सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते ।
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम् २० ॥

जिस ज्ञानकरके ब्राह्मण क्षत्रियादि विभागयुक्त सर्वभूतोंमें
आत्मा विभागरहित याने समान है ऐसे अविनाशी एक
भावको देखता है उस ज्ञानको सात्त्विक जानना ॥ २० ॥

पृथक्त्वेन तु यज्ज्ञानं नानाभावान् पृथग्विधान् ।
वेत्ति सर्वेषु भूतेषु तज्ज्ञानं विद्धि राजसम् ॥ २१ ॥

और जो सब भूतोंमें अनेक भावाविष्ट यानी ब्राह्मणादि छोट
बडे उत्तम मध्यम दृश्यमान भेदयुक्त आत्माको भी उत्तम मध्यम
न्यारे न्यारे जानता है इस न्यारेपनेकरके जो ज्ञान है उस
ज्ञानको राजस जानो ॥ २१ ॥

यत्तु कृत्स्नवदेकस्मिन् कार्ये सक्तमहैतुकम् ।
अतत्त्वार्थवदल्पं च तत्तामसमुदाहृतम् ॥ २२ ॥

जो कि एक ही कर्ममें आसक्त हो उसेही सर्वफलयुक्त जाने
पर वास्तवमें वह निरर्थक हो, कारण कि इसमें तत्त्वार्थ नहीं है
और तुच्छ है यानी भूतादि आराधनरूप ज्ञान सो तामस
कहा है ॥ २२ ॥

नियतं सङ्गरहितमरागद्वेषतः कृतम् ।
अफलप्रेप्सुना कर्म यत्तत्सात्त्विकमुच्यते ॥ २३ ॥

जो कर्म फलकी इच्छा न करनेवालेने जानकर कर्त्तव्य फला-संगरहित और राग द्वेष विना किया हो सो सात्त्विक कहा है२३॥

यत्तु कामेप्सुना कर्म साहंकारेण वा पुनः ।
क्रियते बहुलायासं तद्राजसमुदाहृतम् ॥ २४ ॥

जो बहुत परिश्रमयुक्त कर्म, कामनाकी प्राप्तिकी इच्छाकरके अथवा फिर अहंकारसहित किया हो सो राजस कहा है ॥२४॥

अनुबंधं क्षयं हिंसामनवेक्ष्यं च पौरुषम् ।
मोहादारभते कर्म यत्तत्तामसमुच्यते ॥ २५ ॥

जिस कर्मके परिणामका दुःख द्रव्यादिकका क्षय तथा प्राणि-पीडा और अपने पुरुषार्थको न देखके मोहसे जो कर्म आरंभ किया जाता है सो तामस कहाता है ॥ २५ ॥

मुक्तसंगोऽनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः ।
सिद्ध्यसिद्ध्योर्निर्विकारः कर्त्ता सात्त्विक उच्यते २६

जो पुरुष कर्मफलासक्तिरहित अर्थात् मैं कर्त्ता हूं ऐसे न मान-नेवाला धीरज और उत्साहयुक्त तथा सिद्धि और असिद्धिमें निर्विकार हो सो कर्त्ता सात्त्विक कहाता है ॥ २६ ॥

रागी कर्मफलप्रेप्सुर्लुब्धो हिंसात्मकोऽशुचिः ।
हर्षशोकान्वितः कर्त्ता राजसः परिकीर्तितः ॥२७॥

जो कर्ममें आसक्त होके कर्मफलको चाहनेवाला लोभी अर्थात् कर्ममें यथार्थ खर्चका न करनेवाला प्राणिपीडा करनेवाला अप-वित्र हर्षशोकयुक्त हो सो कर्त्ता राजस कहा है ॥ २७ ॥

अयुक्तः प्राकृतः स्तब्धः शठो नैष्कृतिकोऽलसः ।
विषादी दीर्घसूत्री च कर्त्ता तामस उच्यते ॥२८॥

जो शास्त्रोक्त कर्मके अयोग्य विद्याहीन अनम्र मारणादिकर्ममें

तत्पर ठग आलसी विषाद करनेवाला और घडीके काममें एक दिन बितानेवाला हो सो कर्त्ता तामस कहाता है ॥ २८ ॥

बुद्धेर्भेदं धृतेश्चैव गुणतस्त्रिविधं शृणु ।
प्रोच्यमानमशेषेण पृथक्त्वेन धनंजय ॥ २९ ॥

हे धनंजय ! संपूर्ण न्यारा न्यारा मेरा कहा हुआ गुणोंकरके तीन२ प्रकारका बुद्धि और धीरजका भेद सुनो ॥ २९ ॥

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये ।
बंधं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी ३०॥

हे पार्थ ! जो बुद्धि प्रवृत्ति तथा निवृत्ति कार्य अकार्य और भय अभय बंध और मोक्षको जानती है सो सात्त्विकी कहाती है ३०

यया धर्ममधर्मं च कार्यं चाकार्यमेव च ।
अयथावत्प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी ॥३१॥

हे पृथापुत्र । जिस बुद्धिकरके धर्म और अधर्म तथा कार्य और अकार्यको भी उलटा जानै सो बुद्धि राजसी है॥ ३१ ॥

अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता ।
सर्वार्थान्विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी ॥३२॥

हे पार्थ ! जो बुद्धि अज्ञानसे ढकी हुई होनेके कारण अधर्मको धर्म यह तथा सर्व अर्थोंको उलटे मानै सो तामसी है ॥ ३२ ॥

धृत्या यया धारयते मनःप्राणेन्द्रियक्रियाः ।
योगेनाऽव्यभिचारिण्या धृतिः सा पार्थ सात्त्विकी ३३

हे पार्थ ! जिससे अखंडमोक्षसाधनरूप धारणाकरके योगबलसे मन प्राण और इंद्रियोंकी क्रियाको धारण करे सो धारणा सात्त्विकी है ॥ ३३ ॥

यया तु धर्मकामार्थान् धृत्या धारयते नरः ।
प्रसंगेन फलाकांक्षी धृतिः सा पार्थ राजसी ॥३४॥

हे पार्थ! फलकी इच्छा करनेवाला पुरुष फलकी इच्छाके प्रसंगसे जिस धारणाकरके धर्म अर्थ कामोंको धारण करता है सो धारणा राजसी है ॥ ३४ ॥

यथा स्वप्नं भयं शोकं विषादं मदमेव च।
न विमुंचति दुर्मेधा धृतिः सा तामसी मता ॥३५॥

दुष्टबुद्धि पुरुष जिस धारणाकरके स्वप्न भय शोक विषाद और मदको नहीं त्यागता है उस धारणाको तामसी मानते हैं ॥३५॥

सुखं त्विदानीं त्रिविधं शृणु मे भरतर्षभ।
अभ्यासाद्रमते यत्र दुःखांतं च निगच्छति ॥३६॥
यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्।
तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम् ॥३७॥

हे भरतश्रेष्ठ! अब सुख भी तीन प्रकारका मुझसे सुनो, जिस सुखमें अभ्यास करनेसे मन रमता है और दुःखका नाश होता है, जो उसके पहिले विषतुल्य तथा अंतमें अमृततुल्य हो वह आत्मबुद्धिकी प्रसन्नतासे उत्पन्न हुआ सुख सात्त्विक कहा है॥३६॥३७॥

विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम्।
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम् ॥ ३८ ॥

जो विषयेंद्रियके संयोगसे प्रारंभमें अमृततुल्य हो और अंतमें विषके तुल्य हो सो सुख राजस कहा है ॥ ३८ ॥

यदग्रे चानुबंधे च सुखं मोहनमात्मनः।
निद्रालस्यप्रमादोत्थं तत्तामसमुदाहृतम् ॥ ३९ ॥

जो प्रारंभमें और अंतमें भी अपना मोहक सो ऐसा निद्रा आलस और प्रमादसे उत्पन्न सुख तामस कहा है ॥ ३९ ॥

न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः।

सत्त्वं प्रकृतिजैर्मुक्तं यदेभिः स्यात्त्रिभिर्गुणैः ॥ ४० ॥

जो वस्तु प्रकृतिसे उत्पन्न इन सत्त्वादि तीनों गुणोंकरके मुक्त हो सो पृथिवीमें वा स्वर्गमें वा फिर वहां भी देवोंमें नहीं है ॥ ४० ॥

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परंतप ।
कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः ॥ ४१ ॥

हे परंतप ! ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्योंके और शूद्रोंके स्वभावसे उत्पन्न गुणोंकरके कर्म न्यारेन्यारे किये हैं ॥ ४१ ॥

शमो दमस्तपः शौचं क्षांतिरार्जवमेव च ।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ॥ ४२ ॥

शम जो बाह्यइंद्रियोंका संयम, दम अंतःकरणका संयम, तप शास्त्रोक्त व्रतादिक, शौच बाह्य और आभ्यंतर, क्षमा और सरलता, ज्ञान स्वस्वरूप परस्वरूपका जानना, विज्ञान जो स्वरूपज्ञान होनेपर ईश्वरभक्ति करना, आस्तिक्य जो वेदशास्त्रके वाक्योंमें विश्वास, ये सब ब्राह्मणके कर्म स्वभावसे ही हैं ॥ ४२ ॥

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम् ।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ॥ ४३ ॥

शूरपना तेज याने जिससे दूसरे डरें धीरज चतुराई और युद्धमें भागना नहीं उदारता और प्रजाको स्वाधीन रखना यह क्षत्रियका स्वभावज कर्म है ॥ ४३ ॥

कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम् ।
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम् ॥ ४४ ॥

खेती करना गाई पालना वणिज करना यह वैश्योंका स्वाभाविक कर्म है तथा तीनों वर्णोंकी सेवारूप कर्म शूद्रका स्वभावसे है ॥ ४४ ॥

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः ।
स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विंदति तच्छृणु ॥ ४५ ॥

ऐसे आपआपके कर्ममें तत्पर हुआ मनुष्य सिद्धिको यानी मोक्षको प्राप्त होता है, स्वकर्मनिष्ठ पुरुष जैसे मुक्तिको पाता है सो सुनो ॥ ४५ ॥

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् ।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विंदति मानवः ॥४६॥

जिस ईश्वरसे भूत प्राणियोंकी उत्पत्ति हुई तथा रक्षण होता है जिस करके यह सर्व विश्व व्याप्त है उस ईश्वरको आपके स्वाभाविक कर्मोंसे पूजके मनुष्य मोक्षको प्राप्त होता है ॥४६॥

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।
स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् ॥४७॥

अतिउत्तम परधर्मसे अपना धर्म गुणहीन भी कल्याणकारक है. अपने जातिविहित कर्म करता हुआ पापको नहीं प्राप्त होता है. यह तात्पर्य कि तुम्हारा हिंसात्मक भी धर्म है तो भी तुम्हारा कल्याण उसीसे है ॥ ४७ ॥

सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत् ।
सर्वारंभा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः ॥ ४८ ॥

हे कुंतीपुत्र ! दोषयुक्त भी अपने वर्णोचित धर्मको न त्यागना क्योंकि सर्वज्ञान कर्मादिक आरंभ दोषकरके युक्त हैं जैसे धूवाँकरके अग्नि युक्त है ॥ ४८ ॥

असक्तबुद्धिः सर्वत्र जितात्मा विगतस्पृहः ।
नैष्कर्म्यसिद्धिं परमां संन्यासेनाधिगच्छति ॥४९॥

सर्व कर्मोंमें बुद्धिको आसक्त न करनेवाला मनको वश किये

हुए वांछारहित पुरुष परम नैष्कर्म्यसिद्धिको याने आत्मज्ञानको त्यागकरके प्राप्त होता है ॥ ४९ ॥

सिद्धिं प्राप्तो यथा ब्रह्म तथाऽऽप्नोति निबोध मे।
समासेनैव कौन्तेय निष्ठा ज्ञानस्य या परा ॥५०॥

हे कुन्तीपुत्र! उस आत्मज्ञानको प्राप्त हुआ जैसे ब्रह्मको पुरुष प्राप्त होता है वैसे संक्षेपकरके मुझसे सुनो, जो ध्यानात्मज्ञानकी परम निष्ठा है याने उपायकी सीमा है उसे भी॥५०॥

बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो धृत्यात्मानं नियम्य च।
शब्दादीन्विषयांस्त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च॥५१॥
विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः।
ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः ॥५२॥
अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम्।
विमुच्य निर्ममः शांतो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥५३॥

सो जैसे कि, शुद्धबुद्धिकरके युक्त और धारणासे मनको वश करके शब्दादिक विषयोंको त्यागके और रागद्वेषोंको त्यागके एकांत बैठा हुआ अल्पाहारी शरीर वाणी और मनको वश किये हुए नित्य ध्यानयोगपरायण वैराग्यको धारण किये हुए अहंकार बल दर्प काम क्रोध ममता, इन सबको त्यागके निर्मम शांत हुआ पुरुष आत्मज्ञानमय होता है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् ॥ ५४ ॥

ऐसे आत्मज्ञानमय हुआ प्रसन्नमनयुक्त न कोई वस्तु मेरे सिवाय जो खो गयी तो उसको न सोचता है न चाहता है सर्व भूतोंमें समदृष्टि हुआ अतिउत्तम मेरी भक्तिको प्राप्त होता है

याने सर्व जगत्को मेरे शरीरभूत परम विभूति जानके पक्षपात-
रहित सर्वमें मुझहीको देखता हुआ मेरा ही स्मरण मनमें करता
है कि, ये सब मेरे स्वामीके हैं यही परमभक्ति है ॥ ५४ ॥

भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम् ॥५५॥

मैं जितना और जो हूँ उतना और वैसा मुझको भक्तिक-
रके निश्चयपूर्वक जानता है फिर मुझको निश्चयपूर्वक जानके
मुझहीको उसके पीछे प्राप्त होता है ॥ ५५ ॥

सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः।
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम् ॥५६॥

मेरा आश्रित जन सब लौकिक वैदिक कर्मोंको भी सदा करता
हुआ मेरे अनुग्रहसे सनातन नाशरहित पदको प्राप्त होता है॥५६॥

चेतसा सर्वकर्माणि मयि संन्यस्य मत्परः।
बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव ॥५७॥

मेरे परायण हो चित्तकरके सर्व कर्मोंको मुझमें स्थापित
करके याने मेरे अर्पण करके, ज्ञानयोगका आश्रय करके निरं-
तर मुझमें चित्तको लगाये हुए स्थित रहो ॥ ५७ ॥

मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि।
अथ चेत्त्वमहङ्कारान्न श्रोष्यसि विनङ्क्ष्यसि ॥५८॥

मुझमें चित्त लगाये हुए मेरे अनुग्रहसे सर्व संसारदुःखोंको
तरोगे जो कदाचित् तुम अहंकारसे मेरा उपदेश न सुनोगे तो
नष्ट होगे ॥ ५८ ॥

यदहङ्कारमाश्रित्य न योत्स्य इति मन्यसे।
मिथ्यैव व्यवसायस्ते प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति॥५९॥

जो अहंकारका आश्रय करके न युद्ध करूंगा ऐसे मानोगे सो

भी तुम्हारा निश्चय वृथा होगा क्योंकि तुमको तुम्हारा जातिस्वभाव ही युद्धमें लगा देगा ॥ ५९ ॥

स्वभावजेन कौन्तेय निबद्धः स्वेन कर्मणा ।
कर्तुं नेच्छसि यन्मोहात्करिष्यस्यवशोऽपि तत् ॥ ६० ॥

हे कुंतीपुत्र ! जो युद्ध मोहसे करनेको नहीं चाहते हो सो अपने क्षत्रियस्वभावजन्य अपने कर्मकरके बंधे हुए परवशे हुए भी करोगे ॥ ६० ॥

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥ ६१ ॥

हे अर्जुन ! ईश्वर अपनी मायाकरके यंत्र जो शरीर उनमें रहे हुए सब भूतोंको भ्रमाता हुआ सर्व भूतोंके हृदयस्थलमें स्थित है ६१ ॥

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत ।
तत्प्रसादात्परां शांतिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ६२ ॥

हे भारत ! सर्व भावना करके उसी परमात्माके शरण हो उसीके अनुग्रहसे परम शांति और सनातन स्थानको प्राप्त होवोगे ॥ ६२ ॥

इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद्गुह्यतरं मया ।
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु ॥ ६३ ॥

मैंने यह गोप्यसे भी गोप्य ज्ञान तुमको कहा है इसको अच्छी तरहसे विचारके जैसा चाहो वैसा करो ॥ ६३ ॥

सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः ।
इष्टोऽसि मे दृढमतिस्ततो वक्ष्यामि ते हितम् ६४ ॥

सर्वगोप्यमें भी अतिगोप्य मेरा परम वाक्य फिर सुनो मेरे अतिदृढ प्रिय हो तिससे तुमको यह हित उपदेश करता हूं ॥ ६४ ॥

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ६५ ॥

मुझमें मनको लगावो मेरे भक्त हो मेरा पूजन करनेवाले हो मुझको नमन करो मुझको ही प्राप्त होगे तुमसे सत्य प्रतिज्ञा करता हूं क्योंकि मेरे प्रिय हो ॥ ६५ ॥

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः६६॥

हे अर्जुन! तुम सर्व धर्मोंको परित्यागकर याने सर्व धर्मोंके फलको त्यागके अर्थात् "यत्करोषि यदश्नासि" इत्यारभ्य "तत्कुरुष्व मदर्पणम्" इस रीतिसे मेरे अर्पण करके मुख्य मेरे शरण प्राप्त हो अर्थात् "स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विंदति मानवः" इस प्रमाणसे मुझको पूज्य और मुझको प्राप्य जानके मेरी आज्ञा करो याने मेरा पूजन जानके स्वधर्मरूप युद्ध करो मैं तुमको इन भीष्मादिकोंको युद्धमें मारने इत्यादिक सर्व पापोंसे मुक्त करूंगा तुम मत शोच करो. यहां इस श्लोकमें कोई विद्वद्दूषण अर्थ करते हैं कि, चातुर्मास्ययाग श्राद्ध पितृतर्पण इत्यादि कर्मरूप धर्मोंको त्यागके मेरे शरण हो याने मुझको और आपको एक ही जानो इस एकताज्ञानरूप भक्ति करो तब विचारना चाहिये कि, प्रथम तो "उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः" इत्यादि प्रमाणसे जीवब्रह्मकी स्वरूप एकता नहीं हो सकती है मुक्त होनेपर भी "मम साधर्म्यमागताः" और "भोगमात्रसाम्यलिंगाच्च" तथा "निरंजनः परमं साम्यमुपैति" इत्यादिक गीता ब्रह्मसूत्र और श्रुति प्रमाणसे भी भोगादिकमें समता होती है एकता नहीं जहां एकता भी कही है तहां अंतर्यामीभावसे अथवा "द्वा सुपर्णा" इत्यादि श्रुतिप्रमाण सखापनसे कही है दूसरे 'भज सेवायाम्' धातुका भक्तिशब्द होता है, भक्ति याने सेवा सो भी एकतामें बननेकी नहीं इससे जीवपरमात्मासे न्यारे परमात्माके स्वाधीन् हैं यह सिद्ध हुआ तब

जो अर्थ किया कि, मेरी और आपकी एकतारूप भक्ति करो सो यह अर्थ तो सिद्ध हुआ नहीं. अब जो धर्मको त्यागनेका अर्थ किया वहां "धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे"। "श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः"। "स्वधर्मे निधनं श्रेयः" इत्यादि वाक्योंमें विरोध आता है इस वास्ते सर्व धर्मोंका फल त्यागके निष्काम और ईश्वरपूजनरूप जानके करना यही सिद्ध होता है. यहां इसी अध्यायमें प्रमाण हैं "निश्चयं शृणु मे तत्र त्यागे भरतसत्तम। त्यागो हि पुरुषव्याघ्र त्रिविधः परिकीर्तितः" यहांसे लेके "संगं त्यक्त्वा फलं चैव स त्यागः सात्त्विको मतः॥ यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते" इत्यादि और भी कहे हैं. ग्रंथ बढनेके भयसे नहीं लिखते हैं, सुज्ञजन इतनेमेंही समझके धर्माचरण करेंगे ॥ ६६ ॥

इदं ते नातपस्काय नाऽभक्ताय कदाचन।
नचाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति ॥६७॥

हे अर्जुन ! जिसने तप न किया हो तथा मेरा और मेरे जनोंका भक्त न हो और जो उपदेष्टाकी सेवा न करे और जो मेरी निंदा करे उसको तुम यह कभी न कहना ॥ ६७ ॥

इयं दं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः ॥६८॥

जो इस परम गोप्य गीताशास्त्रको मेरे भक्तोंमें प्रसिद्ध करेगा वह मुझमें परम भक्तिको करके मुझको ही प्राप्त होगा इसमें संशय नहीं ॥ ६८ ॥

न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि ॥६९॥

उस गीताको भक्तोंमें प्रसिद्ध करनेवालेसे अधिक मेरा प्रिय-कारक पृथिवीपर मनुष्योंमें दूसरा कोई नहीं है और न उसके बराबर इतर मुझको प्रिय होगा ॥ ६९ ॥

अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं संवादमावयोः ।
ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मतिः ॥७०॥

जो मेरे तुम्हारे इस धर्मवर्द्धक संवादरूप गीताका अध्ययन करेगा उस करके मैं ज्ञानयज्ञसे पूजित होऊँगा ऐसा मैं मानता हूं ॥ ७० ॥

श्रद्धावाननसूयश्च शृणुयादपि यो नरः ।
सोऽपि मुक्तः शुभाँल्लोकान् प्राप्नुयात्पुण्यकर्मणाम् ७१

जो मनुष्य निंदारहित और श्रद्धायुक्त श्रवण भी करेगा सो भी संसारसे मुक्त होके पुण्यकर्म करनेवालोंके सुखद लोकोंको प्राप्त होगा ॥ ७१ ॥

कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा ।
कच्चिदज्ञानसंमोहः प्रनष्टस्ते धनंजय ॥ ७२ ॥

भगवान् पूंछते हैं-कि, हे पृथापुत्र धनंजय ! इस ज्ञानको तुमने एकाग्रचित्तसे सुना कि नहीं जो सुना तो अज्ञानजन्य मोह तुम्हारा नष्ट हुआ कि नहीं सो कहो ॥ ७२ ॥

अर्जुन उवाच ।

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत ।
स्थितोऽस्मि गतसंदेहः करिष्ये वचनं तव ॥ ७३ ॥

श्रीकृष्णके वचन सुनके अर्जुन कहते हैं-कि, हे अच्युत ! तुम्हारे अनुग्रहसे मोह नष्ट हुआ और मैंने ज्ञान प्राप्त किया अब संदेहरहित स्थित हूं आपका वचन जो स्वधर्मरूप युद्ध करनेकी आज्ञा सो करूंगा ॥ ७३ ॥

संजय उवाच ।

इत्यहं वासुदेवस्य पार्थस्य च महात्मनः ।
संवादमिममश्रौषमद्भुतं रोमहर्षणम् ॥ ७४ ॥

संजय धृतराष्ट्रसे कहते हैं-कि, हे राजन् ! ऐसे यह श्रीकृष्ण और महात्मा अर्जुनका अतिअद्भुत रोमांचकारक संवाद मैंने सुना ॥ ७४ ॥

व्यासप्रसादाच्छ्रुतवानेतद्गुह्यमहं परम् ।
योगं योगेश्वरात्कृष्णात्साक्षात्कथयतः स्वयम् ७५॥

मैं यह अतिगोप्य योग साक्षात् स्वयं कहते हुए योगेश्वर श्रीकृष्णके मुखसे वेदव्यासजीके अनुग्रहसे सुनता हुआ ॥७५॥

राजन् संस्मृत्य संस्मृत्य संवादमिममद्भुतम् ।
केशवार्जुनयोः पुण्यं हृष्यामि च मुहुर्मुहुः ॥७६॥

हे राजन् ! इस श्रीकृष्ण और अर्जुनके अद्भुत पुण्यदायक संवादको सुमिर सुमिरके वारंवार हर्षित होता हूं ॥ ७६ ॥

तच्च संस्मृत्य संस्मृत्य रूपमत्यद्भुतं हरेः ।
विस्मयो मे महान् राजन् हृष्यामि च पुनः पुनः ७७

हे राजन् ! उस अद्भुत भगवान्के रूपको भी सुमिर सुमिरके मेरे बड़ा विस्मय होता है और वारंवार हर्षित होता हूं ॥ ७७ ॥

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः ।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥ ७८ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे मोक्षसंन्यासयोगो नाम अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

हे राजन्! जहां योगेश्वर श्रीकृष्ण हैं और जहां धनुषधारी अर्जुन हैं तहाँही अचल संपदा, अचल विजय, अचल वैभव और अचल नीति है" यह मेरा निश्चित मत है॥ ७८॥

इति श्रीमत्सुकुलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादविरचितायां श्रीमद्भगवद्गीता-मृततरंगिण्यां अष्टादशाऽध्यायप्रवाहः॥ १८॥

अंबराब्ध्यंकभूसंख्ये विक्रमार्कस्य संवति।
माघमासे दले शुभ्रे द्वितीयायां तिथौ बुधे॥ १॥
इयं संपूर्णतां याता गीताऽमृततरंगिणी।
श्रीमद्भागवताचार्यानुग्रहात्स गुरुर्मम॥ २॥

समाप्तोऽयं ग्रंथः।



॥ श्रीः ॥

श्रीमन्महाभारतानुशासनिकपर्वान्तर्गत-

विष्णुसहस्रनामस्तोत्र ।

पण्डित-रामचन्द्रजीविरचित-

भाषाटीकासहित ।

खेमराज श्रीकृष्णदास,

अध्यक्ष-"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस,

बम्बई

सं० १९९१, श० १८५६.

श्रीविष्णवे नमः ।



सूचना ।



श्रीपरब्रह्म परमेश्वर सगुणनिर्गुणरूप सच्चिदानन्दके चरणारविंदमें मन, वाणी, कायासे अनन्तकोटि नमस्कार करके यह सत्पुरुषोंका दासानुदास वैश्यमाहेश्वरी नानालाल सोमाणीने औदीच्यज्ञाति पण्डित रामचन्द्रजी रईस डीडवानासे श्रीविष्णुसहस्रनामका "यथार्थनामसहस्र" अर्थ शांकरभाष्यानुकूल देशभाषामें शुद्ध लिखवाकर सब सुज्ञजनोंसे हाथ जोड़के विनती करता है कि जहां अर्थमें वा लिपिमें भूल चूक हो, तो इस तुच्छबुद्धि अत्यंत अबोध दासपर कृपा करके सुधार दें। जिस नामके दो तीन अर्थ हैं उसपर अंक लिखा है, जहां श्लोक पूरा है उसका भी अंक है। नामोंकी संख्याका भी अंक प्रति पत्रमें लिखा है।

श्लोकः—शराब्धिगोभूमितविक्रमाब्दे चैत्राभिधे मासि वलक्षपक्षे ॥
सेनानिवेशाख्यपुरे व्यलेखि श्रीरामचन्द्राभिधपण्डितेन ॥ १ ॥

॥ श्रीरस्तु ॥



श्रीः ।

अथ श्रीविष्णुसहस्रनाम ।

भाषाटीकासमेत ।



वैशम्पायन उवाच ।

श्रुत्वा धर्मानशेषेण पावनानि च सर्वशः ॥
युधिष्ठिरः शांतनवं पुनरेवाभ्यभाषत ॥ १ ॥

श्रीगणेशाय नमः ॥ वैशंपायनजी बोले कि युधिष्ठिर नाम युद्धमें न भागनेवाले ऐसे धर्मराजाने सब पवित्र करनेवाले धर्म्मोंको शंतनुके पुत्र भीष्मपितामहसे अशेष नाम सम्पूर्ण सर्वधर्म जैसे–आपद्धर्म, राजधर्म, मोक्षधर्म; दानधर्मादिक; वे धर्म कैसे हैं कि पावन नाम पवित्र करनेवाले, सर्वशः नाम सब तरहसे पावन हैं श्रवणमनननिदिध्यासनादिक वा सब प्रकारके धर्म व्रत उपासना उपवास प्रायश्चित्तादिकको भीष्मजीसे सुनकर फेर पूछा ॥ १ ॥

युधिष्ठिर उवाच ।

किमेकं दैवतं लोके किं वाप्येकं परायणम् ॥
स्तुवन्तः कं कमर्चन्तः प्राप्नुयुर्मानवाः शुभम् ॥ २ ॥

युधिष्ठिरने कहा इस लोकमें एक बड़ा देवता कौन है अथवा एक प्राप्त होनेके लायक कौन है और किसके जप करनेसे किसकी पूजा और किसकी स्तुति करनेसे मनुष्यका कल्याण होता है ॥ २ ॥

को धर्मः सर्वधर्माणां भवतः परमो मतः ॥
किं जपन्मुच्यते जन्तुर्जन्मसंसारबन्धनात् ॥ ३ ॥

सब धर्मोंमें कौन धर्म आपको परममत (बड़ा) है और किस नामके जप करनेसे प्राणी जन्ममरणरूपी संसारके बंधनसे

छूट जाता है (परममत नाम उत्तम मत जो तीन तरहका है १ ऊंचेशब्दसे, २मध्यमस्वरसे, ३मनसे, जो जन्म लेते रहे उसका नाम जंतु है) युधिष्ठिरने यही पांच प्रश्न किये १ कौन एक बड़ा देवता है, २ कौन प्राप्त होने लायक है, ३ किसकी पूजा और स्तुति करनेसे आदमीका भला होता है, ४ सब धर्मोंमें आपके परममतसे कौन धर्म बड़ा है, ५ किस नामके जपसे फिर जन्म नहीं होता ॥ ३ ॥

भीष्म उवाच ।

जगत्प्रभुं देवदेवमनन्तं पुरुषोत्तमम् ॥
स्तुवन्नामसहस्रेण पुरुषः सततोत्थितः ॥ ४ ॥

भीष्मने उत्तर दिया (जिससे सब शत्रु डरें सो भीष्म) आदमी सदा उठकर जगत्के प्रभु-नाम स्वामी और देवताओंके देवता अनन्त पुरुषोत्तमके सहस्रनामसे स्तुति करनेसे संसारसे छूट जाता है, सब स्थावर जङ्गमका नाम जगत् है, उसके प्रभु अनंत जिसका अंत नहीं और किसी देश, किसी काल, किसी वस्तुमें जिसको नियत न कर सके, पुरुषोत्तम-नाश होनेवाले और चिरजीवी रहनेवालोंसे परे ॥ ४ ॥

तमेव चार्च्चयन्नित्यं भक्त्या पुरुषमव्ययम् ॥
ध्यायन्स्तुवन्नमस्यंश्च यजमानस्तमेव च ॥ ५ ॥

सहस्रनामसे उसकी स्तुति सदा निरंतर जो पुरुष करता है वह जन्ममरणसे छूट जाता है, उसी अव्यय नाम अविनाशी पुरुषकी भक्तिसहित नित्य पूजा और ध्यानपूर्वक स्तुति नमस्कार करनेसे, यजन करनेसे पुरुष सब दुःखसे छूट जाता है ॥ ५॥

अनादिनिधनं विष्णुं सर्वलोकमहेश्वरम् ॥
लोकाध्यक्षं स्तुवन्नित्यं सर्वदुःखातिगो भवेत् ॥ ६ ॥

आदि अंतसे रहित विष्णु सब लोकके महाईश्वर नाम ब्रह्मादिक ईश्वरोंके ईश्वर लोकाध्यक्ष नाम सबलोकके साक्षी अर्थात् द्रष्टा सब लोकके स्वामीकी स्तुति करनेसे सर्व दुःख नाम तापत्रयसे छूट जाता है ॥ ६ ॥

ब्रह्मण्यं सर्वधर्मज्ञं लोकानां कीर्तिवर्धनम् ॥
लोकनाथं महद्भूतं सर्वभूतभवोद्भवम् ॥ ७ ॥

ब्रह्मण्य सब धर्मोंके जाननेवाले प्रणियोंकी कीर्ति बढ़ानेवाले लोकके नाथ अर्थात् जिससे लोग मांगते हैं वा लोकके शिक्षा देनेवाले महद्भूत महत् नाम ब्रह्मविद्यापूर्ण भूत नाम परमार्थ अथवा महत् नाम पूज्य भूत नाम सत्ता अथवा पिशाचादिक रूपसे पूज्य सर्वभूतभव नाम संसार और जिससे उत्पत्ति संसारकी है उसको सर्वभूतभवोद्भव कहते हैं ॥ ७ ॥

एष मे सर्वधर्माणां धर्मोऽधिकतमो मतः ॥
यद्भक्त्या पुण्डरीकाक्षं स्तवैरर्चेन्नरः सदा ॥ ८ ॥

सब वेदके कहे हुए बड़े बडे धर्मोंमेंसे बहुत बड़ा धर्म यही है जो पुंडरीकाक्षकी स्तुतिसे भक्तिपूर्वक पूजा सदा करता रहे यही हमारा मत है । पुंडरीक हृदयकमलमें प्रकाशवान्का नाम है अक्ष नाम मंदिर । और स्तुति करना सर्व धर्मोंमें अधिक है इसमें प्रमाण देते हैं, विष्णुपुराणका वचन-"ध्यायन्कृते यजन्यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन् । यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संकीर्त्य केशवम् ॥१॥" मनुका वचन-"जप्येनैव तु संसिध्येद्ब्राह्मणो नात्र संशयः॥ कुर्यादन्यन्न वा कुर्यान्मैत्रो ब्राह्मण उच्यते ॥ १ ॥ जपस्तु सर्वधर्मेभ्यः परमो धर्म उच्यते॥अहिंसया च भूतानां जपयज्ञः प्रवर्त्तते॥" इति महाभारते ॥ यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मीति भगवद्वचनम् ॥ ८ ॥

परमं यो महत्तेजः परमं यो महत्तपः ॥
परमं यो महद्ब्रह्म परमं यः परायणम् ॥ ९ ॥

जो परमतेज है कि सूर्य उसी तेजसे सब जगत्को प्रकाश करते हैं और जिस तेजसे चांद और अग्नि प्रकाशित हैं और बड़ा तप नाम आज्ञा देनेवाला अंतर्यामीरूप है । "यद्भयाद्वाति वातोऽयं सूर्यस्तपति यद्भयात् ॥ वर्षतीन्द्रो दहत्यग्निर्मृत्युश्चरति यद्भयात् ॥"जो परब्रह्म सत्य है ज्ञानरूप है अनन्त है महत् नाम पूज्य जो परायण नाम जहां जायके फिर नहीं आते ॥ ९ ॥

पवित्राणां पवित्रं यो मङ्गलानां च मङ्गलम् ॥
दैवतं देवतानां च भूतानां योऽव्ययः पिता ॥ १० ॥

सब तीर्थोंको जो पवित्र करे ध्यानसे दर्शनसे कीर्तनसे स्तुति करनेसे पूजन स्मरण प्रणाम करनेसे सब पापोंकी जड़ खोद डालते हैं सो परम पवित्र पुण्य पाप जो संसारके हेतु हैं उनका कारण अज्ञान है, उसका नाश आत्मज्ञानसे जो करै सो सब पवित्रोंसे पवित्र है, प्रमाण- "कलावपि च दोषाढ्ये विषयासक्त-मानसः ॥ कृत्वापि सकलं पापं गोविंदं संस्मरञ्छुचिः ॥ १ ॥ शाठ्येनापि नमस्कारः प्रयुक्तश्चक्रपाणये ॥ संसारस्थूलबंधाना-मुद्वेजनकरो हि सः" ॥ २ ॥ मंगल नाम कल्याण सब मंगलोंके मंगल किंतु परमकल्याणरूप वा उसके साधन देवताओंके देवता भूत कहे प्राणियोंके एक पिता नाम पालनहार, कैसे पिता कि अव्यय जिसका नाश नहीं वही इस लोकमें एक देवता है यह उसका प्रश्नका उत्तर है–"किमेकं दैवतं लोक इत्यादि ।" प्रमाण- "ज्ञानह्रदे ध्यानजले रागद्वेषमलापहे ॥ यः स्नाति मानसे तीर्थे स याति परमां गतिम् ॥ १ ॥ आत्मा नदी संयमतोयपूर्णा सत्या-वहा शीलतटा दयोर्मिः ॥ तत्राभिषेकं कुरु पाण्डुपुत्र न वारिणा शुध्यति चांतरात्मा ॥ २ ॥ इति महाभारते" ॥ १० ॥

यतः सर्वाणिभूतानि भवन्त्यादियुगागमे ॥
यस्मिंश्च प्रलयं यान्ति पुनरेव युगक्षये ॥ ११ ॥

जिससे सत्ययुगके प्रारम्भमें सब प्राणी उत्पन्न होते हैं और युगके क्षय नाम महाप्रलयमें और प्रलयके पहले भी फेर सब जीव जिसमें लय होते हैं ॥ ११ ॥

तस्य लोकप्रधानस्य जगन्नाथस्य भूपते ॥
विष्णोर्नामसहस्रं मे शृणु पापभयापहम् ॥ १२॥

हे भूपति ! उसी लोकके मालिक जगत्के नाथ जो विष्णु तिनका सहस्रनाम जो पाप और भयके नाश करनेवाला है उसको मन चित्त लगायके हमसे सुनो ॥ १२ ॥

यानि नामानि गौणानि विख्यातानि महात्मनः॥
ऋषिभिः परिगीतानि तानि वक्ष्यामि भूतये॥ १३ ॥

जिन गुणसहित नामोंको महात्मा लोगोंने प्रसिद्ध किया है और सब ऋषिलोगोंने गाया है उसको मैं भूतये नाम धर्म अर्थ काम मोक्ष मिलनेके वास्ते कहता हूँ ॥ १३ ॥

हरिःॐ॥विश्वं विष्णुर्वषट्कारो भूतभव्यभवत्प्रभुः ॥
भूतकृद्भूतभृद्भावो भूतात्मा भूतभावनः ॥ १४ ॥

सहस्रनामप्रारंभः ॥ विश्वम् ॥ जगत्का कारणरूप परब्रह्म १ अथवा सब जगतरूप है २ जो संसारको बनायके आप उसमें प्रवेश करे ३ प्रलयमें सब जगत् जिसमें समाय जाय ४ प्रणव रूप ५ ॥ एवं सर्वेषु भूतेषु भक्तिरव्यभिचारणी॥ कर्तव्या पण्डितैर्ज्ञात्वा सर्वभूतमयं हरिम् ॥ १ ॥विष्णुः ॥ जो सबमें व्यापक है १ किसी देश किसी काल किसी पदार्थमें जिसको नियत न कर सकें किन्तु सबदेश सब काल सब वस्तुमें निरंतर एकाकार व्याप्त

है २ जिसकी शक्ति सबमें भरी है ३ ॥ वषट्कारः ॥ वषट्कार यज्ञको कहते हैं और ब्रह्मा और देवताओंको भी कहते हैं १ जिसके निमित्त होम यज्ञादिक हों २ ॥ भूतभव्यभवत्प्रभुः ॥ भूत भविष्य वर्त्तमान तीनों कालके स्वामी १ ॥ भूतकृत् ॥ रजोगुणके आश्रयसे ब्रह्मारूप होके प्राणियोंके पैदा करनहार १ तमोगुणको धारण करके रुद्ररूपसे जगत् काटते हैं वा नाश करते हैं २॥भूतभृत्॥ सत्त्वगुणसे विष्णुरूप होके सब भूतोंके पालनहार और रक्षक १ शेषरूपसे जगत्को धारण करनेवाले २ अनन्तरूपसे जगत्को पोषण करनेवाले ३ ॥ भावः ॥ सत्तारूप जिसको नित्य कहते हैं १ ॥ भूतात्मा ॥ प्राणियोंके अन्तर्यामी १ ॥ भूतभावनः ॥ प्राणियोंके उत्पन्न करनेवाले १ ॥ १४ ॥

पूतात्मा परमात्मा च मुक्तानां परमा गतिः ॥
अव्ययः पुरुषः साक्षी क्षेत्रज्ञोऽक्षर एव च ॥ १५ ॥

पूतात्मा ॥ त्रिगुण और जन्मकर्मके दोष जिसमें नहीं १ ०नाम॥ परमात्मा॥बहुत बड़ी है मायाशक्ति जिसकी और सबमें निरंतरव्याप्त हैं१नित्य शुद्धबुद्ध मुक्त स्वभाव २ नित्य जो तीनों कालमें शुद्ध रहे रागादिकसे रहित बुद्ध आप ही प्रकाशवान् और सदा आनंदरूप मुक्त मायाके बंधनसे छूटा हुआ ॥ मुक्तानां परमागतिः ॥मुक्त लोग जो रागद्वेषभयसे छूटे हैं उनकी परम नाम उत्तम गतिरूप जहां जायके फिर न आवे १॥ अव्ययः॥ जिसमें विकार वा नाश नहीं ॥ पुरुषः ॥ पुर नाम शरीर वा ब्रह्म जो शरीरमें अथवा ब्रह्ममें वास करै सो पुरुष १ ॥"नवद्वारं पुरं पुण्यमेतैर्भावैः समन्वितम् ॥ व्याप्य शेते महात्मा यस्तस्मात्पुरुष उच्यते ॥ १ ॥" इति महाभारते ॥ जो सबके पहिले था वो पुरुष २ सत्त्वगुण जहां अधिक होय वहां रहनेवाले ३ अनेक मनोरथोंके देनेवाले ४ पुर

नाम संसारको जो प्रलयकालमें नाश करे सो पुरुष ५ जिससे सब जगत् भरा है और सब जगत्में घूमता फिरता है ६॥ साक्षी ॥ साक्षाच्चैतन्यरूप सबको देखनेवाले १॥ क्षेत्रज्ञः ॥ क्षेत्रनाम शरीरको जो जाने सो क्षेत्रज्ञ १॥"क्षेत्राख्यानि शरीराणि तेषां चैव यथासुखम्॥ तानि वेत्ति स योगात्मा ततः क्षेत्रज्ञ उच्यते ॥१॥" अक्षरः ॥ जो कभी न टले सदा एकसा थिर रहे, एव नाम वही क्षेत्रज्ञ है ॥१५॥

योगो योगविदां नेता प्रधानपुरुषेश्वरः ॥
नारसिंहवपुः श्रीमान् केशवः पुरुषोत्तमः ॥ १६ ॥

योगः ॥ ज्ञानेन्द्रिय और मनको जीतकर जीवात्मा परमात्मा दोनोंको एक जाननेको योग कहते हैं १ इसके अभ्याससे जो मिले सो योग ॥ योगविदां नेता ॥ योगके जाननेवाले योगविद् उनके नेता नाम योगक्षेम करनेवाले १॥ योग अनमिली वस्तुकी प्राप्ति, क्षेम प्राप्तिकी रक्षा ॥ प्रधानपुरुषेश्वरः ॥ प्रधान नाम प्रकृति जिसको माया कहते हैं । पुरुष नाम जीव दोनोंके ईश्वर ॥ २० नाम ॥ नारसिंहवपुः ॥ जिसके शरीरमें आदमी और सिंहका स्वरूप होय १॥ श्रीमान् ॥ जिसकी छातीमें सदा लक्ष्मीका चिह्न है १॥ केशवः ॥ जिसके बाल बहुत सुन्दर हों १॥ क नाम ब्रह्मा अ नाम विष्णु ईश नाम रुद्र तीनों जिनके वशमें हैं सो केशव २ केशीदैत्यके मारने वाले ३॥ पुरुषोत्तमः ॥ जो पुरुषोंमें उत्तम नाम जीव और ईश्वर दोनोंसे परे शुद्ध ब्रह्म ॥ भगवत्गीता प्रमाण—"यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः ॥ अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः" ॥ १६ ॥

सर्वः शर्वः शिवः स्थाणुर्भूतादिर्निधिरव्ययः ॥
सम्भवो भावनो भर्त्ता प्रभवः प्रभुरीश्वरः ॥ १७ ॥

सर्वः ॥सत् और असत्के उत्पत्ति स्थिति विनाशका स्थान१॥ शर्वः ॥ सबोंका संहार करानेवाला आपही सबका संहार करे १॥ शिवः ॥ तीनों गुणोंसे हितसिद्धिवाले १॥ वही ब्रह्मा वही विष्णु वही रुद्र है । यह श्रुति है शिवके नामसे विष्णुकी स्तुति है ॥ स्थाणुः॥ स्थिरभाव१॥ भूतादिः॥ सबभूतोंका आदिभूत १॥ निधिरव्ययः॥ प्रलयके समयमें जिसमें सब लय हो सो निधि और जो सदा रहै कभी नष्ट न होय सो अव्यय यह दो मिलकर एक नाम है ॥३० नाम ॥ संभवः ॥ अपनी इच्छासे भली तरह आप ही १ ॥ चौथे अध्यायमें गीताजीमें कहा है—'धर्मके स्थापनके वास्ते युग युगमें मैं होता हूँ स्वेच्छासे गर्भादिक दुःखोंसे रहित ॥भावनः॥'सबभोक्ता जीवोंको फल देनेवाला१॥भर्ता॥ प्रपञ्चको अधिष्ठान होके धारण करे १ ॥ प्रभवः॥ जिससे पञ्चमहाभूत अपने विस्तारसमेत पैदा-होयँ अवतारादिक जिसके उत्तम जन्म हैं १॥ प्रभुः ॥ सब तरहकी कृपामें अत्यन्त सामर्थ्यवान् १॥ ईश्वरः ॥ उपाधिरहित जिसका ऐश्वर्य है यही सबका ईश्वर है ॥ १७ ॥

स्वयंभूः शम्भुरादित्यः पुष्कराक्षो महास्वनः ॥
अनादिनिधनो धाता विधाता धातुरुत्तमः ॥ १८ ॥

स्वयंभूः ॥ जो आप ही विना किसीकी सहायताके प्रगट होय १॥जो आप स्वतंत्र होय २॥ शम्भुः ॥ जो भक्तोंको सुख देते१॥ आदित्यः ॥ सूर्यमण्डलमें जो सुवर्णमय पुरुष बैठा है १ बारहों सूर्यमें विष्णुनाम सूर्य हों, सूर्यके नाम विष्णु १ शक्र २ अर्यमा३ धाता ४त्वष्टा ५ पूषा६ विवस्वान् ७ सविता ८ मित्र ९वरुण१० अंशुमान् ११ भग १२॥ आदित्यानामहं विष्णुः॥गीताजीमें कहा है२ अखंडितपृथ्वीके पति जैसे एक सूर्य अनेक जलपात्रमें अनेक

दिखाई देते हैं वैसे एक आत्मा अनेकरूप होके अनेक शरीरमें देखाई देते हैं ॥ पुष्कराक्षः ॥ कमलके पत्रसे हैं नेत्र जिसके १॥४० नाम ॥ महास्वनः॥जिसका शब्द बड़ा है १ ॥ जिसका शब्द वेद है २ ॥ अनादिनिधनः॥जिसके जन्म और नाश नहीं १॥ धाता ॥ शेषनाग और कच्छप और सूर्यचंद्ररूप होकर जगत्को धारण पोषण करनेवाले यानी विधाता ॥ कर्म और कर्मके फलोंका रचनेवाला १॥ कर्म दर्शपौर्णमासादिक यज्ञ और उनके फल स्वर्गादिकके बनानेवाले १ ॥ शेषनागादिकके धारण करनेवाले २ ॥ धातुरुत्तमः ॥ पृथिव्यादिक सब धातुओंसे उत्तम चैतन्यरूपधातु १ ब्रह्मासेही उत्तम यह दो नाम हैं, एक धातु दूसरा उत्तम कार्य कारणरूपसे जगत्के धारणकरनेवाले । चैतन्य उत्तम सब ऊपर जानेवाले हिरण्यगर्भादिकोंसे उत्तम भी नाम बहुत ऊपर जानेवाले । भाष्यकार एक ही नाम गिनते हैं ॥ १८ ॥

अप्रमेयो हृषीकेशः पद्मनाभोऽमरप्रभुः ॥
विश्वकर्मा मनुस्त्वष्टा स्थविष्ठः स्थविरो ध्रुवः॥१९॥

अप्रमेयः ॥ जिसकी प्रमा नाम यथार्थ ज्ञान प्रत्यक्ष अनुमान उपमान शब्दादिकोंसे न हो सके १ ॥ हृषीकेशः ॥ इंद्रियोंके स्वामी १ सूर्यचन्द्ररूप होके अपने केश नाम किरणसे जगत्का भला करते हैं २ ॥ महाभारतके दानधर्ममें प्रमाण है–"सूर्याचंद्रमसोः शश्वदंशुभिः केशसंज्ञितैः । बोधयन्स्वापयंश्चैव जगदुत्तिष्ठते पृथक् ॥ बोधनात्स्वापनाच्चैव जगतो हर्षणं भवेत् । हृषीकेशोऽहमीशानो वरदो लोकभावनः ॥" पद्मनाभः ॥ जिनकी नाभिमें सब जगत्का कारणरूप कमल है १ ॥ अमरप्रभुः ॥ देवताओंके स्वामी १ ॥ विश्वकर्मा ॥ जिसकी क्रिया जगत् है १ ॥ जिसकी

शक्तिसे सब जगत् क्रिया करते हैं २ ॥ जैसे विश्वकर्मा अपनी शक्तिसे सब विचित्र काम करते हैं वैसे ईश्वर भी अपनी मायासे चित्र विचित्र रचना करते हैं इसवास्ते विश्वकर्मा नाम है ३॥ ५० नाम ॥ मनुः ॥जो मनन करे सो मनु १॥मंत्ररूप २॥प्रजापतिमनु ३॥त्वष्टा ॥ जो संहारकालमें सब संसारको सूक्ष्मरूप करके अपनेमें मिलाले १ ॥ स्थविष्ठः स्थूलोंसे बहुत स्थूल १॥ स्थविरः॥ पुराने १ ॥ ध्रुवः ॥ जो सदा अचल रहे यह दोनो पदोंसे एक नाम ठहरा ॥ पुराने कैसे कि अचल ॥ १९ ॥

अग्राह्यः शाश्वतः कृष्णो लोहिताक्षः प्रतर्दनः ॥
प्रभूतस्त्रिककुब्धाम पवित्रं मंगलं परम् ॥ २० ॥

अग्राह्यः ॥ जिसका ग्रहण इंद्रियोंसे न हो सके १ ॥ शाश्वतः॥ सब कालमें रहनेवाले ॥ कृष्णः॥ कृषि नाम सत्ता न नाम सुख ॥ प्रमाण–"कृषिर्भूवाचकः शब्दो णश्च निर्वृतिवाचकः । विष्णुस्तद्भावयोगाच्च कृष्णो भवति शाश्वतः ॥ १ ॥" अर्थात् सत्तारूप और सुखरूप है १॥जिसका वर्ण श्याम है २॥ लोहिताक्षः ॥ लाल डोरे हैं जिसकी आंखमें १ ॥ प्रतर्दनः ॥ प्रलयमें जगत्के नाशकर्ता १॥ प्रभूतः ॥ सब ऐश्वर्यसे पूर्ण १ ॥ ६० नाम॥ त्रिककुब्धाम ॥ ऊपर नीचे बीच तीनों दिशाके आधार वा उनके प्रकाश करनेवाले १ ॥ ॥ पवित्रम् ॥ पवित्र करनेवाले ऋषिरूप देवतारूप मंत्ररूप होके १॥ मंगलं परम् ॥ सब मंगलोंसे उत्तम १ ॥ विष्णुपुराणका प्रमाण "अशुभानि निराचष्टे तनोति शुभसंततिम् ॥ स्मृतिमात्रेण यत्पुंसां ब्रह्म तन्मंगलं विदुः "॥ २० ॥

ईशानः प्राणदः प्राणो ज्येष्ठः श्रेष्ठः प्रजापतिः ॥
हिरण्यगर्भो भूगर्भो माधवो मधुसूदनः ॥ २१ ॥

ईशानः ॥ जीवमात्रके प्रेरक १ ॥ प्राणदः ॥ प्राणके दाता १ कालरूप होके प्राणके हर्ता २ प्राण नाम इंद्रियोंको दर्शन श्रवण मनन करनेसे शुद्ध करनेवाले ३ इंद्रियोंको छेदन करनेवाले नाम अंधा गूँगा बहिरा करनेवाले ४ ॥ प्राणः ॥ श्वास लेनेवाले १ जीवरूप वा परमात्मारूपसे २ प्राणस्वरूप ३ ॥ ज्येष्ठः ॥ सबके बड़े बूढ़े १ ॥ श्रेष्ठः ॥ अतिप्रशंसायोग्य १ ॥ प्रजापतिः ॥ ईश्वरूप होके ब्रह्मासे लेकर तिनुकेतक सब प्रजाके पति नाम पालनहार १॥ हिरण्यगर्भः॥ सुवर्णरूप अंडेके भीतर रहनेवाले १ ब्रह्मारूप २॥७०नाम॥ भूगर्भः॥सबकी आधारभूत पृथ्वी जिसके गर्भमें है १॥ माधवः॥लक्ष्मीके पति १ मधुविद्या जो छांदोग्य उपनिषद्में कही है उस विद्यासे जो जाननेवाले वा विद्यासे जो जाना जाय २ ॥ मधुसूदनः ॥ मधु नाम दानवके हंता ॥ २१ ॥

ईश्वरो विक्रमी धन्वी मेधावी विक्रमः क्रमः ॥
अनुत्तमो दुराधर्षः कृतज्ञः कृतिरात्मवान् ॥ २२ ॥

ईश्वरः ॥ सर्वशक्तिमान् १॥ विक्रमी॥ शूर१॥ धन्वी॥ धनुषधारी १॥ भगवतवचनसे प्रमाण ॥ रामः शस्त्रभृतामहम् ॥ मेधावी ॥सब शास्त्रोंके धारण करनेकी बुद्धि रखनेवाले १॥ विक्रमः॥तीनों लोकोंमें पांव फैलानेवाले विराट्रूप १ ॥ वि—नाम पक्षी गरुड़पर सवार होके चलनेवाले२॥ क्रमः ॥जो सबमें आप ही चले १॥प्राणियोंके चलानेवाले २ ॥ अनुत्तमः॥ जिससे कोई दूसरा उत्तम नहीं ॥ १ ॥८०नाम ॥ दुराधर्षः ॥ जिसको दैत्यलोग अपना प्रताप न दिखाय सकें १ ॥ कृतज्ञः ॥जीवोंके कर्मोंके जाननेवाले १॥ थोड़े पूजनको बहुत करके माननेवाले, फल फूल पत्र चढ़ानेसे मुक्तिफल देनेवाले २॥कृतिः ॥ सबको पुरुषार्थरूप १॥पुरुषोंके क्रियारूप २॥ पुरुषकी क्रियामें जो प्रेरक समझा जाय क्योंकि सबके

आधाररूप हैं ॥ ३ ॥ आत्मवान् ॥ अपनी महिमामें जो सदा स्थित रहे ॥ २२ ॥

सुरेशः शरणं शर्म विश्वरेताः प्रजाभवः ॥
अहः संवत्सरो व्यालः प्रत्ययः सर्वदर्शनः ॥ २३ ॥

सुरेशः ॥ देवताओंके स्वामी १ ॥ शरणम् ॥ दुःखीजनोंके दुःख हर्ता १॥ शर्म ॥ परमानन्दरूप १ ॥ विश्वरेताः ॥ जगत्के कारण १ ॥ प्रजाभवः ॥ सब प्रजाके उत्पन्न करनेवाले १ ॥ अहः ॥ प्रकाशरूप दिनकी तरह १ ॥ संवत्सरः ॥ कालरूप विष्णु १॥९० नाम ॥ व्यालः ॥ सांपकी तरह जो पकड़नेमें न आवे जैसे मस्त हाथी नहीं पकड़ा जाय वैसे दैत्यादिक उनको नहीं वश कर सकते १ ॥ प्रत्ययः ॥ प्रतीतिरूप १ ॥ सर्वदर्शनः ॥ सबकी आँखोंसे आत्मारूप होकर आप देखनेवाले ॥ २३ ॥

अजः सर्वेश्वरः सिद्धः सिद्धिः सर्वादिरच्युतः ॥
वृषाकपिरमेयात्मा सर्वयोगविनिःसृतः ॥ २४ ॥

अजः॥जिसका जन्म नहीं १॥ सर्वेश्वरः॥सब ईश्वरोंके ईश्वर१॥ सिद्धः ॥ सदा बने बनाये जैसे उचित हैं वैसे तैयार १॥सिद्धिः ॥ सबजगत्में चैतन्यरूप १॥सबसे उत्तम फलरूप क्योंकि स्वर्गादिक नाशवान् हैं और परमेश्वरकी प्राप्ति अविनाशी है २॥ सर्वादिः ॥ सबजातके आदि १॥ अच्युतः॥जिसका सामर्थ्य तीनों कालमें न घटे १॥ १०० नाम ॥ वृषाकपिः॥ वृष नाम धर्म जो सबकामनाको बरसावे १॥क—नाम जल जो पृथ्वीकी रक्षा जलसे करे सो कपि अर्थात् वराह भगवान् दोनों पदसे एक नाम वृषाकपि भया तिसका अर्थ धर्मरूप ॥ इसमें व्यासका प्रमाण है— "कपिर्वराहः श्रेष्ठश्च धर्मश्च वृष उच्यते ॥ तस्माद् वृषाकपिं प्राह

कश्यपो मां प्रजापतिः ॥ १ ॥ अमेयात्मा ॥ जिसके स्वरूपका कोई प्रमाण न करसके कि इतना है ॥१ ॥ सर्वयोगविनिःसृतः ॥ सब संबंधसे रहित १ सब शास्त्रमें कहे हुए जो योग हैं उनसे जाने गये २ ॥ २४ ॥

वसुर्वसुमनाः सत्यः समात्मा संमितः समः ॥
अमोघः पुंडरीकाक्षो वृषकर्मा वृषाकृतिः ॥ २५ ॥

वसुः ॥ प्राणियोंमें वसनेवाले १ जिसमें सब प्राणी वसैं २ आठों वसुओंमें पावक नाम वसु ३ ॥ वसुमनाः ॥ उत्तम है मन जिसका १ प्रशस्त रागद्वेषादि क्लेशसे और मानमदमोहादिक उपक्लेशादिसे रहित ऐसा मन जिसका होय सो २ ॥ सत्यः ॥ सत्यरूप जो तीनों कालमें अबाधित है १ मूर्तिमान् अमूर्तिमान् २ स नाम प्राण त् नाम अन्न य नाम सूर्य प्राणरूप सूर्यरूप अन्नरूप है ३ भक्तोंमें जो क्षमाशील है ४ ॥ समात्मा ॥ सम नाम रागद्वेषादिकसे रहित है आत्मा जिसकी १ सब भूतोंमें एक है आत्मा जिसको २ ॥ संमितः ॥ सब पदार्थोंसे मित नाम प्रमाण किये गये १ असंमितनाम किसी पदार्थसे जिसका प्रमाण नहीं हो सकता॥२॥समः॥सबकालमें सब विकारसे रहित १ मा नाम लक्ष्मी के सहित २॥ अमोघः॥जिसके पूजा स्तुति स्मरण निष्फल नहीं १ जिसका संकल्प व्यर्थ नहीं होता २ ॥ ११० नाम॥ पुंडरीकाक्षः ॥ हृदयकमलमें अक्ष नाम घर है जिसका १ कमलके पत्रसे नेत्र हैं जिसके२॥ वृषकर्मा॥ धर्मयुक्त हैं कर्म जिसके १॥वृषाकृतिः॥ धर्मके वास्ते जो आकृति नाम अवतार धारण करते हैं १ ॥ २५ ॥

रुद्रो बहुशिरा बभ्रुर्विश्वयोनिः शुचिश्रवाः ॥
अमृतः शाश्वतःस्थाणुर्वरारोहो महातपाः ॥ २६ ॥

रुद्रः ॥ संहारकालमें प्रजाको रुदन करानेवाले १ रुदन नाम दुःख जो दुष्टोंको दुःख दे सो रुद्र २ रु नाम दुःख वा दुःखका कारण उसको जो द्रवावै नाम नाश करै सो रुद्र३॥लिंगपुराणका वचनप्रमाण—"रुदुःखं दुखहेतुं वा विद्रावयति यः प्रभुः । रुद्र इत्युच्यते तस्माच्छिवः परमकारणम् ॥ १ ॥" बहुशिराः॥अनंतशिर वाले १॥ बभ्रुः ॥ लोकके धारणकरनेवाले वा पालन करनेवाले१॥ विश्वयोनिः ॥ जगत्के कारण १ ॥ शुचिश्रवाः ॥ पवित्रकारक हैं जिनके नाम वा यश १॥ अमृतः॥ जो न मरै१॥शाश्वतः१॥स्थाणुः जो निरंतर स्थिर १ ॥ १२० नाम ॥ वरारोहः ॥ उत्तम है आरोह नाम अंक जिसका १ श्रेष्ठ है शेषशय्या जिसके वास्ते २ श्रेष्ठ है जीवोंका आरोह नाम चढ़ना जिस पदमें अर्थात् जिस पदको पहुँचके फेर न आवै ३॥ महातपाः ॥ समग्रसृष्टिका पूर्णज्ञान है जिसको १ बड़ा है जिसका ऐश्वर्य प्रताप २ ॥ २६ ॥

सर्वगः सर्वविद्भानुर्विष्वक्सेनो जनार्दनः ॥
वेदो वेदविदव्यंगो वेदांगो वेदवित्कविः ॥ २७ ॥

सर्वगः ॥ जो सब जगह कारणरूप होके व्याप्त है १ सर्ववित्॥ सब जाननेवाला १ सत्यसंकल्प है इसवास्ते जो संकल्प करते हैं सोई होता २ ॥ भानुः ॥ जो प्रकाशमान है जो सर्वविद् और प्रकाशमान है सोई ॥ सर्वविद्भानुः ॥ दोनों पद मिलके एक नाम हुआ ॥ विष्वक्सेनः ॥ जिसकी थोड़ी ही क्रियासे दैत्योंकी सेना विष्वक् नाम चारों तरफ भाग जाय १॥जनार्दनः॥ दुष्ट जनोंको जो मारै १ अथवा नरकादिमें डालै २ भक्त लोग जिससे माँगै३॥ वेदः॥ जो अपने मार्गको जतावै१॥ वेदवित्॥वेदके अर्थको यथार्थ जाननेवाले १ वेदके अर्थको धारण करनेवाले २ ॥ अव्यंगः॥

व्यक्तिरहित ॥ वेदांगः ॥ जिसके अंगसे वेद उत्पन्न भये हैं १ वेदरूप २ ॥ १३० नाम ॥ वेदवित् वेदको विचारनेवाले १ ॥ कविः॥जो पदार्थइंद्रियोंसे न देखा जाय उसके देखनेवाले१॥२७॥

लोकाध्यक्षः सुराध्यक्षो धर्माध्यक्षः कृताकृतः ॥
चतुरात्मा चतुर्व्यूहश्चतुर्दंष्ट्रश्चतुर्भुजः ॥ २८ ॥

लोकाध्यक्षः ॥ सब लोकके प्रधान नाम द्रष्टा १ सब लोकके योगक्षेम करनेवाले २ ॥ सुराध्यक्षः ॥ देवताओंके स्वामी १ उनके शत्रुओंके हंता और मनोरथोंके देनेवाले २॥ धर्माध्यक्षः ॥ धर्म और अधर्मको साक्षात् देखनेवाले और उसका फलदेनेवाले१ ॥कृताकृतः ॥ कृत कार्यरूप अकृत कारणरूप १॥ चतुरात्मा॥ स्वर्गादिकमें पृथक् चार चार मूर्ति जिसकी हैं; जैसे सृष्टिकालमें ब्रह्मा १ दक्षादिप्रजापति २ कांल ३ सब जीव ४ और पालन-कालमें विष्णु१मन्वादिक २ काल ३ सब भूत ४, संहारकालमें रुद्र १ मृत्यु २ काल ३ सब भूत ४ यह तीनों कालमें भगवान्की विभूति है विष्णु पुराणमें लिखा है १॥ चतुर्व्यूहः ॥ चार हैं व्यूह नाम विभाग जिसके वासुदेव १ संकर्षण २ प्रद्युम्न ३ अनिरुद्ध ४ चार रूप हैं जिसके१॥ चतुर्दंष्ट्रः॥चार डाढ़वाले श्रीनृसिंह १ चार डाढ़वाले वराह भगवान् २ ॥ चतुर्भुजः ॥ चारभुजावाले १ ॥ १४० नाम ॥ २८ ॥

भ्राजिष्णुर्भोजनं भोक्ता सहिष्णुर्जगदादिजः ॥
अनघो विजयो जेता विश्वयोनिः पुनर्वसुः॥२९ ॥

भ्राजिष्णुः ॥ सदा प्रकाशरूप १॥ भोजनम् ॥ भोज्यरूप जो माया है सो है भोजन१॥ भोक्ता ॥ पुरुषरूप होकर मायाके भोग-नेवाले १ ॥ सहिष्णुः ॥ दैत्योंको हरावनेवाले १॥ जगदादिजः ।

हिरण्यगर्भरूप होके जगत्के आदिमें प्रगट होनेवाले ॥ अनघः ॥ पापदुःखव्यसनसे रहित १॥ विजयः॥ज्ञानवैराग्यऐश्वर्यादिगुणोंसे जगत्को जीतनेवाले१॥ जेता॥ स्वभावकरके सब भूतोंको अच्छी तरह जीतनेवाले १॥ विश्वयोनिः ॥ विश्व है योनि जिसकी १॥ विश्वरूपसे कार्यरूप और योनिरूपसे कारणरूप है २॥ पुनर्वसुः ॥ वारंवार जीवरूप होके शरीरमें वसनेवाले १॥१५०नाम ॥२९॥

उपेंद्रो वामनः प्रांशुरमोघः शुचिरूर्जितः ॥
अतींद्रः संग्रहः सर्गो धृतात्मा नियमो यमः॥३०॥

उपेंद्रः ॥ इंद्रके समीप छोटे भाई बनके रहनेवाले १ उपरी नाम गोलोकके इंद्र २ ॥ वामनः ॥ वामन अवतार १ जिसका भजन देवता करैं २॥ प्रांशुः ॥ बहुत लंबे चौड़े बलिके दानसमयमें जो रूप धरा था १॥ अमोघः ॥जिसका व्यापार व्यर्थ नहीं १ ॥ शुचिः ॥ स्मरण पूजा स्तुति करनेवालोंको जो पवित्र करै १ ॥ ऊर्जितः॥ परमबलवान् १॥ अतींद्रः॥ स्वाभाविक ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्यादिकसे इंद्रको जीतनेवाले १॥ संग्रहः ॥ संहारकालमें सबको बटोरनेवाले १॥ सर्गः॥ सृष्टिरूप १ सृष्टिके कारणरूप २ ॥ धृतात्मा ॥ एकरूपसे स्थिर है आत्मा नाम स्वरूप जिसका १ ॥ १६० नाम ॥ नियमः ॥ अपने अपने अधिकारमें प्रजाको लगानेवाले ॥ यमः ॥ सबके हृदयमें बैठके सबको अपने अपने कामोंमें लगानेवाले १ ॥ ३० ॥

वेद्यो वैद्यः सदायोगी वीरहा माधवो मधुः ॥
अतींद्रियो महामायो महोत्साहो महाबलः ॥३१॥

वेद्यः॥ मोक्षार्थियोंके जानने योग्य१ ॥वैद्यः॥ वेदादि सब विद्या-

ओंसे जानने योग्य १॥ सदायोगी ॥ सदा आत्मज्ञानका योग है जिसको १॥ वीरहा ॥ धर्मसेतुके नाशक जो असुर वीर हैं उनके हंता १॥ माधवः ॥ मा नाम ब्रह्मविद्या उसके पति हरिवंशका प्रमाण—"मा विद्या च हरेः प्रोक्ता तस्या ईशो यतो भवान् ॥ तस्मान्माधवनामासि धवः स्वामीति शब्दितः" १॥ मधुः॥ मधु नाम अमृत उसकी तरह अत्यंत आनंद देनेवाले १॥ अतीं-द्रियः ॥ इन्द्रियोंकी जहां पहुँच नहीं १॥ महामायः ॥ सब माया-वियोंसे बड़े मायावी १॥ १७० नाम ॥ महोत्साहः ॥ जगत्के उत्पत्ति स्थिति प्रलय करनेमें बड़ा उत्साह जिसको १॥ महाबलः॥ सब बलवानोंसे बली १ ॥ ३१ ॥

महाबुद्धिर्महावीर्यो महाशक्तिर्महाद्युतिः ॥
अनिर्देश्यवपुः श्रीमानमेयात्मा महाद्रिधृक् ॥३२॥

महाबुद्धिः ॥ सब बुद्धिमानोंसे बड़े बुद्धिमान् १॥ महावीर्यः॥ जिसका अविद्यारूप बड़ापराक्रम जो गतिका कारण है १॥महा-शक्तिः॥ बडे सामर्थ्यवाले १॥ महाद्युतिः ॥ भीतर बाहर महा-प्रकाशरूप १॥ अनिर्देश्यवपुः ॥ जिसका शरीर ऐसा कहनेके योग्य नहीं है कि यही है १॥ श्रीमान् ॥ ऐश्वर्यरूपलक्ष्मीवाले १॥ अमेयात्मा ॥ जिनका आत्मा नाम बुद्धि प्रमाणसे बाहर है १॥ महाद्रिधृक् ॥ बडे पर्वतके उठानेवाले, समुद्रमथनमें कच्छप-रूपसे मंद्राचलको वा ब्रजरक्षामें कृष्णरूपसे गोवर्द्धनको धार-ण करनेवाले १ ॥ १८० ॥ नाम ॥ ३२ ॥

महेष्वासो महीभर्ता श्रीनिवासः सतांगतिः ॥
अनिरुद्धः सुरानंदो गोविंदो गोविदांपतिः ॥ ३३ ॥

महेष्वासः॥बड़ा है धनुष जिसका १॥ महीभर्ता ॥ वराहरूपसे पृथ्वीको धारण करनेवाले १॥ श्रीनिवासः ॥ जिसकी छातीमें स्वर्णरेखारूप लक्ष्मी वसे १॥ सतांगतिः॥ सत् नाम वैदिकसाधुओंके गति नाम मोक्षदाता १॥ अनिरुद्धः ॥ जिसको कोई शत्रु रोक न सके १॥ सुरानंदः ॥ देवताओंके आनन्द देनेवाले १॥ गोविंदः ॥ वराहरूपसे पृथ्वीके धारण करनेवाले १ गायोंके इंद्र २ गो नाम वेदरूपवाणीसे पावनेवाले ३॥ गोविदांपतिः ॥ वेदवाणी जाननेवालोंके पति १ ॥ ३३ ॥

मरीचिर्दमनो हंसः सुपर्णो भुजगोत्तमः ॥
हिरण्यनाभः सुतपाः पद्मनाभः प्रजापतिः ॥ ३४ ॥

मरीचिः॥ तेजस्वियोंमें बडे तेजस्वी १॥ दमनः॥यमादिकरूपसे जो प्रजा अधिकार पायके प्रमत्त हो उनके दंड देनेवाले १॥ १९० नाम ॥ हंसः ॥ मैं वही हूँ ऐसी भावना करनेवालोंको संसारबंधनसे छुड़ानेवाले १ सब शरीरोंमें बिंबरूप और प्रतिबिंबरूपसे रहनेवाले २ ॥ सुपर्णः ॥ सबके हृदयमें जो भलीभाँति गमन करै १ सुन्दर पंखवाले गरुडजी२ ॥ भुजगोत्तमः ॥ शेषवासुकी रूपसे भुजंग नाम टेढ़ेचलनेवालोंमें उत्तम १॥ हिरण्यनाभः ॥ सुवर्णके तरह सुन्दर है नाभि जिसकी १ ॥ हि नाम हितकारक रण्य नाम रतिकारक है नाभि जिसकी ध्यान करनेवालोंको २॥ सुतपाः ॥ बदरिकाश्रममें नरनारायणरूपसे उत्तम ज्ञानरूप तप करनेवाले १॥ मन और इंद्रियोंका एकाग्र होना परम तप है यह स्मृतिमें लिखा है ॥ पद्मनाभः ॥ कमलके तरह सुन्दर गोल है नाभि जिसकी १ हृदयकमलमें प्रकाशमान २॥ प्रजापतिः ॥ प्रजाओंके पति १ ॥ ३४ ॥

अमृत्युः सर्वदृक् सिंहः संधाता संधिमान् स्थिरः ॥
अजो दुर्मर्षणः शास्ता विश्रुतात्मा सुरारिहा ॥ ३५ ॥

अमृत्युः ॥ मृत्यु नाम विनाश उसका कारण तिससे रहित १॥ सर्वदृक् ॥ सब जगत्के शुभाशुभ कर्म देखनेवाले अपने स्वाभाविक ज्ञानशक्तिसे १॥ सिंहः॥ दैत्यरूपमृगोंके हंता १॥ २०० नाम॥ संधाता ॥ जीवोंके कर्मके पूरे फल देनेवाले १ ॥ संधिमान् ॥ जीवरूप होके संधि नाम कर्मोंके फल भोगनेवाले १ ॥ स्थिरः ॥ सदा एकरूप १॥ अजः॥न होनेवाले १॥दुर्मर्षणः॥जिसके प्रतापको दानवादि सह न सकें ॥ शास्ता ॥ श्रुति स्मृतिशास्त्रोंकरके सबके शिक्षा देनेवाले ॥ विश्रुतात्मा ॥ बहुत प्रसिद्ध सत्यज्ञानादिकरूप आत्मा १ ॥ सुरारिहा ॥ देवताओंके शत्रुनाशक ॥ ३५ ॥

गुरुर्गुरुतमो धाम सत्यः सत्यपराक्रमः ॥
निमिषोऽनिमिषः स्रग्वी वाचस्पतिरुदारधीः ॥ ३६ ॥

गुरुः ॥ सब विद्याके उपदेश करनेवाले १॥ सबके पिता २॥ गुरुतमः॥ ब्रह्मादिकोंको ब्रह्मविद्या सिखानेवाले १॥ २१० नाम ॥ धाम ॥ ज्योतिरूप १ सब कामनाके रहनेकी जगह २॥ सत्यः ॥ सत्यवचनरूप १ जगत् जो दिखाई देता है उसमें परमसत्यरूप आप हैं ॥ सत्यपराक्रमः ॥ सत्य है पराक्रम जिसका ॥ पर नाम शत्रु उसको जो दबावे सो पराक्रम कहावे १ ॥ निमिषः ॥ योगनिद्रासे आँख मूँदनेवाले १ ॥ अनिमिषः॥ नित्य प्रबुद्धस्वरूप १ मत्स्य अवतारमें पलकरहित २ ॥ स्रग्वी ॥ पञ्चतन्मात्रारूपी वैजयंतीमालावाले १ ॥ वाचस्पतिः ॥ उदारधीः ॥ वाणीके

पति, उदार नाम सब पदार्थके ज्ञाता है बुद्धि जिसकी १ ॥ यह दोनों पदसे एक नाम है ॥ ३६ ॥

अग्रणीर्ग्रामणीः श्रीमान्न्यायो नेता समीरणः ॥
सहस्रमूर्द्धा विश्वात्मा सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥ ३७ ॥

अग्रणीः ॥ मुमुक्षु लोगोंके अग्रनाम उत्तम पद देनेवाले १ ॥ ग्रामणीः ॥ चतुर्विधभूतग्रामके नायक १ ॥ चार प्रकारके भूत हैं अंडज–अंडेसे जो उत्पन्न हो पक्षी सर्पादिक १, पिंडज–मनुष्य पश्वादिक २, स्वेदज–जुआं मच्छर कीडे ३, उद्भिज्ज–वृक्षलतादिक ४ ॥ श्रीमान् ॥ सबसे अधिक शोभावाले १ ॥ २२० नाम ॥ न्यायः॥ तर्कशास्त्रसे प्रमाणपूर्वक जिसका ज्ञान होय १ ॥ नेता ॥ जगत्को निबाहनेवाले १॥ समीरणः ॥ प्राणवायुरूपसे सब जीवों-के प्रेरक१॥ सहस्रमूर्द्धा ॥ अनंत हैं शिर जिसके१॥ विश्वात्मा ॥ सब जगत्के आत्मा अंतर्यामीरूप १॥ सहस्राक्षः ॥ अनंतनेत्रवाले १ अनंत इंद्रियवाले २ ॥ सहस्रपात् ॥ अनंत पैरवाले १ ॥ ३७ ॥

आवर्त्तनो निवृत्तात्मा संवृतः संप्रतर्दनः ॥
अहःसंवर्त्तको वह्निरनिलो धरणीधरः ॥ ३८ ॥

आवर्तनः ॥ संसारचक्रके घुमावनेवाले १ ॥ निवृत्तात्मा ॥ जिसका आत्मा नाम स्वरूप संसारबंधनसे निवृत्त है १॥संवृतः॥ मायासे ढके हुए १॥२३० नाम ॥ संप्रतर्दनः ॥ रुद्रकालादिकरू-पसे जगत्के संहार करावनेवाले १ ॥ अहःसंवर्तकः ॥ दिनके करनेवाले सूर्य १ ॥ वह्निः ॥ अग्निरूप होके देवताओंको आहुति पहुँचानेवाले १॥ अनिलः ॥ जो नाश न होय १ वायुरूप २जैसे वायु सुगंध दुर्गंधको ग्रहण करके आप शुद्ध रहता है वैसे पुण्य-पापसे पृथक् रहनेवाले १॥ धरणीधरः ॥ शेषरूपसे अथवा वराह रूपसे पृथ्वीके धारण करनेवाले ॥ ३८ ॥

सुप्रसादः प्रसन्नात्मा विश्वधृग्विश्वभुग्विभुः ॥
सत्कर्त्ता सत्कृतः साधुर्जह्नुर्नारायणो नरः ॥ ३९ ॥

सुप्रसादः ॥ सुंदर है प्रसाद नाम रीझ जिसकी जैसे शिशुपालादि शत्रुओंको भी मुक्ति दी १ ॥ प्रसन्नात्मा ॥ रजोगुण तमोगुणसे रहित आत्मा नाम अंतःकरण जिसका १ दयालु स्वभाववाले २ पूर्णकाम होनेसे प्रसन्न है आत्मा जिसकी ३ ॥ विश्वधृक् ॥ ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्यादिकसे जगत्को तुच्छ जाननेवाले १ ॥ विश्वभुक् ॥ प्रलयकालमें महाकालरूपसे जगत्को भोजनकरनेवाले १ विष्णुरूपसे जगत्के पालक २ ॥ विभुः ॥ अनेकरूप होनेवाले १॥ २४० नाम ॥ सत्कर्ता ॥ सत्कार करनेवाले १ ॥ सत्कृतः ॥ पूजितोंके पूजित १ ॥ साधुः लोक वेदके अनुकूल आचरण करनेवाले १ सब चहोती वस्तुके सिद्ध करनेवाले २ ॥ जह्नुः ॥ संसारकालमें जनोंके हंता १ विमुख जनोंको त्यागनेवाले २ भक्तोंको परमपदके दाता ३ ॥नारायणः ॥ नर नाम आत्मा तिससे उत्पन्न भये पंचभूतादिको नार कहते हैं, अयन नाम घर पंचभूतमें कारणरूप होके जो रहै उसको नारायण कहै १ ॥ महाभारतका– प्रमाण "नराज्जातानि तत्त्वानि नाराणीति विदुर्बुधाः ॥ तान्येव चायनं तस्य तेन नारायणः स्मृतः" ॥ १ ॥ प्रलयकालमें नर नाम जीवोंके अयन नाम निवासस्थान २ नार नाम जलमें अयन नाम घर है जिसके अर्थात् हिरण्यगर्भरूप ३ जीवसमूह नार तिसमें वसे सो नारायण ४ जीवसमूहका अयन नाम ज्ञान है जिसको सर्वज्ञरूप ॥ नरः ॥ जीवोंको कर्ममें लगानेवाले १ कर्मका फल देनेवाले २ ॥ ३९ ॥

असंख्येयोऽप्रमेयात्मा विशिष्टः शिष्टकृच्छुचिः ॥
सिद्धार्थः सिद्धसंकल्पः सिद्धिदः सिद्धिसाधनः॥ ४० ॥

असंख्येयः ॥ जिसके नामरूप कर्म गिनतीमें न आवैं १ ॥ अप्रमेयात्मा ॥ जिसके स्वरूपका यथार्थ ज्ञान न हो सकै १ ॥ विशिष्टः ॥ सबसे उत्तम बडे शिष्ट १॥ शिष्टकृत् ॥ शिक्षाकरनेवाले १ शिष्टजनोंके पालक ॥ २५० नाम ॥ शुचिः ॥ मायासे रहित १ ॥ सिद्धार्थ ॥ सिद्ध है मनोरथ जिसका १ ॥ सिद्धसंकल्पः ॥ सत्य है संकल्प जिसका १ ॥ सिद्धिदः ॥ कर्मके फल तथा योग देनेवाले १ ॥ सिद्धिसाधनः ॥ भक्तोंको अणिमादिक सिद्धि और मुक्तिके दाता १ ॥ ४० ॥

वृषाही वृषभो विष्णुर्वृषपर्वा वृषोदरः॥
वर्धनो वर्द्धमानश्च विविक्तः श्रुतिसागरः ॥ ४१ ॥

वृषाही ॥ वृष नाम धर्म द्वादशाहादिकयज्ञके अह नाम प्रकाश अर्थात् आपही उसके कर्ता हैं और भोक्ता भी हैं १ ॥ वृषभः ॥ भक्तोंकी कामनाके वरसने वाले १ ॥ विष्णुः ॥ लोकके आक्रमण करनेवाले १ ॥ वृषपर्वा ॥ जिसकी प्राप्ति ही धर्मसे होय १ ॥ वृषोदरः ॥ ब्रह्मादि सब प्रजा जिनके उदरसे उत्पन्न हो १ ॥ २६० नाम ॥ वर्द्धनः ॥ भक्तोंकी पूजाके फलको बढ़ानेवाले जैसे सुदामाके तंडुलका फल बढाया १ ॥ वर्द्धमानः ॥ जगत्रूप होके बढ़नेवाले १ ॥ विविक्तः ॥ वर्तमान होकर भी जगत्से न्यारे१ ॥ श्रुतिसागरः ॥ वेदके समुद्र जिसमें वेदशास्त्ररूपी समुद्र बास करे १ ॥ ४१ ॥

सुभुजो दुर्धरो वाग्ग्मी महेन्द्रो वसुदो वसुः ॥
नैकरूपो बृह द्रूपः शिपिविष्टः प्रकाशनः ॥ ४२ ॥

सुभुजः॥जिसकी भुजा जगत्की रक्षा करनेवाली बहुत सुंदर हैं १ ॥ दुर्धरः जिसको कोई धारण न कर सकै १ योगी लोग

जिसको ध्यानमें बहुत दुःखसे धारण नाम ठहराय सकैं १ ॥ वाग्ग्मी ॥ उत्तम वेदरूप वाणीके धारण करनेवाले १ ॥ महेंद्रः ॥ ईश्वरोंके ईश्वर १ ॥ वसुदः ॥ धनके देनेवाले १ ॥ वसुः ॥ धनस्वरूप १ मायाकरके अपने रूपको छिपानेवाले २ अधरमें वास करनेवाले ३ ॥ २७० नाम ॥ नैकरूपः ॥ जिसका एक रूप नहीं १ ॥ बृहद्रूपः ॥ बहुत बड़ा रूप वराहादिक १ ॥ शिपिविष्टः ॥ शिपिनाम पशु विष्ट नाम प्रवेश करनेवाले यज्ञपशुरूप १ शिनाम जल पि नाम पान करनेवाले अर्थात् जलकी शोषनेवाली किरनवाले सूर्यरूप २ अंतर्यामी ३ ॥ प्रकाशनः ॥ सबके प्रकाशक १ ॥ ४२ ॥

ओजस्तेजोद्युतिधरः प्रकाशात्मा प्रतापनः ॥
ऋद्धः स्पष्टाक्षरो मंत्रश्चंद्रांशुर्भास्करद्युतिः ॥ ४३॥

ओजस्तेजोद्युतिधरः ॥ ओज नाम बल तेज नाम शूरतादिगुण द्युति नाम प्रकाशबलशौर्यादिगुण और प्रकाशके धारण करनेवाले १ ॥ बलरूप तेजरूप द्युतिनाम ज्ञानके धारणकरनेवाले २ पहिले अर्थमें तीनों विशेषणोंका एक नाम है, दूसरे अर्थमें तीन नाम हैं ॥ प्रकाशात्मा प्रकाशरूप है मूर्ति जिसकी १ प्रतापनः ॥ सूर्यरूपसे जगत्के प्रकाशक १ सूर्यसंकर्षणादिरूपसे जगत्को भस्म करनेवाले २ ॥ ऋद्धः ॥ धर्म ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्यादिकसे पूर्ण १॥स्पष्टाक्षरः॥ स्पष्ट है अक्षर जिसका अर्थात् प्रणवरूप २॥ मंत्रः ॥ तीनोंवेदके मंत्ररूपी मंत्रसे जिसका ज्ञान होय १ ॥ २८० नाम ॥ चंद्रांशुः ॥ संसारके तापको चांदकी किरणवत् हरनेवाले ॥ १ ॥ भास्करद्युतिः ॥ सूर्यकी तरह जगत्के प्रकाशक १ ॥ ४३ ॥

अमृतांशूद्भवो भानुः शशबिंदुः सुरेश्वरः ॥
औषधं जगतः सेतुः सत्यधर्मपराक्रमः ॥ ४४ ॥

अमृतांशूद्भवः ॥ समुद्रमथन करके चंद्रमाको निकासनेवाले ॥ १ ॥ भानुः ॥ सदाप्रकाशमान १ ॥ शशबिंदुः ॥ शशनाम मृग बिंदु नाम चिह्न है जिसकी सो चंद्रमाकी तरह प्रजाको पोषणकरनेवाले १ ॥ सुरेश्वरः ॥ सु नाम सुन्दरफल र नाम दाता ऐसे जो देवता उनके ईश्वर १॥औषधम् ॥ संसाररूपरोगोंके औषध १ ॥ जगतः सेतुः ॥ जगत्के पार उतरनेके वास्ते सेतु १ जगत्के वर्णाश्रमधर्मके सेतु नाम मर्यादापालक २ ॥ सत्यधर्मपराक्रमः जिसके धर्म नाम ज्ञानवैराग्यादिक और पराक्रम सामर्थ्य सत्य है ॥ १ ॥ ४४ ॥

भूतभव्यभवन्नाथः पवनः पावनोऽनलः ॥
कामहा कामकृत्कांतः कामः कामप्रदः प्रभुः ॥४५॥

भूतभव्यभवन्नाथः ॥ भूत भविष्य वर्तमान तीनों कालके प्राणियोंके स्वामी १ उन प्राणियों करके जो प्रार्थित होय २ प्रलयंकालमें प्राणियोंके नाथ नाम नाश करनेवाले ३ प्रजाके सृष्टिकालमें आशिषदेनेवाले ४ स्थितिकालमें प्रजाको सत्कर्ममें लगानेवाले ५ ॥ २९० नाम ॥ पवनः ॥ पवित्र करनेवाले १ वायुरूप२॥ पावनः॥पवित्र करानेवाले जिसके भयसे वायु चलता है १ ॥ अनलः ॥ अन नाम प्राण ल नाम ग्रहण करनेवाला जीवरूप १नल नाम गंध उसकरके रहित २जिसका प्राण नहीं क्योंकि अनंत है ३ ॥ कामहा ॥ 'मुमुक्षुभक्तोंके' विषयकामनाके हंता १ हिंसकोंके साधुपीडादि कामनाके नाशक २ ॥ कामकृत् ॥ सात्त्विक भक्तोंकी कामना पूरी करनेवाले १ काम नाम प्रद्युम्नके

जनक २ ॥ कांतः ॥ मनोहररूप १ क नाम ब्रह्माको दूसरे परार्द्धके अंतमें नाश करनेवाले २ ॥ कामः ॥ मुमुक्षु लोग जिसकी कामना करैं १ ॥ कामदः ॥ भक्तोंकी कामनासे अधिक देनेवाले १ ॥ प्रभुः ॥ बहुत होनेवाले १ ॥ ४५ ॥

युगादिकृद्युगावर्तो नैकमायो महाशनः ॥
अदृश्यो व्यक्तरूपश्च सहस्रजिदनंतजित् ॥ ४६ ॥

युगादिकृत् ॥ युगसंवत्सरमासादिका करता १ युगोंका प्रारंभ करनेवाला २ ॥३०० नाम ॥ युगावर्त्तः ॥ सत्ययुगादिको वारंवार घुमानेवाले १ ॥ नैकमायः ॥ अनेक प्रकारकी माया रचनेवाले १ ॥ महाशनः ॥ प्रलयकालमें सब जगत्के खाने वाले १॥ अदृश्यः सबकी बुद्धि और इंद्रियोंसे लखा न जाय १ ॥ व्यक्तरूपः ॥ प्रगट है स्थूलरूप जिसका १ योगियोंके हृदयमें स्वयंप्रकाशरूपसे प्रगट होनेवाले २ ॥ सहस्रजित् ॥ हजारों असुरोंके जीतनेवाले १ ॥ अनंतजित् ॥ अनंतजीवोंको युद्धादि सब लीलामें जीतनेवाले १ ॥ ४६ ॥

इष्टोऽविशिष्टः शिष्टेष्टः शिखंडी नहुषो वृषः ॥
क्रोधहा क्रोधकृत्कर्ता विश्वबाहुर्महीधरः ॥ ४७ ॥

इष्टः ॥ परमानंदरूप होनेसे सबको प्रिय १ ॥ यज्ञादि करके पूजित २ ॥ अविशिष्टः ॥ सबके हृदयमें समानरूपसे अंतर्यामिरूप होके रहनेवाले १ ॥ शिष्टेष्टः ॥ शिष्ट नाम उत्तम जनोंके इष्ट १ शिष्टजन जिनको प्यारे हैं २ शिष्टजनोंकरके पूजित ३ ॥ ३१० नाम ॥शिखण्डी ॥ मोरमुकुटवाले १ ॥ नहुषः ॥ अपनी मायासे जीवोंको बांधनेवाले १ ॥ वृषः ॥ धर्मरूप होके कमनाके बरसानेवाले १ ॥ क्रोधहा ॥ साधुजनोंके क्रोधहंता १ ॥

क्रोधकृत् ॥ दुष्टोंके क्रोध बढ़ानेवाले १ ॥ कर्ता ॥ जगत्कर्ता १॥ क्रोधकृत ॥ नाम दुष्टजनोंके कर्ता नाम मारनेवाले ॥ दोनों पदसे एक नाम ॥ विश्वबाहुः ॥ जिसकी बाहु सबका आधार है १ ॥ सब तरफ जिसकी भुजा हैं २ ॥ महीधरः ॥ पृथ्वीके धारण करनेवाले १ पूजाक धारण करनेवाले २ ॥ ४७ ॥

अच्युतः प्रथितः प्राणः प्राणदो वासवानुजः ॥
अपांनिधिरधिष्ठानमप्रमत्तः प्रतिष्ठितः ॥ ४८ ॥

अच्युतः ॥ षड्भावविकारसे रहित ॥ छः विकार जन्म लेना १ अस्ति नाम रहना २ वर्धते नाम बढ़ना ३ विपरिणमते नाम रूपका बदल जाना ४ अपक्षीयते नाम घटना ५ नश्यते नाम नाश होना ६ ॥ प्रथितः ॥ पालनादिकमें प्रसिद्ध १ ॥ प्राणः ॥ प्रजाको प्राणरूपसे जिलानेवाले १ ॥ ३२० नाम ॥ प्राणदः ॥ सुरोंको बल देनेवाले १ असुरोंके बलके नाशक २ ॥ वासवानुजः ॥ इंद्रके छोटे भाई १ ॥ अपांनिधिः ॥ समुद्ररूपसे जलके घर १ ॥ अधिष्ठानम् ॥ जिसमें सब भूत वास करें कारणरूप ब्रह्म १ ॥ अप्रमत्तः ॥ कर्मके अनुकूल फल देनेमें सावधान १ ॥ प्रतिष्ठितः ॥ अपनी महिमामें स्थिर ॥ ४८ ॥

स्कंदः स्कंदधरो धुर्यो वरदो वायुवाहनः ॥
वासुदेवो बृहद्भानुरादिदेवः पुरंदरः ॥ ४९ ॥

स्कन्दः ॥ अमृतरूप होके बहनेवाले १ वायुरूप होके जगत्के शोषनेवाले २ ॥ स्कंदधरः ॥ धर्मपथके धारण करनेवाले १ ॥ धुर्यः ॥ सब जगत्का जन्म स्थिति लयरूपी बोझ उठानेवाले ॥ वरदः ॥ वांछित वरदेनेवाले १ वरनाम गऊ उसे दान देनेवाले यजमानरूप होके २ ॥ ३३० नाम ॥ वायुवाहनः ॥ सातों

वायुके चलानेवाले नाम सातों वायुके आवह १ प्रवह २ अनुवह ३ संवह ४ विवह ५ परावह ६ परिवह ७ ॥ सातों वायुके स्थान यह हैं-मेघ और पृथ्वीके बीचमें आवह १ मेघ और सूर्यके बीचमें प्रवह २ सूर्यचाँदके बीचमें अनुवह ३ चांद और नक्षत्रोंके बीचमें संवह ४ नक्षत्र और ग्रहोंके बीचमें विवह ५ ग्रह और सप्तऋषिके बीचमें परावह६सप्तऋषि और ध्रुवके बीचमें परिवह ७ ॥ वासुदेवः ॥ जो सबमें बसे वा सबको ढकेलने देवे नाम क्रीड़ा करे अथवा विवाह करे वा प्रकाश करे वा जिसकी सब स्तुति करे वा मुमुक्षुलोग जहां प्राप्त हों सो देव ॥ प्रमाण महाभारतका-" वासनात्सर्वभूतानां स्तुत्यो यो देवयोनिषु ॥ वासुदेवस्ततो ज्ञेयो योगिभिस्तत्त्वदर्शिभिः " १ ॥ बृहद्भानुः ॥ बडी है भानु नाम किरण जिसकी १चंद्र सूर्यमें प्रकाश करनेवाली और जगत्को प्रकाश करनेवाली २ ॥ आदिदेवः ॥ आदि नाम कारणरूप देव१॥ पुरंदरः ॥ देवताओंके शत्रुओंके पुर नाम गांवके विदारण करनेवाले १ ॥ ४९ ॥

अशोकस्तारणस्तारः शूरः शौरिर्जनेश्वरः ॥
अनुकूलः शतावर्त्तः पद्मी पद्मनिभेक्षणः ॥ ५० ॥

अशोकः ॥ शोकादिषडूर्मीसे रहित १ ॥ "क्षुत्पिपासा जरामृत्यू शोकमोहौ षडूर्मयः" ॥ तारणः ॥ संसारार्णवसे तारनेवाले १ ॥ तारः ॥ गर्भ जन्म जरा मृत्युके भयसे तारनेवाले १ ॥ शूरः ॥ बडे पराक्रमवाले १ ॥ शौरिः ॥ शूरसेनके कुलमें उत्पन्न १ ॥ ३४० ना० ॥ जनेश्वरः ॥ जन नाम जंतुके ईश्वर १ ॥ अनुकूलः ॥ आत्मारूपसे सबको अनुकूल १ जिसके कोई प्रतिकूल नहीं २ ॥ शातावर्त्तः ॥ धर्मकी

रक्षाके वास्ते सब पदार्थोंमें वर्त्तमान१ प्राणरूपसे सैकडों नाडियोंमें वर्त्तमान २ ॥ पद्मी ॥ पद्म है जिसके हाथमें ॥ १ ॥ पद्मनिभेक्षणः ॥ कमलकी रोशनी जिसकी आँखोंमें है १॥ ५० ॥

पद्मनाभोऽरविंदाक्षः पद्मगर्भः शरीरभृत ॥
महर्द्धिर्ऋद्धो वृद्धात्मा महाक्षो गरुडध्वजः ॥ ५१॥

पद्मनाभः ॥ ब्रह्मा जिसमें पैदाहुआ ऐसा कमल है जिसकी नाभिमें १ कमलके भीतर जो गुच्छा है उसके बीचकी किरणोंमें वसे सो पद्मनाभ २॥ अरविन्दाक्षः॥ कमलकीसी आँखोंवाले १ ॥ पद्मगर्भः ॥ योगियोंका दिल जो कमलकी सूरत है उसको गर्भ नाम बीचमें रहे १ ॥ शरीरभृत् ॥ विनारूप होके वा प्राणरूप होके सब शरीरोंको धारे १ वा अपनी मायासे सब शरीरोंको धारे २ ॥ महर्द्धिः ॥ बडी विभूतिवाला १ ॥३५० नाम ॥ ऋद्धः ॥ प्रपंचरूप होके बढे जो १ ॥ वृद्धात्मा १ ॥ पुराना है आत्मा जिसका १ ॥ महाक्षः बडी आँखोंवाला १ गरुडध्वजः ॥ जिसकी ध्वजामें गरुडकी मूर्ति है १ ॥ ५१ ॥

अतुलः शरभो भीमः समयज्ञो हविर्हरिः ॥
सर्वलक्षणलक्षण्यो लक्ष्मीवान् समितिंजयः ॥५२ ॥

अतुलः ॥ जिसके समान कोई नहीं । गीतामें कहा है कि, तुम्हारे समान कोई नहीं १ ॥ भारी है यश जिसका २ यह श्रुति है ॥ शरभः॥शर नाम शरीर सब शरीरोंमें आत्मारूप होके भासै १ ॥ भीमः ॥ जिससे सब डरें १ भक्तोंको अभय देनेसे अभीमः २ ॥ समयज्ञः ॥ सृष्टि स्थिति प्रलयको सब जाने १ सबभूतोंमें समदृष्टि होना यही पूजा है जिसकी २ जिसका आराधन

समभाव है ३ ॥ हविर्हरिः ॥ यज्ञोंमें आहुति ग्रहण करनेवाला १ हविष्यका ग्राहक २ गीतामें कहा है–मैं सब यज्ञोंका भोक्ता और प्रभु हूँ। स्मरणसे पुरुषोंकी अविद्या दूर करनेवाला॥श्याम अर्थात् हरितवर्ण ॥ व्यासका वचन–"हराम्यघं च स्मर्तृणां हविर्भागं क्रतुष्वहम् ॥ वर्णश्च मे हरिश्रेष्ठस्तस्माद्धरिरहं स्मृतः ३ ॥ सर्वलक्षणलक्षण्यः ॥ सर्वतरहके प्रमाणोंसे जो जाना जाय १ साधु सर्वलक्षणलक्षण्य होते हैं परमार्थरूप होनेसे २॥ ३६० नाम ॥ लक्ष्मीवान् ॥ जिसके हृदयमें नित्य लक्ष्मी वसे १ ॥ समितिंजयः ॥ समिति नाम लड़ाईको जीतनेवाला १ जिसकी जय शुद्ध है २ ॥ ५२ ॥

विक्षरो रोहितो मार्गो हेतुर्दामोदरः सहः ॥
महीधरो महाभागो वेगवानमिताशनः ॥ ५३॥

विक्षरः ॥ दूर हुआ है नाश जिसका १॥ रोहितः॥रोहित नाम रोहूमछलीका रूप १ वराहरूप २॥ मार्गः ॥ परमानंदका रस्ता १ मुक्तिका मार्ग २॥ हेतुः ॥जगत्का हेतु उपादानकारण निमित्तकारण होनेसे १॥ दामोदरः ॥ दमादिक साधनोंसे प्राप्त होनेवाला १ यशोदाजीने जिसके पेटमें रस्सी लगाकर बाँधा २ ॥ सहः ॥ सब जीवोंका तिरस्कार क्षमा करे १ (सहन करे) महीधरः ॥ पर्वतरूप होकर पृथ्वीको धारे १ वराहरूप होकर पृथ्वीको उठावे २॥ महाभागः॥ अपनी इच्छासे बड़े शरीर १ अतिश्रेष्ठ शरीर २ भाग्यजन्यके भोगोंको भोगनेवाला ३ अवतारोंमें बड़भोगोंका लेनेवाला ४ ॥ ३७० ॥ नाम ॥ वेगवान्॥ जल्दी दौड़नेवाला वेदून चले १ मनसे भी अधिक है वेग जिसका २॥ अमिताशनः । प्रलयकालमें बेप्रमाण भोजन करनेवाला १॥ ५३ ॥

उद्भवः क्षोभणो देवः श्रीगर्भः परमेश्वरः ॥
करणं कारणं कर्ता विकर्ता गहनो गुहः ॥ ५४ ॥

उद्भवः ॥ संसारकी उत्पत्तिका उपादानकारण १ उद्गत नाम पृथक् है भव नाम संसारसे २ ॥ क्षोभणः ॥ प्रकृति और पुरुषमें प्रवेश करके क्षोभ करे १ विष्णुपुराणका वचन है–प्रकृति और पुरुषमें आत्मा प्रवेश करके क्षोभ करता है और आप सदा अविनासी रहता है ॥ देवः ॥ सर्गादि नाम उत्पत्ति पालन संहारसे पीडा करे १ प्रकाश करे २ असुरोंको जीते ३ सब भूतोंको धारे ४ आत्मा करके प्रकाश करे ५ स्तुतिके योग्य ६ सब देशकाल सब वस्तुमें व्याप्त ७॥ श्रुतिमें कहा है कि एक देव है सब भूतोंमें छिपा हुआ सर्वव्यापी है सबका साक्षी है ॥ श्रीगर्भः ॥ जगत् रूप श्री है जिसके गर्भमें १॥ परमेश्वरः ॥ सबसे पर और प्रेरणा करनेवाले १॥ करणम् ॥ जगत्की उत्पत्तिका साधकतम १ ॥कारणम् ॥ निमित्तकारण उपादानकारण १॥ कर्ता ॥ स्वतंत्र१॥ विकर्ता विचित्रलोकोंका करनेवाला १॥ ३८० नाम ॥ गहनः ॥ जिसके स्वरूप और सामर्थ्य और चेष्टाको कोई भी न जानै१॥ गुहः ॥ अपनी मायाकरके आप ही छिप जाय १ ॥ ५४ ॥

व्यवसायो व्यवस्थानः संस्थानः स्थानदो ध्रुवः ॥
परर्द्धिः परमः स्पष्टस्तुष्टः पुष्टः शुभेक्षणः ॥ ५५ ॥

व्यवसायः ॥ सत्चित्मात्र १॥ व्यवस्थानः ॥ सब जगत्का स्थान १ सब लोकपालोंसे लेकर अधिकारपूर्वक अण्डज पिंडज स्वेदज उद्भिज्ज चारों वर्णाश्रमके विभाग करनेवाले २॥ संस्थानः॥ प्रलयकालमें जहाँ सब भूत स्थान करे १ प्रलयरूपी स्थान है जिसका२॥स्थानदः॥ ध्रुव प्रह्लादादि भक्तोंको यथायोग्य स्थानके

दाता १ ॥ ध्रुवः ॥ अविनाशी १ ॥ परर्द्धिः ॥ सबसे श्रेष्ठविभूतिवाले १ ॥ परमः स्पष्टः ॥ परमनाम शांति ज्ञानरूप स्वतन्त्र होनेसे स्पष्ट १ सब सिद्धि जिसके आधीन हैं २ ॥ ३९० नाम ॥ ॥ तुष्टः ॥ परमानंदरूप१॥ पुष्टः ॥ सदा सब जगह एकरूप १॥ शुभेक्षणः ॥ शुभकारी है दृष्टि जिसकी १ मुमुक्षुजनोंको मोक्ष, कामेप्सुजनोंको काम, पापी लोगोंको दण्ड देनेवाला २ सर्व सन्देहजन्य हृदयकी ग्रंथि और अविद्या जिसकी दृष्टिसे दूर होय ३ जिसकी दृष्टिसे कर्मका नाश होय ४॥ श्रुति कहती है कि, हृदयकी गांठ जिसकी दृष्टि खोलती है ॥ ५५ ॥

रामो विरामो विरजो मार्गो नेयो नयोऽनयः ॥
वीरः शक्तिमतां श्रेष्ठो धर्मो धर्मविदुत्तमः ॥ ५६ ॥

रामः ॥ जिसमें योगी लोग रमण करें १ योगियोंके हृदयमें रमण करे२ आत्मामें रमण करे ३ अपनी इच्छासे रमणीय सुन्दर शरीर धारनेवाला ४ रघुकुलमें अवतार लेनेवाला ५॥ विरामः ॥ जगत्का विश्राम नाम आधार वा अवसान है जिसमें १ जगत् जिसमें अन्तकालमें प्रवेश करे २॥ विरजः ॥ रजोगुणसे निवृत्त१ जिसका वीर्य नाम पराक्रम आकाशसे भी परे है २ ॥ मार्गः ॥ जिसे जानके मुमुक्षु अमर होते हैं उसी राहको मार्ग कहते हैं। श्रुतिमें कहा है कि मुमुक्षुका यही ज्ञानमार्ग है १ ॥ नेयः ॥ प्राप्त होनेवालेको नेय कहते हैं, पहुँचानेवालेको नेता कहते हैं, मार्ग कहते हैं, नेय कहते हैं,सुखसे उत्तम मार्ग नाम ब्रह्मज्ञानसे जीवोंको परमात्मास्वरूपकी प्राप्ति करे १ ॥ अनयः ॥ जिसका कोई प्रेरक नहीं १ ॥४०० नाम ॥ वीरः॥ पराक्रमवाला१॥ शक्तिमतां श्रेष्ठः॥ ब्रह्मादिक शक्तिमानोंसे श्रेष्ठ १ ॥ धर्मः ॥ जिसका सबभूत धारण करें सो धर्म यह बड़ा सूक्ष्म धर्म है १ धर्मकरके

जिसका आराधान होय २ ॥ धर्मविदुत्तमः ॥ धर्म जाननेवालोंमें उत्तम श्रुति स्मृति जिसकी आज्ञा है, धर्मके जाननेवाले अवतारादिकसे भी उत्तम १ ॥ ५६ ॥

वैकुण्ठः पुरुषः प्राणः प्राणदः प्रणवः पृथुः ॥
हिरण्यगर्भः शत्रुघ्नो व्याप्तो वायुरधोक्षजः॥५७॥

वैकुण्ठः ॥ नानाप्रकारकी गतिका दाता विविध नाम नाना प्रकारकी कुंठ नाम गति विकुंठा नाम नगरीके कर्त्ता पञ्चभूतका जगत्के आरम्भमें इकट्ठा करनेवाला १॥ पुरुषः ॥ सब शरीरोंमें सोनेवाला १ सब पापोंका सादन नाम नाश करनेवाला २ ॥ प्राणः ॥ जीवरूप होकर रक्षा करे १ प्राणरूप होकर चेष्टा करावे २ ॥ संसाररूप होकर चेष्टा करावे ३ विष्णुपुराणमें वचन है ॥ प्राणदः॥ प्रलयमें प्राणोंको खण्डन करनेवाला १ सृष्टिके आदिमें प्राण देनेवाला २ ॥ प्रणवः॥ पवित्र करनेवाला इसी कारण श्रुति अकार उकार मकारको प्रणव कहती है १ जिसको नमस्कार करे यह सनत्कुमारका वचन है २ ॥ पृथुः ॥ प्रपञ्चरूप होकर विस्तार करे १॥ ४१० नाम ॥ हिरण्यगर्भः ॥ सृष्टिका कारण १ हिरण्यरूप ब्रह्मांडका बीज गर्भमें है जिसके २ ॥ शत्रुघ्नः ॥ देवताओंके शत्रुओंके मारनेवाले १ ॥ व्याप्तः ॥ सबका कारण सबमें व्याप्त १ ॥ वायुः ॥ सबमें सुगन्धरूप ॥ गीतामें वचन है कि पृथ्वीमें सुगन्ध मैं हूँ १ ॥ अधोक्षजः ॥ किसीसे नीचे छीन न हो १॥स्वर्ग और पृथ्वी जिसके नीचे है २ ॥ ५७ ॥

ऋतुः सुदर्शनः कालः परमेष्ठी परिग्रहः ॥
उग्रः संवत्सरो दक्षो विश्रामो विश्वदक्षिणः ५८ ॥

ऋतुः ॥ कालात्मा ऋतु शब्द है १॥ सुदर्शनः ॥ सुनाम मोक्ष दर्शननाम ज्ञान है जिसका १ शोभावान् कमलपत्रसे नेत्रवाले २

अपनी इच्छासे सुन्दर रूप धारनेवाले ३ भक्तोंको जिसका दर्शन सुख देवे ४ ॥ कालः ॥ काल होकर सबको खाय १ लोकके क्षय करनेको मैं काल हूँ २ गीतामें कहा है ॥ परमेष्ठी ॥ परनाम उत्तम है महिमा जिसकी १ हृदयरूपी आकाशमें है स्थिति जिसकी २॥ परिग्रहः॥ जो शरण आवे उसको सब ओरसे ग्रहण करै १ सर्वगत २ सर्वज्ञ ३ ॥ ४२० नाम ॥ उग्रः ॥ सूर्यादिकको भयदाता १ जिसके भयसे पवन पवित्र करता है और सूर्य तपता है यह श्रुति कहती है २ ॥ संवत्सरः ॥ भूत जिसमें सुखसे वसे १ ॥ दक्षः ॥जगद्रूप होकर वर्द्धमान होय१ सर्वभूतको तत्क्षण उत्पन्न करे २ ॥ विश्रामः ॥ संसारसागरसे व्यासादिकको षडूर्मि अविद्यासे और पंचक्लेश और मदमात्सर्यादि पंच उपक्लेशसे सब मुमुक्षुजनोंको छुटा देनेवाले १ ॥ विश्वदक्षिणः ॥ सब संसारसे सामर्थी १ विश्वके रचनेमें दक्ष नाम चतुर २ ॥ ५८ ॥

विस्तारः स्थावरस्थाणुः प्रमाणं बीजमव्ययम् ॥
अर्थोऽनर्थो महाकोशो महाभोगो महाधनः ॥ ५९ ॥

विस्तारः॥ जिसमें जगत्का विस्तार है१॥ स्थावरस्थाणुः ॥ स्वाभाविक स्थिति है जिसकी १ पृथ्वी आदिक स्थित हैं जिसमें २ स्थावरस्थाणु एक नाम है ॥ प्रमाणम् ॥ ज्ञान आत्मा द्वारा सबका प्रमाण रूप १ प्रत्यक्षादिक प्रमाणोंसे प्रमाण है जिसका २ ॥ बीजम् ॥ अन्यथाभाव विना सबका कारण १ ॥ अव्ययम् ॥ नाशरहित १ ॥बीजमव्ययम् ॥ एक नाम है १॥ अर्थः॥ सुखरूप जिसकी प्रार्थना करे १ ॥ ४३० नाम॥ अनर्थः ॥ पुनरकाम जिसको कुछ अर्थ नाम काम नहीं १ ॥ महाकोशः ॥ अन्नमयकोशादिक जिसके बड़े बड़े भंडार हैं १॥ महाभोगः॥ सुखरूप भोग

हैं जिसके १ ॥ महाधनः ॥ भोगोंका साधनलक्षणरूप महाधन है जिसके १ ॥ ५९ ॥

अनिर्विण्णः स्थविष्ठोऽभूर्धर्मयूपो महामखः ॥
नक्षत्रनेमिर्नक्षत्री क्षमः क्षामः समीहनः ॥ ६० ॥

अनिर्विण्णः ॥ सब काम प्राप्त होनेसे अशोच १॥ स्थविष्ठः॥ विराट्रूप होनेसे स्थित १ ॥ अग्नि जिसका शिर है सूर्य चांद जिसकी आखें हैं २ पूर्णकामनाहोनेसे जिसको कुछ पीडा नहीं है ३ ॥ अभूः ॥ जन्मादिकसे रहित १ सत्तारूप २ पृथ्वीरूप ३ ॥ धर्मयूपः ॥ यज्ञस्तम्भरूप १ पशुकी तरह जो आराधनरूपी धर्ममें बँधा है २॥ महामखः ॥ यज्ञादिक जिसको अर्पण करनेसे निर्वाणमोक्षफल मिले इसी कारणसे यज्ञका फल महान् हो जाता है १ ॥ नक्षत्रनेमिः ॥ नेमि नाम चक्र सूर्यादि नवग्रह और तारोंको शिशुमारचक्रके हृदयमें वायुचक्रमें चक्ररूप होकर फिरावे १ ॥ ४४० नाम ॥ नक्षत्री ॥ चन्द्ररूप नक्षत्रोंमें चांदरूप मैं हूँ यह गीतामें कहा है १ ॥ क्षमः॥ सब कामोंमें समर्थ १ क्षमा जिसका स्वभाव है २ पृथ्वीकी तरह क्षमा है जिसको ३॥ क्षामः॥ सब विकारोंके नाश होजाने पर आत्मारूप होकर जो रहै १ ॥ समीहनः॥ सृष्टि करनेमें भली प्रकार चेष्टा करनेवाला १ ॥६०॥

यज्ञ इज्यो महेज्यश्च क्रतुः सत्रं सतां गतिः ॥
सर्वदर्शी विमुक्तात्मा सर्वज्ञो ज्ञानमुत्तमम् ॥ ६१ ॥

यज्ञः॥ सर्वयज्ञस्वरूप सब देवताओंके तृप्तिकारण यज्ञस्वरूप १ यज्ञ विष्णु है यह श्रुति कहती है ॥ इज्यः ॥ सबके इष्टदेव १ फलके दाता इज्य नाम पूज्य जो देवता और पितरोंका पवित्र

यज्ञ करते हैं सो आत्माका पूजन करते हैं ॥ यह हरिवंशपुराणमें कहा है ॥ महेज्यः ॥ सब पूज्योंमें पूज्यतम मोक्षफल देनेसे १॥ क्रतुः ॥ स्तंभसहित यज्ञका क्रतु है १ ॥ सत्रम् ॥ आसनादि उपाय जिस यज्ञके लक्षण हैं १ ॥ सत्पुरुषोंके रक्षक २ ॥ सतां गतिः ॥मुमुक्षु जनोंको नानाप्रकारकी गति १ ॥ ४५० नाम ॥ सर्वदर्शी ॥ सबका पाप पुण्य देखनेवाला १ ॥ विमुक्तात्मा ॥ स्वभावहीसे मुक्त नाम छुटा पाप है आत्मा जिसका २॥ सर्वज्ञः॥ वही सर्व है वही ज्ञानयोग्य है यह जगत् जो दिखाई देता है सो आत्मा है यह श्रुति कहती है १ ॥ ज्ञानमुत्तमम् ॥ एक नाम है ॥ ज्ञानरूप श्रेष्ठ १ जन्मरहित अनवच्छिन्न नाम आदि अन्त रहित सर्वका साधक परमात्मा ब्रह्म सब है सत्य है आनंद है ज्ञान है यह श्रुति कहती है ॥ ६१ ॥

सुव्रतः सुमुखः सूक्ष्मः सुघोषः सुखदःसुहृत् ॥
मनोहरो जितक्रोधो वीरबाहुर्विदारणः ॥ ६२ ॥

सुव्रतः ॥उत्तम शोभित है व्रत जिसका सब भूतोंको अभय देता हूँ यह मेरा व्रत है यह रामायणमें रामजीका वचन है व्रत नाम नियम १॥ सुमुखः॥सुन्दरमुखवाले १ आनंदरूप मनोहर मुखकमलसे नेत्र विष्णुपुराणमें लिखा है २ वनयात्राके समय श्रीरामचन्द्रका मुख परम सुहावना भया पिताका वचन राज्यसे भी प्यारा माना, यह रामायणमें लिखा है ३ ब्रह्मको सब विद्याके उपदेश करनेसे सुंदर मुख ४ जिसने ब्रह्माको उत्पन्न करके वेद दिया सब वेदोंको प्रकाश किया यह श्रुतिने कहा है ॥ सूक्ष्मः ॥ इन्द्रियोंका विषय नहीं १ शब्दादि जो विषयके कारण पञ्चभूत हैं उनसे रहित

नाम जुदा २ बारीकसे बारीक ३ सर्वगतः नाम सबमें व्यापक यह श्रुति है ॥ सुघोषः ॥ सुहावना है शब्द जिसका १ श्रुतिरूप मेघकी तरह गंभीर वचन २ ॥ सुखदः॥भले जनोंको सुखदाता १दुर्जनोंका सुख दूर करनेवाला १॥ सुहृत् ॥ वेदून सेवा और बदला चाहनेका उपकार करनेवाला १॥ ४६० नाम ॥ मनोहरः ॥ परमानंदरूपसे मन हरनेवाला जो भूमा नाम व्यापक है सोई सुख है यह श्रुति कहती है ॥ जितक्रोधः ॥ क्रोधका जीतनेवाला १ वेदमार्ग थापे २ विना क्रोध असुरोंको मारे ३ ॥ वीरबाहुः॥ देवताओंके वैरियोंको मारे १ वेदकी मर्यादा स्थापन करे २ बडी पराक्रमी बाहुवाले ३॥ विदारणः ॥ अधर्मियोंको नाश करे १॥ ६२ ॥

स्वापनः स्ववशो व्यापी नैकात्मा नैककर्मकृत् ॥
वत्सरो वत्सलो वत्सी रत्नगर्भो धनेश्वरः ॥ ६३ ॥

स्वापनः ॥ अज्ञानी जनोंको मायामें सुलावे नाम आत्मबोधसे रहित करे १॥ स्ववशः ॥ सृष्टिकी उत्पत्ति स्थिति और लय जिसके वशमें है १ ॥ व्यापी ॥ आकाशकी तरह व्यापक सब कार्योंमें कारणरूप होकर १ ॥ नैकात्मा ॥ अनेकात्मा होकर जगत्रूप १जगत्की उत्पत्ति स्थिति प्रलयके वास्ते अनेकरूपसे विराजमान २॥नैककर्मकृत् ॥ जगत्की उत्पत्तिसे आदि लेकर अनेक कर्म करे १ ॥ वत्सरः ॥ सब जगत् जिसमें वसे १ ॥ वत्सलः ॥ जगत्पर दयालु १ भक्त जिसको प्यारे हैं २॥४७०नाम॥ वत्सी ॥ वत्सोंका पालक नाम जगत्का पिता उसके सब बेटे हैं १ ॥ रत्नगर्भः ॥रत्न हैं गर्भमें जिसके ऐसा समुद्र जिसके गर्भमें है १॥ धनेश्वरः ॥धनोंका मालिक १ यक्षोंमें कुबेर मैं हूँ यह गीतामें कहा है ॥ ६३ ॥

धर्मगुब्धर्मकृद्धर्मी सदसत्क्षरमक्षरम् ॥
अविज्ञाता सहस्रांशुर्विधाता कृतलक्षणः ॥ ६४ ॥

धर्मगुप् ॥ धर्मोंके रक्षक धर्मकी रक्षाके हेतु युगयुगमें अवतार लेता हूँ १ यह गीताके ४ अध्यायमें कहा है ॥ धर्मकृत् ॥ धर्म करनेवाला वेदमर्यादाके स्थापनके वास्ते धर्म करनेवाला १ धर्म अधर्मसे रहित भी है परन्तु धर्ममर्यादा स्थापन करे है २ ॥ धर्मी ॥ धर्मोंका धारण करनेवाला १॥ सदसत् ॥ सत्तामात्र सत्रूप जगत्से सद्रूप पहिले यह सत्पदका, अर्थ है असत् जगद्रूप होकर असत् नाम रूपविकार असत् है १ यह श्रुति है ॥ क्षरः॥ सब भूतरूप जगत् होकर क्षरनाम नाशवान् है १॥ ४८० नाम ॥ अक्षरः॥ कूटस्थ–गीतामें लिखा है कि कूटस्थ अचलरूप जगत् ध्रुव है १॥ अविज्ञाता ॥ आत्माको कर्ता माननेसे दुर्बल शक्ति होगई है जिसकी ऐसा जो है जीव उसको विज्ञाता कहते हैं उसका प्रतिद्वंद्व अविज्ञाता नाम सर्वज्ञ १ ॥ सहस्रांशुः ॥ जिसके किरण सूर्यादिक ज्योतिवालोंमें चमक रही है, सूर्य उसीके तेजसे प्रकाश करता है १ यह श्रुति कहती है ॥ जो तेज सूय चन्द्र अग्निमें है वह मेरा ही तेज है यह गीतामें कहा है ॥ विधाता ॥ सब भूतोंका धारनेवाला १ शेष दिग्गजादि जो जगत्के आधार हैं उनका भी धारनेवाला २ ॥ कृतलक्षणः ॥ सदा चैतन्यरूप १ शास्त्रादिकके कर्ता २ सजातीय विजातीयके विच्छेद लक्षणका कर्ता ३ श्रीवत्सरूप लक्ष्मी है लक्षण जिसका नाम ४ ॥ ६४ ॥

गभस्तिनेमिः सत्त्वस्थः सिंहो भूतमहेश्वरः ॥
आदिदेवो महादेवो देवेशो देवभृद्गुरुः ॥ ६५ ॥

गभस्तिनेमिः ॥ गभस्ति नाम सूर्यमंडलकी किरण उसमें

सूर्यरूप होकर वसै १ ॥ सत्त्वस्थः ॥ प्रकाश सत्त्वगुणमें प्रधान होकर वसै १ सत्त्व अंतःकरण सब जीवके अंतःकरणमें स्थित २ ॥ सिंहः ॥ सिंहकी तरह बलवान् नृपदके लोप होनेसे नृसिंहका नाम सिंह है १॥ भूतमहेश्वरः॥सब भूतोंका बड़ा ईश्वर १ भूतनाम जीव उनमें बड़ा २॥ आदिदेवः॥सब भूतोंका आदिकर्ता १॥ ४९० नाम॥ महादेवः॥ महादेवजीके सिवाय सब देवताओंको अपने आत्मज्ञानसे योगरूपी ऐश्वर्यमें लय करे १ सब भावोंको आत्मज्ञान योग ऐश्वर्यमें जो पूज्य होय सो महादेव, यह श्रुति कहती है १ ॥ देवेशः॥ सब देवताओंका ईश नाम मालिक १ ॥ देवभृद्गुरुः ॥ देवताओंके सरदार इंद्र उनके गुरु १ देवताओंका ओर सब विद्याओंका पालक सब विद्याओंका धारण करनेवाला ॥ ६५ ॥

उत्तरो गोपतिर्गोप्ता ज्ञानगम्यः पुरातनः ॥
शरीरभूतभृद्भोक्ता कपींद्रो भूरिदक्षिणः ॥ ६६ ॥

उत्तरः ॥ संसारसागरसे तारनेवाला १॥ सबसे श्रेष्ठ सबसे उत्तम इंद्र है यह श्रुति है॥गोपतिः॥गोपनाम अहीर बनकर गौओंको पालै १ गो नाम पृथ्वी उसका पति नाम पालक २ ॥ गोप्ता ॥ जगत्का पालक १ ॥ ज्ञानगम्यः ॥ केवल ज्ञानसे ही मिलने योग्य कर्महीसे नहीं १ ॥ पुरातनः ॥ जो सदा रहै पुराना १ सबसे पहिले जो होय २॥ शरीरभूतभृत् ॥ शरीरके कारण प्राणरूप होकर पंचभूतका धारण करनेवाला भोक्ता १ ॥ पालनेवाला २ अनंतरूपसे जगत्का भोग करनेवाला ३॥५०० नाम ॥ कपींद्रः ॥ कपि नाम वराह कपि नाम बंदरोंके इंद्र रामचंद्ररूप १ ॥ भूरिदक्षिणः ॥ भूरि नाम बहुत यज्ञरूप धर्म और मर्यादारूपी यज्ञ बहुत दक्षिणावाले करै १ ॥ ६६ ॥

सोमपोऽमृतपः सोमः पुरुजित्पुरुसत्तमः ॥
विनयो जयः सत्यसन्धो दाशार्हः सात्वतांपतिः६७

सोमपः ॥ सोमलताके पीनेवाले यज्ञमें देवतारूप १ धर्मकी मर्यादा दिखाते हुए यजमानरूप होकर सोमलता पीनेवाले २ ॥ अमृतपः॥ आत्मरूपी अमृतका पीनेवाला १ समुद्रसे निकला हुआ अमृत असुरोंसे छीनके देवताओंको पिलावे और आप पिये २ ॥ सोमः ॥ चन्द्रमा होके औषधोंको पुष्ट करनेवाला १ मैं चन्द्रमारूप होके औषधोंको पुष्ट करता हूँ यह गीतामें कहा है॥ उमा नाम पार्वतीके साथ रहनेवाला शिव २ ॥ पुरुजित् ॥ पुरु नाम बहुतको जीतनेवाला १ ॥ पुरुसत्तमः ॥ विश्वरूपको पुरु कहते हैं सत्तम नाम श्रेष्ठ १॥ विनयः ॥ विनय नाम दण्ड दैत्य और दुष्ट प्रजाको जो दंड दे १ ॥ जयः ॥ सब भूतोंको जय करे १॥ सत्यसंधः ॥ संध नाम संकल्प जिसका सत्य है१॥सत्य संकल्प है यह श्रुति कहती है ॥ ६१० नाम ॥ दाशार्हः ॥ दाश नाम दान उसके योग्य १ यदुकुलमें जन्मे २ ॥ सात्वतांपतिः ॥ तन्त्रका निर्माण करे १ सात्त्वत नाम यादवोंके अंशसे उत्पन्न २ सत्त्वगुणी पुरुषोंका पति ३ ॥ ६७ ॥

जीवो विनयितासाक्षी मुकुन्दोऽमितविक्रमः ॥
अम्भोनिधिरनन्तात्मा महोदधिशयोऽन्तकः ६८॥

जीवः ॥ क्षेत्रज्ञरूप होकर प्राणोंको धारनेवाला १ ॥ विनयितासाक्षी ॥ धर्मयुक्त जीवोंको साक्षात् जाने १ आत्मासे जुदा कोई पदार्थ जो न देखे २ ॥ मुकुन्दः ॥ मुक्तिका दाता १॥ अमितविक्रमः ॥ अनन्तपराक्रमवाला १ तीन पैरसे तीन लोक नापे २ बड़ी शूरता है जिसकी ३॥ अम्भोनिधिः॥ अम्भस्

नाम देवतादिक जिसमें लय होते हैं १ ॥ देव पितृ मनुष्य असुर इन चारोंका नाम अंभस् यह श्रुति है ॥ अंभोनिधि नाम समुद्र २॥तालाबोंमें समुद्र मैं हूँ यह गीतामें कहा है ॥अनंतात्मा॥ जिसको किसी देश किसी काल किसी वस्तुमें नियम न कर सके १ ॥ महोदधिशयः ॥ प्रलय करके सब भूतोंसमेत समुद्रमें शयन करे १ ॥ अंतकः ॥ भूतोंको अन्त करे १ ॥ ५२० नाम ॥ ६८ ॥

अजो महार्हः स्वाभाव्यो जितामित्रः प्रमोदनः ॥
आनन्दो नन्दनो नन्दः सत्यधर्मा त्रिविक्रमः॥६९॥

अजः॥ जिसका जन्म नहीं १ अज नाम कामका है ॥महार्हः॥ बड़ी पूजाके योग्य१॥स्वाभाव्यः ॥ स्वभाव करके सदा सिद्धिरूप १ ॥ जितामित्रः ॥ रावणादिक बाहरके शत्रु और काम क्रोधादिक भीतरके शत्रुको जीतनेवाले १ ॥ प्रमोदनः ॥ ज्ञानियोंको आत्माका स्वाद अमृतरूप नित्य देनेवाला १ और कथन करनेसे हर्ष देनेवाला २ ॥ आनन्दः ॥ आनन्द स्वरूप १॥जिस आनन्दका लेश सर्व भूतोंमें है यह श्रुति है २॥ नन्दनः॥ आनन्ददायक १ ॥ नन्दः ॥ सबसे बड़ा ऐश्वर्यवान्१ विषयसुखसे रहित आनन्दस्वरूप २ ॥ सत्यधर्मा ॥ सत्य और धर्म और ज्ञानवाला १ ॥ सच्चा है धर्म जिसका आचार दया अहिंसा दान स्वाध्याय यह परम धर्म हैं इनके संयोगसे आत्माका दर्शन २ ॥ त्रिविक्रमः ॥ तीन लोक उल्लंघन करनेवाला १ तीन लोकके नाप लेनेसें वामनजीको त्रिविक्रम हरिवंश पुराणमें कहा है, तीनपद रखता हुआ यह श्रुति है, उत्पत्ति पालन संहार तीन पराक्रमवाला २ ॥ ५३० नाम ॥ ६९ ॥

महर्षिः कपिलाचार्यः कृतज्ञो मेदिनीपतिः ॥
त्रिपदस्त्रिदशाध्यक्षो महाशृंगः कृतान्तकृत् ॥७० ॥

महर्षिः कपिलाचार्यः ॥ यह विशेषण सहित एक नाम है महान् हो वही ऋषि हो सब वेदोंके जाननेसे वेदका एकदेश जाने सो ऋषि कपिल नाम शुद्धात्मतत्त्वका उपदेश करनेवाला आचार्य सो कपिलाचार्य ॥ ऋषिका पुत्र जो कपिल है वह महान् है यह श्रुति है । सिद्धोंमें कपिल मुनि मैं हूँ यह गीतामें कहा है १॥कृतज्ञः कृत नाम जगत् ज्ञ आत्मा आप ही जगत् है आप ही आत्मा है १ ॥ मेदिनीपतिः ॥ पृथ्वीका पति १ ॥ त्रिपदः ॥ तीन पाद हैं जिसके । तीन पैर धरता हुआ यह श्रुति है १ ॥ त्रिदशाध्यक्षः ॥ जाग्रत्स्वप्नसुषुप्ति तीनों अवस्थाओंका साक्षी १॥महाशृंगः॥मत्स्यरूप महाशृंग प्रलयकालमें नाव बनाकर अपनी शृंगमें बांधके क्रीडा करे १ ॥ कृतांतकृत् ॥ कृत नाम जगत्का अन्त नाम संहार करनेवाला १ कृतांत नाम मृत्युको काटनेवाला २ ॥ ७० ॥

महावराहो गोविंदः सुषेणः कनकांगदी ॥
गुह्यो गभीरो गहनो गुप्तश्चक्रगदाधरः ॥ ७१ ॥

महावराहः ॥वराहावतार १ ॥ गोविंदः ॥ गो नाम वेदवाक्यसे जो प्राप्त हो १ वाणी वा वेदांतवाक्यसे जो जाना जाय सो गोविंद २ यह विष्णुपुराणमें कहा है ॥ सुषेणः ॥ सुन्दर है त्रिगुणरूप सेना जिसकी १॥ ६४० नाम ॥ कनकांगदी ॥ सोनेका है अंगद नाम भुजबंद जिसका १ ॥ गुह्यः ॥ रहस्य और उपनिषदोंसे जो जाना जाय १ हृदयरूपी गुफामें प्राप्त २ ॥ गभीरः ॥ ज्ञान ऐश्वर्य बलमें गम्भीर १ ॥ गहनः ॥ शरीरोंमें प्रवेश होनेवालेसे जिसमें प्रवेश करना दुर्घट है१जाग्रत्स्वप्नसुषुप्ति तीनों अवस्थाओंके

भाव अभावका साक्षी २ ॥ गुप्तः ॥ मन वाणी जहां न पहुँचै सबमें छिपा हुआ १ ॥ सब भूतोंमें एक आत्मा छिपा है प्रकाश नहीं करता यह श्रुति है ॥ चक्रगदाधरः ॥ चक्र और गदाके धारण करनेवाले १ ॥ ७१ ॥

वेधाः स्वांगोऽजितः कृष्णो दृढः संकर्षणोऽच्युतः ॥
वरुणो वारुणो वृक्षः पुष्कराक्षो महामनाः ॥ ७२ ॥

वेधाः ॥ ब्रह्मारूप होकर जगत्को रचनेवाला १ ॥ स्वांगः ॥ आप ही कार्य और कारण अपने अङ्गसे रचनेवाला १॥ अजितः॥ अवतार धारके किसीसे जीता न जाय १ ॥ कृष्णः ॥ द्वैपायन नाम व्यासको कृष्ण जानो १ नारायण जानो कृष्णके सिवाय और किसका सामर्थ्य महाभारत बनानेका है २ यह विष्णु-पुराणमें कहा है । सब मुनियोंमें व्यास मैं हूँ यह गीतामें कहा है ॥ ५५० नाम ॥ दृढः ॥ जिसके स्वरूप और सामर्थ्यका नाश नहीं है१॥ संकर्षणोऽच्युतः॥ प्रलयकालमें एक ही बेर सब प्रजाको खींचनेवाला नाश रहित स्वभावसे विशेषण सहित एक नाम है १ ॥ वरुणः ॥ वरुण नाम सूर्य वा जल इनको प्राप्त होय १ वरुण सूर्य है यह श्रुति है ॥ वारुणः ॥ वरुणकी संतान वसिष्ठ वा अगस्त्य १ ॥ वृक्षः ॥ वृक्षकासा अचल स्वभाव है जिसका १ वृक्षकी तरह अचल है यह श्रुति है ॥ पुष्कराक्षः ॥ हृदयकमलमें चिंतन होय जिसका १ स्वरूप जिसका प्रकाशवान् है २ ॥ महामनाः ॥ उत्पत्ति स्थिति प्रलय अपने मनसे करने-वाला ॥ ७२ ॥

भगवान् भगहानंदी वनमाली हलायुधः ॥
आदित्यो ज्योतिरादित्यः सहिष्णुर्गतिसत्तमः ॥७३॥

भगवान् ॥ ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, वैराग्य, मोक्ष इन छः पदार्थोंका नाम भग है जिसमें भग रहे सो भगवान् १ जिसको

इन छः पदार्थोंका यथार्थ ज्ञान होय २ भूतोंकी उत्पत्ति लय गति अगति विद्या अविद्या इन छः वस्तुओंका जाननेवाला ३ ॥ भगहा ॥ प्रलयकालमें ऐश्वर्यादि भगका नाशक १ ॥ आनंदी ॥ सुखरूप सर्व संपत्तियुक्त १ ॥ ५६० नाम ॥ वनमाली ॥ पंचभूततन्मात्रारूपी वैजयंती नाम वनमाला है जिसकी १ तुलसी कुंद मंदार पारिजात कमल इन पांच फूलोंसे बनै सो वनमाला पांवतक लटकती हुई माला वनमाला जिसकी २॥ हलायुधः ॥ हल जिसका शस्त्र है बलदेवमूर्ति १ जरासंधकी लड़ाईके समय हल मूशल आकाशसे उतरा यह विष्णुपुराणमें लिखा है ॥ आदित्यः ॥ अदितिमें कश्यपसे उत्पन्न वामनरूप १ ॥ ज्योतिरादित्यः ॥ सूर्यमंडल जिसमें ज्योति रहती है १ आप ही ज्योति आप ही आदित्य २ ॥ सहिष्णुः ॥ शीतोष्ण और दुःख सुखको सहनेवाला १ ॥ गतिसत्तमः ॥ आप ही गतिरूप आप ही सत्तम श्रेष्ठ १ ॥ ७३॥

सुधन्वा खंडपरशुर्दारुणो द्रविणप्रदः ॥
दिविस्पृक्सर्वदृग्व्यासो वाचस्पतिरयोनिजः ॥७४॥

सुधन्वा ॥ सुंदर इंद्रियरूपी धनुष है जिसका १ ॥ खंडपरशुः ॥ शत्रुओंका खंडन करनेवाला परशा धारे परशुरामरूप १ अथवा शिवरूप २ अखण्ड है नाम अमोघ है परशा जिसका ३ ॥ दारुणः ॥ सन्मार्गके विरोधियोंको मारनेवाला १॥ द्रविणप्रदः ॥ भक्तोंको वांछित फलका देनेवाला १॥ ५७० नाम॥ दिविस्पृक् ॥ दिव नाम स्वर्गका स्पर्श करनेवाला १ ॥ सर्वदृग्व्यासः॥सर्वदृष्टिवाले जो सर्वज्ञ उसका विस्तार करनेवाला व्यास १ आप ही सर्व और आप ही द्रष्टा २ जिसने चारों वेदोंकी

शाखा कर दी, ऋग्वेदकी २१ यजुर्वेदकी १०१ सामवेदकी १००० अथर्ववेदकी ९ और १८ पुराणोंका कर्ता ३॥ वाचस्पतिरयोनिजः ॥ वाच नाम विद्याका पति १॥ अयोनिजः ॥ माताकी योनिसे जिसका जन्म नहीं यह नाम ब्रह्माका है१ ॥७४॥

त्रिसामा सामगः साम निर्वाणं भेषजं भिषक् ॥
संन्यासकृच्छमः शांतो निष्ठा शांतिः परायणः ॥७५॥

त्रिसामा ॥ त्रिसामनाम वेदव्रतका है तीनों वेदोंके व्रतसे जिसकी स्तुति होय १॥ सामगः ॥ सामवेदका गानेवाला १ सामवेदने जिसको गाया है२ ॥ साम ॥ साम वेद १ ॥ वेदोंमें सामवेद मैं हूँ यह गीतामें कहा है ॥ निर्वाणम् ॥ सर्वदुःखनाशरूप परमानन्द लक्षणरूप १॥ भेषजम् ॥ संसारसे छूटनेकी दवा १॥ भिषक् ॥ संसाररूपी रोगके नाश करनेवाले मोक्षरूप ब्रह्म विद्या उपनिषद् गीता सबरोगके वैद्य होय यह श्रुति है १॥ संन्यासकृत् ॥ मोक्षके वास्ते चौथा आश्रम करनेवाला १॥ ५८० ॥ नाम ॥ शमः ॥ संन्यासियोंको ज्ञानका साधन शमरूप १ ज्ञानका साधन शम २ सदा संन्यासीका मुख्य धर्म शमता है ३ वानप्रस्थोंका नियम गृहस्थोंका केवल दान ब्रह्मचारीका गुरुसेवा यह स्मृति है, सब भूतोंको शमन करनेवाला ४ ॥ शांतः ॥ विषयसुखमें संगरहित १ क्रिया और कलंकसे रहित है शांत है यह श्रुति है ॥ निष्ठा ॥ प्रलयकालमें सब भूत जिसमें रहैं १॥ शांतिः ॥ ब्रह्मविद्या १॥ समतासे अविद्याका नाश २॥ परायणः ॥ पर अयन नाम स्थान जहां जायके फेर नहीं आवै ॥ ७५ ॥

शुभांगः शांतिदः स्रष्टा कुमुदः कुवलेशयः ॥
गोहितो गोपतिर्गोप्ता वृषभाक्षो वृषप्रियः ॥ ७६ ॥

शुभांगः ॥ शोभावान् अंग १ ॥ शांतिदः ॥ रागद्वेष खोनेवाला शांतिके दाता १ ॥ स्रष्टा ॥ सृष्टिके आदिमें सबभूतोंका रचनेवाला १ ॥ कुमुदः ॥ कु नाम पृथ्वीमें आनंदपानेवाला १ पृथ्वीको आनंद देनेवाला २ ॥ कुवलेशयः ॥ पृथ्वीको सब दिशासे ढकनेवाला १ कुवल नाम जल उसमें शेषनागपर सोनेवाला २ कुवलनाम बेरका फल उसमें तक्षकरूप होके सोनेवाला ३ कु नाम भूमि वल नाम चलन ऐसा जो सर्पका पेट उसपर सोनेवाला ४ ॥५९०नाम ॥ गोहितः ॥ गऊके बढानेके वास्ते गोवर्द्धन पर्वतरूप १ गऊको प्यार करे २ गोनाम भूमिके भार उतारनेको अपनी इच्छासे अवतार धारनेवाला३ ॥ गोपतिः ॥ पृथ्वी, गऊ, इंद्रियोंके पति नाम पालक १ ॥ गोप्ता ॥ जगत्के रक्षक १ अपनी मायासे अपने आत्माको आच्छादन करनेवाला २ ॥ वृषभाक्षः ॥ सब कामना बरसानेवाला १ धर्म रूप पवित्र दृष्टि है जिसकी २ ॥ वृषप्रियः॥ धर्म प्यारा है जिसको १ ॥ ७६ ॥

अनिवर्ती निवृत्तात्मा संक्षेप्ता क्षेमकृच्छिवः ॥
श्रीवत्सवक्षाः श्रीवासः श्रीपतिः श्रीमतांवरः ॥७७॥

अनिवर्ती ॥ देवता और असुरोंके संग्रामसे जो छुट्टी न पावे, जो धर्म न छोड़े २ ॥ निवृत्तात्मा ॥ स्वाभाविक जिसकी आत्मा नाम मन विषयोंसे निवृत्त है १ ॥ संक्षेप्ता ॥ जगत्के विस्तारके प्रलयमें घटानेवाला १ ॥ क्षेमकृत् ॥ शरण आयेकी रक्षा करे १ ॥ शिवः ॥ स्मरणमात्रसे पाप खोनेवाला १ ॥ ६०० नाम ॥ श्रीवत्सवक्षाः ॥ श्रीवत्सनाम छापा है छातीपर जिसके १ ॥ श्रीवासः ॥ जिसके हृदयमें नित्य लक्ष्मी वसै १ ॥ श्रीपतिः ॥ समुद्रमथनके समयमें

सब देवतोंको छोड़कर लक्ष्मीने जिसको अपना वर किया १ परमशक्तिके पति २॥ श्रीमतांवरः ॥ तीनोंवेदरूप श्री है जिसकी १ ब्रह्मादिक श्रीमानोंसे उत्तम २ ॥ ७७ ॥

श्रीदः श्रीशः श्रीनिवासः श्रीनिधिः श्रीविभावनः॥
श्रीधरः श्रीकरः श्रेयः श्रीमाँल्लोकत्रयाश्रयः ॥७८॥

श्रीदः ॥ भक्तोंको श्री देनेवाले १ ॥ श्रीशः ॥ लक्ष्मीके स्वामी (मालिक) १ ॥ श्रीनिवासः ॥ लक्ष्मीवानोंमें नित्य वसे १ लक्ष्मी जहां रहै २ ॥ श्रीनिधिः ॥ जिस सर्वशक्तिरूपमें संपूर्ण श्रीस्थापन होय १ ॥ श्रीविभावनः ॥ कर्मके अनुसार नाना-प्रकारकी श्री सर्व भूतोंको देनेवाला १ ॥ श्रीधरः ॥ सर्वभूतोंको उत्पन्न करनेवाला १ लक्ष्मीको छातीपर धारे २ ॥ ६१० नाम ॥ श्रीकरः ॥ श्रवण, स्मरण, स्तुति, ध्यान, पूजा करनेवालोंको ऐश्वर्य देनेवाला १ ॥ श्रेयः ॥ कल्याणरूप परब्रह्म १ नाशरहित सुखकी प्राप्तिका नाम श्रेय है २ ॥ श्रीमान् ॥ सदा लक्ष्मीसहित १ ॥ लोकत्रयाश्रयः ॥ तीनों लोकोंका आधारभूत ॥ ७८ ॥

स्वक्षः स्वंगः शतानंदो नंदिर्ज्योतिर्गणेश्वरः ॥
विजितात्माऽविधेयात्मा सत्कीर्तिश्छिन्नसंशयः ७९॥

स्वक्षः ॥ कमलकीसी सोहनीआँखोंवाले १ ॥ स्वंगः॥ अच्छ सुन्दर अंगवाले १ ॥ शतानंदः ॥ एक परमानंद जो भेदसे अनेक आनन्दरूप हुआ है १ एकी आनन्दके आसरे सबभूत जीते हैं यह श्रुति है ॥ नंदिः ॥ परमानन्दरूप १ ॥ ज्योतिर्गणेश्वरः ॥ सब चमकनेवाले समूहके ईश्वर १ उसीके प्रकाशसे सब प्रकाश करते हैं यह श्रुति है। सूर्य, चंद्रमा, अग्निमें

मेरा ही तेज है यह गीतामें कहा है ॥ विजितात्मा ॥ मनको जीतनेवाला १ ॥ ६२० नाम ॥ अविधेयात्मा ॥ जिस आत्माका विधान नाम कथन न हो सके १ ॥ सत्कीर्तिः ॥ सत्य है कीर्ति जिसकी १ ॥ छिन्नसंशयः ॥ हस्तामलकवत् साक्षात् ज्ञानसे जिसको कोई सन्देह न रहे १ ॥ ७९ ॥

उदीर्णः सर्वतश्चक्षुरनीशः शाश्वतः स्थिरः ॥
भूशयो भूषणो भूतिर्विशोकः शोकनाशनः ॥८०॥

उदीर्णः ॥ सब जगत्से श्रेष्ठ १ ॥ सर्वतश्चक्षुः ॥ सबको अपना चैतन्यरूप देखे १ सब दिशाओंमें हैं नेत्र जिसके यह श्रुति है ॥ अनीशः ॥ जिससे कोई बड़ा नहीं १ ॥ शाश्वतः स्थिरः ॥ सब होनेपर भी विकार नहीं जिसमें १ ॥ दोनो पदोंका एक ही नाम है ॥ भूशयः ॥ लंका जानेके समय समुद्रके तटपर भूमिपर सोनेवाला १ ॥ भूषणः ॥ अपनी इच्छासे अवतारादिक धारकर पृथ्वीको शोभा देनेवाले १ ॥ भूतिः ॥ होनेवाली शक्तिविभूति सब विभूतिका कर्ता १ ॥ ६३० नाम ॥ विशोकः ॥ शोकरहित परमानन्दरूप १ ॥ शोकनाशनः ॥ स्मरणसे भक्तोंके शोक नाश करै ॥ ८० ॥

अर्चिष्मानर्चितः कुंभो विशुद्धात्मा विशोधनः ॥
अनिरुद्धोऽप्रतिरथः प्रद्युम्नोऽमितविक्रमः ॥ ८१ ॥

अर्चिष्मान् ॥ जिसके प्रकाशसे सूर्य चन्द्रमा प्रकाश करते हैं १ आर्चिनाम किरणवाले सूर्यरूप चन्द्रमारूप २ ॥ अर्चितः ॥ सब लोकके पूज्य १ ब्रह्मादिकदेवतोंके पूज्य २ ॥ कुंभः ॥ घड़ेके रूप जिसमें सब वस्तु भरी जायँ १ ॥ विशुद्धात्मा ॥ तीनों गुणोंसे रहित १ ॥ विशोधनः ॥ स्मरणसे पाप दूर करै १ ॥

अनिरुद्धः ॥ चारमूर्तियोंमें अनिरुद्धरूप १ जो लड़ाईमें किसीसे न रुके २ ॥ अप्रतिरथः ॥ वैरी जिसके नहीं १ ॥ प्रद्युम्नः ॥ प्र उत्तम द्युम्न नाम द्रव्य है जिसके १ ॥ चारमूर्तिमें प्रद्युम्नरूप २ ॥ ६४० नाम ॥ अमितविक्रमः ॥ बेप्रमाण बलवाले १ हिंसारहित पराक्रम है जिसका २ अपरिच्छिन्न पराक्रमवाला ३ ॥ ८१ ॥

कालनेमिनिहा वीरः शौरिः शूरजनेश्वरः ॥
त्रिलोकात्मा त्रिलोकेशः केशवः केशिहा हरिः ८२॥

कालनेमिनिहा ॥ कालनेमि नाम दैत्यको मारनेवाला १ ॥ वीरः ॥ अगले पिछले शत्रुका नाशक १ ॥ शौरिः ॥ शूरकुलमें अवतार लेनेवाला १ ॥ शूरजनेश्वरः ॥ शूरतामें इन्द्रादिक देवताओंसे अधिक ऐश्वर्यवाला १ ॥ त्रिलोकात्मा ॥ तीनों लोकका अन्तर्यामी आत्मा १ तीनों लोकमें अभेद आत्मारूप २ ॥ त्रिलोकेशः ॥ तीनों लोकोंका स्वामी १ तीनों लोक जिसकी आज्ञासे अपने अपने मार्गमें चलैं २ ॥ केशवः ॥ सूर्यादिककी किरण जिसके केश हैं १ ब्रह्मा विष्णु शक्ति गणेश नाम है जिसके २ क नाम ब्रह्म ईश नाम शिव दोनों तुम्हारे अंश यह हरिवंशपुराणमें है ॥ केशिहा ॥ केशि दैत्यके मारनेवाले १ ॥ हरिः ॥ अज्ञानसहित संसारको हरै १ ॥ ६५० ॥ ८२ ॥

कामदेवः कामपालः कामी कांतः कृतागमः ॥
अनिर्देश्यवपुर्विष्णुर्वीरोऽनन्तो धनंजयः ॥ ८३ ॥

कामदेवः ॥ धर्म, अर्थ, काम, मोक्षके चाहनेवाले जिसकी पूजा करैं सो कामदेव १ ॥ कामपालः ॥ कामनावालोंके काम पूरण करैं १ ॥ कामी ॥ पूरणकाम जिसको कामना न रहै १ सरस्वतीके वास्ते कामनाकी यह श्रुति है ॥ कांतः ॥

परमसुन्दररूप १ क नाम ब्रह्माका दो परार्द्धनाम १०० वर्षमें अंत करे २ ॥ कृतागमः ॥ श्रुतिस्मृतिके कर्ता । वेद शास्त्र विज्ञान यह सब जनार्दनसे भये विष्णुसहस्रनाममें कहा है १ ॥ अनिर्देश्यवपुः ॥ जिसके शरीरको यह है ऐसा न कहा जाय १ सबगुणोंसे रहित शरीर है जिसका २ ॥ विष्णुः ॥ सारे जगत्में व्याप्त जिसकी कांति अधिक करके है १ ॥ वीरः ॥ वीर नाम वेगवाले अथवा कांतिवाले १ ॥ अनंतः ॥ व्यापक नित्य सबका अत्मा १ देश काल वस्तुके नियमसे रहित सत्य है ज्ञानरूप है अनंत है यह श्रुति है ॥ देवता जिसके गुणोंका अंत न पावे यह विष्णुपुराणमें है ॥ धनंजयः ॥ दिग्विजय करके धन लेनेवाला अर्जुन १ पांडवमें धनंजय मैं हूँ यह गीतामें कहा है ॥ ६६० नाम ॥ ८३ ॥

ब्रह्मण्यो ब्रह्मकृद् ब्रह्मा ब्रह्म ब्रह्मविवर्धनः ॥
ब्रह्मविद्ब्राह्मणो ब्रह्मी ब्रह्मज्ञो ब्राह्मणप्रियः ॥ ८४॥

ब्रह्मण्यः ॥ तप वेद सत्य ज्ञान इन पदार्थोंको जाननेवाले १ इन्हीं पदार्थोंसे जानने योग्य और हितकारी नरनारायण रूपसे तप किया २ ब्राह्मण जातिके रक्षाके वास्ते अवतार धार राक्षसोंको मारके वेदकी रक्षा की ३ अर्जुनको ज्ञान दिया ४ ॥ ब्रह्मकृत् ॥ तप, वेद, सत्य, ज्ञानका कर्ता १ ॥ ब्रह्मा ॥ ब्रह्मारूपसे सबका रचनेवाला १ ॥ ब्रह्म ॥ सत्यादिक चार पदार्थके बढ़ने अथवा बढ़ानेसे सत्य है ज्ञानस्वरूप है अनंत है यह श्रुति है १ ॥ ब्रह्मविवर्द्धनः ॥ तप आदिक चारों पदार्थोंको बढ़ानेवाला १ ॥ ब्रह्मविद् ॥ वेदके अर्थ और वेदको जो यथार्थ जानै १ ॥ ब्राह्मणः ॥ ब्रह्मारूपसे सबलोकको वेद देनेवाला १ ॥ ब्रह्मी ॥ जगत् ब्रह्मरूपको धारनेवाला १ ॥ ब्रह्मज्ञः ॥ ब्रह्मको जाननेवाला १ ॥ ब्राह्म-

णप्रियः ॥ ब्राह्मणोंका प्रिय १ जिसको ब्राह्मण प्रिय हैं २ ब्राह्मण मारता हुआ गाली देता हुआ शाप देता हो तो भी पूज्य है जो ब्राह्मणको प्रणाम न करे तो ब्रह्म अग्निसे दग्ध है दहनके योग्य है मेरा नहीं है यह भगवद्वाक्य है ॥ ६७० नाम ॥ ८४ ॥

महाक्रमो महाकर्मा महातेजा महोरगः ॥
महाक्रतुर्महायज्वा महायज्ञो महाहविः ॥ ८५ ॥

महाक्रमः ॥ बड़े क्रमवाले १ क्रम नाम चरण धरतीरूपी बड़े चरण हैं जिसके २ बड़े क्रमवाले विष्णु मुझे पवित्र करो यह श्रुति है ॥ महाकर्मा ॥ महान् जगत्के रचने और पालने और नाशकरने रूप हैं कर्म जिसके १॥ महातेजाः ॥ बड़े तेजवाले १ सूर्यादिक जिसके तेजसे होवें २ जिसके तेजको पाकर सूर्य तपता है यह श्रुति है सूर्यमें मेरा ही तेज है यह गीतामें है । अपनी शूरता और वीरतासे सबको लड़ाईमें तृप्त करे ३ ॥ महोरगः ॥ बड़ा सर्प १ सर्पोंमें वासुकि मैं हूं यह गीतामें है ॥ महाक्रतुः ॥ आप ही बड़ा है आप ही यज्ञ है जैसे अश्वमेध यज्ञोंका राजा है सो नारायणरूप है १॥महायज्वा ॥ आप ही बड़ा है आप ही यज्ञ करनेवाला है जगत्के उद्धारके वास्ते यज्ञका प्रचारक १ ॥ महायज्ञः॥ आप ही बड़ा है आप ही यज्ञ है यज्ञोंमें जपयज्ञ मैं हूँ यह गीतामें है १॥महाहविः ॥ आप ही बड़ा है आप ही हवि नाम होम करनेका अन्न और घी है जिस परमात्मामें सब जगत् होमा जाय ॥८५॥

स्तव्यः स्तवप्रियः स्तोत्रं स्तुतिः स्तोता रणप्रियः॥
पूर्णः पूरयिता पुण्यः पुण्यकीर्तिरनामयः ॥ ८६ ॥

स्तव्यः ॥ उसकी सब स्तुति करते हैं वह किसीकी स्तुति

न करै १ स्तुति करनेवालोंके स्तुतियोग्य २ आपही स्तुतिरूप है ३ ॥ स्तवप्रियः ॥ स्तुति प्यारी है जिसको १ ॥ ६८० नाम ॥ स्तोत्रम् ॥ गुणवर्णनरूप हरि १ जिस शब्दसे स्तुति करै सो स्तोत्र आप ही स्तोत्र है॥स्तुतिः॥आप ही स्तुतिरूप है १॥स्तोता ॥ आपही स्तुति करनेवाला १ ॥ रणप्रियः ॥ रण है प्यारा जिसको १ लोकके देखानेके वास्ते पांच आयुध रखनेवाले २॥ पूर्णः ॥ संपूर्ण काम और शक्तिवाले १ ॥ पूरयिता ॥ सब ऋद्धि और सब शक्तिसे कामना पूरण करनेवाले १ कुछ आप ही पूरण नहीं हैं सबको सब संपत्के पूरण करनेवाले २ ॥ पुण्यः ॥ स्मरण करनेसे पापोंका नाश करै १ ॥ पुण्यकीर्तिः ॥ पवित्र है यश और कीर्ति जिसकी १ आदमियोंको जिसकी कीर्ति पवित्र करै २ ॥ अनामयः॥कर्मसे उत्पन्न होनेवाली आधि और व्याधिसे रहित अनामय नाम रोगसे रहित १ ॥ ८६ ॥

मनोजवस्तीर्थकरो वसुरेता वसुप्रदः ॥
वसुप्रदो वासुदेवो वसुर्वसुमना हविः ॥ ८७॥

मनोजवः ॥ मनकी तरह जलदी दौड़नेवाले १ ॥ ६९० नाम ॥ तीर्थकरः॥चौदहविद्या और उपविद्या सबका कर्ता १ ॥ वसुरेताः ॥ सुवर्ण है बीज जिसका १ सृष्टिकी आदिमें जलमें तेजका त्याग किया उससे सोनेका अंडा सूर्यकी तरह प्रकाशित १ ॥ वसुप्रदः ॥ भक्तोंको धनदाता १ धनके दाता कुबेर २ ॥ वसुप्रदः ॥ दैत्योंके धनको नाश करै १ ॥ वासुदेवः ॥ वसुदेवके बेटे १ ॥ वसुः ॥ जिसमें सब भूत वसैं १ सब भूतोंमें वसनेवाला २ मायासे जो अपने स्वरूपको छिपा ले ३ सबदेश सबकाल सबवस्तुमें जो बराबर

वसे ४ ॥ वसुमनाः ॥ तद्रूप है मन जिसका १ सबमें बराबर वसे सो वस्तु वसु है मन जिसका २ ॥ हविः ॥ होमकी साकल्य १ हवि ब्रह्म है यह गीतामें है ॥ ८७ ॥

सद्गतिः सत्कृतिः सत्ता सद्भूतिः सत्परायणः ॥
शूरसेनो यदुश्रेष्ठः सन्निवासः सुयामुनः ॥ ८८ ॥

सद्गतिः ॥ ब्रह्म है ऐसा निश्चय करनेवालेकी जो गति वह सद्गति १ श्रेष्ठ बुद्धिवाला २ ॥ सत्कृतिः ॥ जगत्की उत्पत्ति पालन लय जिसकी क्रिया है १ ॥ ७०० नाम ॥ सत्ता ॥ सजातीय नाम अपना विजातीय नाम दूसरा स्वगत नाम दैहिक इन भेदसे रहित जो अनुभव १ एक ब्रह्म है दूसरा नहीं यह श्रुति है ॥ सद्भूतिः ॥ एक आत्मा बहुत प्रकार देखाई देवे १ तेरे निश्चय होनेसे और कुछ नहीं है क्योंकि सब एक है ॥ सत्परायणः ॥ सत् नाम तत्त्ववेत्ता पर नाम श्रेष्ठ अयन नाम स्थान १ ॥ शूरसेनः ॥ हनूमानादिक शूरवीर जिसकी सेना है १ ॥ यदुश्रेष्ठः ॥ यादवकुलमें श्रेष्ठ १ ॥ सन्निवासः ॥ सत्पुरुषोंके रहनेकी जगह १ ॥ सुयामुनः ॥ सोहावनी यमुनाकी आवर्त्त चारों ओर हैं जिसके १ गोपवेषधारी पद्मासनादिक गोपोंकरके आवृत ॥ यामुन नाम चारोंतरफ घेरनेवाले ॥ ८८ ॥

भूतावासो वासुदेवः सर्वासुनिलयोऽनलः ॥
दर्पहा दर्पदो दृप्तो दुर्धरोऽथापराजितः ॥ ८९ ॥

भूतावासः ॥ सब भूतोंके रहनेकी जगह १ जिसमें सब भूत वसें यह हरिवंशपुराणमें है ॥ वासुदेवः ॥ मायासे जगत्को छिपानेवाले १ अपनी विभूति और ऐश्वर्यसे जगत्को ढक-

लेता हूँ यह भगवद्वचन है छिपाता हूँ सब जगत्को सूर्यकी तरह अपने किरणोंसे यह महाभारत मोक्षधर्म है १॥ सुवर्सुनिलयः ॥ सब प्राण जिसमें लय होजायँ १॥ ७१० नाम ॥ अनलः ॥ जिसकी शक्ति और संपत् अनंत हैं १ ॥ दर्पहा ॥ अधर्मियोंका दर्प नाम अहंकार हरनेवाला १ ॥ दर्पदः ॥ धर्मवालोंका दर्प देनेवाले नाम रक्षा करनेवाले १॥ दृप्तः ॥ आत्मारूपी अमृतका स्वाद जिसके सदा है १॥ दुर्द्धरः ॥ बहुत दुःखोंसे जिसकी धारण होय। अव्यक्तमें मन लगानेवालेको बहुत क्लेश हैं अव्यक्तमें गतिनाम पहुँच दुःखसे भी देहवालेको नहीं होती यह गीतामें कहा है १॥ अपराजितः ॥ भीतरके शत्रु रागद्वेषादिक और बाहरके दानवादिकसे जीता न जाय ॥ ८९ ॥

विश्वमूर्तिर्महामूर्तिर्दीप्तमूर्तिरमूर्तिमान् ॥
अनेकमूर्तिरव्यक्तः शतमूर्तिः शताननः ॥ ९० ॥

विश्वमूर्तिः ॥ सब विश्व जिसकी मूर्ति है १ ॥ महामूर्तिः ॥ शेषनागपर सोनेवाली बड़ी मूर्तिः १ ॥ दीप्तमूर्ति ॥ ज्ञानमयी और तैजसी मूर्ति है जिसकी १॥ अमूर्तिमान् ॥ शेषनागपर सोनेवाली बड़ी मूर्ति होकर नाम भेद करके बहुत मूर्ति नहीं १ ॥ ७२० नाम ॥ अनेकमूर्तिः ॥ उपकारके अर्थ अनेकमूर्तिवाले १ ॥ अव्यक्तः ॥ अनेकमूर्तिवाला भी है तो भी उसको यह है और ऐसा है नहीं कह सकते १ ॥ शतमूर्तिः ॥ ज्ञानरूप मूर्ति १॥ शताननः ॥ जिससे जगत् मूर्तिमान् है १ जिससे सब भूत होयँ यह श्रुति है ॥ ९० ॥

एको नैकः सवः कः किं यत्तत्पदमनुत्तमम् ॥
लोकबंधुर्लोकनाथो माधवो भक्तवत्सलः ॥ ९१ ॥

एकः ॥ एक है श्रुति है जिसके दूसरा नहीं १ ॥ नैकः ॥ अपनी मायासे जगत्रूप होनेवाला १ इन्द्र मायाकरके बहुत रूपवाला हुआ यह श्रुति है ॥ सवः ॥ जिस यज्ञमें सोमपान होय १॥ कः ॥ सुखरूप १ ब्रह्मरूप २ क ब्रह्म है यह श्रुति है ॥ किम् ॥ सब पुरुषार्थका स्वरूप । जिससे सब भूत होंय यह श्रुति है १ ॥ यत् ॥ स्वतः सिद्ध जिससे भूतोंकी उत्पत्ति पालन लय होय यह श्रुति है ॥ तत् ॥ विस्तार करनेवाला ब्रह्म ब्रह्मके तीन नाम हैं प्रणव १ तत् २ सत् ३ गीतामें है ॥ ७३० नाम ॥ पदमनुत्तमम् जिस उत्तम पदको मुमुक्षु लोग प्राप्त होंय १ जिससे कोई उत्तम पद न होय २ ॥ लोकबंधुः ॥ आधाररूप परमात्मासे सब लोग बंधे हैं १ लोकोंका जनक है दूसरा बंधु नहीं है । श्रुतिस्मृतिरूप हित अहित जीवोंको उपदेश करै २ ॥ लोकनाथः ॥ सब लोक जिससे मांगे १ दैत्योंको दण्ड देनेवाला २ ॥ माधवः ॥ मधुकुलमें उत्पन्न १ ॥ भक्तवत्सलः ॥ भक्तोंपर कृपा करै १ ॥ ९१ ॥

सुवर्णवर्णो हेमांगो वरांगश्चन्दनांगदी ॥
वीरहा विषमः शून्यो धृताशीरचलश्चलः ॥ ९२ ॥

सुवर्णवर्णः ॥ सोनेके रंग १ रुक्मवर्णको देखो यह श्रुति है ॥ हेमांगः ॥ सोनेकासा अङ्ग १ जो एक सूर्यमंडलमें हिरण्मय पुरुष है यह श्रुति है ॥ वरांगः ॥ श्रेष्ठ है अङ्ग जिसका १ ॥ चंदनांगदी ॥ चन्दन लगाये हुए अङ्गदनाम बाजूबंध पहिरे हैं १ चन्दन नाम आनन्ददेनेवाला अङ्गदनाम बाहुभूषण है जिसका २ ॥ ७४० ॥ नाम ॥ वीरहा ॥ धर्मकी रक्षाके वास्ते वीर दैत्योंको मारनेवाला १ राग द्वेष कामादिकको दूर करै २ ॥ विषमः ॥ सम नाम बराबर जिसके कोई नहीं

है तुम्हारे १ सम कोई नहीं तो अधिक कहांसे होयगा यह गीतामें है ॥ शून्यः ॥ सब गुणोंसे पर है १ शून्यकी तरह शून्य २ ॥ धृताशीः ॥ अशी नाम कामना, धृत नाम क्षय दूर हो गई है चाहना जिसकी १ ॥ अचलः ॥ स्वरूपसामर्थ्यगुण जिसके अचल हैं १ ॥ चलः ॥ वायुरूप होकर चलनेवाला १॥ ९२॥

अमानी मानदो मान्यो लोकस्वामी त्रिलोकधृक्॥
सुमेधा मेधजो धन्यः सत्यमेधा धराधरः ॥ ९३ ॥

अमानी ॥ अनात्मवस्तुमें अभिमान नहीं करनेवाले १ ॥ मानरहित शुद्ध ज्ञानस्वरूप २ जिसकी प्रमा नाम हद नहीं ३ ॥ मानदः ॥ अपनी मायासे जीवोंको आत्मामें आत्मरूपी अभिमान देनेवाला १ भक्तोंको मान देनेवाला २ दैत्योंका मान तोड़नेवाला ३ ज्ञानियोंका देहाभिमान दूर करनेवाला ४ ॥ मान्यः ॥ सबका मान्य नाम पूज्य १ ॥ लोकस्वामी ॥ चौदह लोकोंका स्वामी नाम ईश्वर १ ॥ ७६० नाम ॥ त्रिलोकधृक् ॥ तीनों लोकोंका धारण करनेवाला १ ॥ सुमेधाः ॥ उत्तमबुद्धिवाला १ ॥ मेधजः ॥ यज्ञमें प्रकाशित होय १ ॥ धन्यः ॥ कृतार्थरूप १ ॥ सत्यमेधाः ॥ सत्यस्वरूप नाम विकार रहित है बुद्धि जिसकी १ ॥ धराधरः ॥ शेषसे आदि अपने बेप्रमाण अंशोंसे पृथ्वीको उठावै ॥ ९३ ॥

तेजोवृषो द्युतिधरः सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥
प्रग्रहो निग्रहो व्यग्रो नैकशृंगो गदाग्रजः ॥ ९४ ॥

तेजोवृषः ॥ आदित्यरूप होकर बरसानेवाला १ जलको सूरजरूपसे खींचकर बरसानेवाला २ ॥ द्युतिधरः ॥ शरीरकी कांतिवाला १ सत्पुरुषोंकी कीर्ति धारनेवाला २ ॥ सर्वशस्त्रभृतांवरः ॥ सब हथियार रखनेवालोंमें श्रेष्ठ १ ॥ प्रग्रहः ॥ भक्तोंके

अर्पण किये हुए पत्र फूल फल जल प्रसन्नतासे ग्रहण करे १ दुर्दांत इन्द्रियरूपी घोड़े विषयरूपी जङ्गलमें दौड़ते हुये जिसके प्रसादसे प्रग्रह नाम पगहेमें बँध जाते हैं २ ॥ ७६० नाम ॥ निग्रहः ॥ सबको अपने वश करनेवाले १ ॥ व्यग्रः ॥ नाश-रहित १ भक्तोंको इष्ट नाम मनोरथदाता २ ॥ नैकशृंगः ॥ चार-शृंगवाले १ चार शृंग तीन पांव दो शिखा सात हाथ यह श्रुति है ॥ गदाग्रजः ॥ गदनाम यादवके बड़े भाई वासुदेव हैं निगद-नाम मन्त्रसे सामने प्रगट होय १ ॥ ९४ ॥

चतुर्मूर्तिश्चतुर्बाहुश्चतुर्व्यूहश्चतुर्गतिः ॥
चतुरात्मा चतुर्भावश्चतुर्वेदविदेकपात् ॥ ९५ ॥

चतुर्मूर्तिः ॥ विराट् १ सूत्र २ अव्याकृत नाम वेदांतका सिद्धांत ३ तुरिय आत्मा ४ यह चार मूर्ति हैं जिसकी १ श्वेत रक्त पीत कृष्ण चार रंगकी मूर्तिवाले २ ॥ चतुर्बाहुः ॥ चारभुजा-वाले यह नाम वासुदेवमें रूढ है, क्योंकि चार भुजा और देव-ताओंके भी हैं पर चतुर्भुज वासुदेव ही कहाते हैं १ ॥ चतु-र्व्यूहः ॥ शरीरपुरुष १ वेदपुरुष २ महापुरुष ३ छन्दपुरुष ४ इन चार व्यूहवाले १ ॥ चतुर्गतिः ॥ चारों वर्ण चारों आश्रमके स्व-धर्म करनेवालोंकी जो गतिरूप है १ ॥ चतुरात्मा ॥ रागद्वेषादि-कसे रहित ऐसा चतुर है मन जिसका १ मन चित्त बुद्धि और अहंकार चार आत्मावाले २ ॥ चतुर्भावः ॥ धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, यह चार जिससे उत्पन्न हैं १ ॥ ७७० नाम ॥ चतुर्वेद-वित् ॥ चारों वेदोंको यथार्थ जाननेवाला १ ॥ एकपात् ॥ एक चरणवाले १ सारा विश्व जिसका चरण है यह श्रुति है सारा जगत् मेरे एक अंशसे स्थित है यह गीतार्थ १० अध्यायमें है ९५॥

समावर्तो निवृत्तात्मा दुर्जयो दुरतिक्रमः ॥
दुर्लभो दुर्गमो दुर्गो दुरावासो दुरारिहा ॥ ९६ ॥

समावर्तः ॥ संसारचक्रको जो अच्छी तरह घुमावै १ ॥ अनिवृत्तात्मा ॥ सर्व व्यापक होनेसे जिसकी आत्मा किसी पदार्थसे पृथक् नहीं है १ निवृत्त है सब विषयोंसे आत्मा जिसका २ इस अर्थसे निवृत्तात्मा नाम है ॥ दुर्जयः ॥ किसीसे जीता न जाय १ ॥ दुरतिक्रमः ॥ जिसके भयसे सूर्यादिक आज्ञा मानते हैं१॥ जिसके भयसे वायु बहता है, सूर्य तपता है, इंद्र वर्षता है, आग जलती है जिसके डरसे मौत मारती है यह महाभारतमें है ॥ दुर्लभः ॥ दुर्लभ भक्तिसे मिलता है १ हजारों जन्मोंके तप ध्यान समाधि करनेसे कृष्णभक्ति होती है यह व्यासका वचन है १ ॥ अनन्य भक्तिसे मिलता है यह गीतामें कहा है २ ॥ दुर्गमः ॥ दुःखसे जानाजाय १ ॥ दुर्ग ॥ सब विषयोंके दूर होनेपरभी बड़े दुःखसे जानाजाय १ ॥ दुरावासः ॥ योगियोंके हृदयमें कष्टकी बड़े समाधिसे वसे १ ॥ ७८० नाम ॥ दुरारिहा ॥ दुष्ट वैरी जो दानव उनका नाशक १ ॥ ९६ ॥

शुभांगो लोकसारंगः सुतंतुस्तंतुवर्धनः ॥
इंद्रकर्मा महाकर्मा कृतकर्मा कृतागमः ॥ ९७ ॥

शुभांगः ॥ सुन्दर अंग ध्यानके योग्य १ ॥ लोकसारंगः ॥ लोकसार नाम भक्तिको सारंग धनुषकी तरह धारण करते हैं १॥ लोकसार नाम प्रणवसे जो प्राप्त होय २ ॥ सुतंतुः ॥ सुन्दर है जगत्के विस्ताररूपी तंतु जिसका १ ॥ तंतुवर्द्धनः ॥ संसाररूप तंतुको बढानेवाले १ संसाररूपी तंतुको काटै २ ॥ इंद्रकर्मा ॥ इंद्रकेसे कर्म जिसके हैं १ ऐश्वर्यके कर्म हैं जिसके २ ॥ महाकर्मा ॥ आकाशादिक पंचभूतका कर्ता १ ॥ कृतकर्मा ॥ जो संपूर्ण कर्मको करचुके और कुछ करना बाकी न रहै १ धर्मरूपी

कर्मका स्थापन करनेवाला २ ॥ कृतागमः ॥ आगम नाम वेदका कर्ता १ जिस महद्भूतका वेद श्वास है यह श्रुति है ॥ १७ ॥

उद्भवः सुंदरः सुंदो रत्ननाभः सुलोचनः ॥
अर्को वाजसनः शृंगी जयंतः सर्वविज्जयी ॥ १८ ॥

उद्भवः ॥ दूर होगया है जन्म जिसका सर्वकारण होनेसे १ ॥ ७९० नाम ॥ सुन्दरः ॥ सोहना जन्म है जिसका अपनी इच्छासे १ ॥ सुन्दः ॥ सुन्द नाम कोमल है स्वभाव जिसका १ ॥ रत्ननाभः ॥ रत्नकी नाईं चमकती है नाभि जिनकी १॥ सुलोचनः ॥ उत्तम हैं ज्ञानके नेत्र जिसके १ ॥ अर्कः ॥ ब्रह्मादिकके परम पूज्य १॥वाजसनः॥ वाज नाम अन्न सनः नाम दाता अन्नके दाता १ ॥ शृङ्गी॥प्रलयमें मत्स्यरूप होके अपनेशृङ्गमें नाव बांधी जिसने १॥ जयंतः ॥ वैरियोंको अच्छी तरह जीतनेवाले १ ॥ जयदाता २ ॥ सर्वविज्जयी ॥ सबको जाने सो सर्ववित् १ सर्ववित् भी है जयी भी है, भीतरके शत्रु हिरण्यकशिपु आदिकके जीतनेका स्वभाव है जिसका १ ॥ १८ ॥

सुवर्णबिंदुरक्षोभ्यः सर्ववागीश्वरेश्वरः ॥
महाहृदो महागर्तो महाभूतो महानिधिः ॥ ९९ ॥

सुवर्णबिंदुः ॥ बिंदुनाम अवयव तथा अंग जिसके सुवर्णकी नाईं चमकें १ वर्णनाम अक्षर सुन्दर अक्षर और बिंदु है जिस मंत्रमें मंत्ररूप २ ॥ ८००नाम ॥ अक्षोभ्यः ॥ विषयादिक और विकारादिकसे जो क्षुब्ध न होय क्षोभनाम घबराना१ ॥ सर्ववागीश्वरेश्वरः ॥ ब्रह्मा बृहस्पति आदिक जो वाणीके ईश्वर हैं उनका भी ईश्वर १ ॥ महाह्रदः ॥ जिस आनंदरूपी ह्रदनाम तालाबमें स्नान करके योगी लोग सुखसे वास करैं १ ॥

महागर्तः ॥ गढेकी तरह जिसकी मायाका बहुत दुःखसे भी पार न मिलै १ " मम माया दुरत्यया " यह गीतामें है ॥ गर्त नाम रथ जिसका बड़ा रथप्रमाण महाभारते २ ॥ महाभूतः ॥ तीन कालमें परिपूर्ण स्वरूप १ ॥ महानिधिः ॥ सबभूत जिसमें हैं सो महानिधि १ ॥ ९९ ॥

कुमुदः कुंदरः कुंदः पर्जन्यः पावनोऽनिलः ॥
अमृताशोऽमृतवपुः सर्वज्ञः सर्वतोमुखः ॥ १०० ॥

कुमुदः ॥ कु नाम पृथ्वी मुद नाम हर्षदाता अवतारादिक धारके पृथ्वीको आनंददाता ॥१ ॥ कुंदरः ॥ कुन्दके फूलसे उज-ले धर्मोंके फलदाता १ पृथ्वीके धारनेवाले हिरण्याक्षके घातक वराहरूप २ ॥ कुंदः ॥ कुंदके रंग समान निर्मल प्रधान अंगवाले १ कुंदनाम यम २ कु पृथ्वीके राजोंको मारनेवाले परशुरामजी ३ कुनाम पृथ्वीको अश्वमेध करके परशुरामजीरूपसे कश्यपको दान करदी ४ ॥ पर्जन्यः ॥ मेघकी तरह तीनों तापोंके मिटाने-वाले १ सब कामनाके मेघनाम बरसावनेवाले २ ॥ ८१० नाम ॥ पावनः ॥स्मरणहीसे पवित्र करते हैं १॥ अनिलः ॥ जिसको कोई इल नाम प्रेरक नहीं १ इल नाम नींदसे रहित सदा जागृत २ ॥ अमृताशः ॥ आत्मारूपी अमृत भोजन है जिसका १ अमृत नाम अविनाशी फलदायक है आत्मा जिसका २ समुद्र मथ आपभी अमृत पिया देवतोंको भी दिया ३ ॥ अमृतवपुः ॥ जिसको मौत नहीं १ ॥ सर्वज्ञः ॥ सब वस्तुका ज्ञाता १ सर्वज्ञ सर्ववित् हैं यह श्रुति है ॥ सर्वतोमुखः ॥ सब तरफ मुँह है जिस-का १ ॥ सब तरफ आँख शिर मुँह है यह गीता है ॥ १०० ॥

सुलभः सुव्रतः सिद्धः शत्रुजिच्छत्रुतापनः ॥
न्यग्रोधोदुंबरोऽश्वत्थश्चाणूरांध्रनिषूदनः ॥ १०१ ॥

सुलभः ॥ भक्तोंसे पत्रपुष्प लेकर जलदी प्राप्त होय १॥ सुव्रतः ॥ सुंदर शोभित है व्रत नाम नेम जिसका १॥ सिद्धः॥ आपसे आप जिसको सब सिद्धि प्राप्त है ॥ शत्रुजित् ॥ जो देवतोंके वैरी सोई नारायणके वैरी हैं उनकेजीतनेवाले १॥८२०नाम ॥ शत्रुतापनः ॥ देवतोंके शत्रुको जलानेवाले १ ॥ न्यग्रोधः ॥ सबसे ऊँचे १ सबभूतोंको मायामें लपेटनेवाले २ ॥ उदुंबरः ॥ अम्बरनाम आकाश सबभूतोंका कारणभूतसे जो उत्पन्न होय १ ऊर्ग अन्नरूप आत्मासे विश्वको पालन करै २ ॥ ऊर्ग नाम अन्नसे जिसने जिलाया यह श्रुति है ॥ अश्वत्थः ॥ श्वनाम कल्ह जो कल्हनाम दूसरे दिनतक न रहै १ अश्वत्थकी तरह जो स्थित रहै २ ऊपर जड़ नीचे डाली है जिसकी ऐसा अश्वत्थ सनातन है यह श्रुति है और गीतामें है ॥ चाणूरांध्रनिषूदनः ॥ चाणूर नाम दैत्य आंध्रजातका अथवा अन्ध्रनाम देशका वासी सो आंध्र उसके घातक १ चाणूरके शरीरके नाशक २ ॥ १०१ ॥

सहस्रार्चितः सप्तजिह्वः सप्तैधाः सप्तवाहनः ॥
अमूर्तिरनघोऽचिंत्यो भयकृद्भयनाशनः ॥ १०२ ॥

सहस्रार्चिः ॥ अनन्त किरणवाल १ ॥ गीतामें कहा है कि जो हजार सूर्य आकाशमें एक बार उदय होयँ तो भी उस महात्माका किंचित् सादृश्य होय ॥ सप्तजिह्वः ॥ अग्निरूप सात जिह्वावाले काली १ कराली २ मनोजवा ३ सुधूम्रवर्णा ४ सुलोहिता ५ स्फुलिंगिनी ६ विश्वरुचिः ७ ॥ सप्तैधाः ॥ सात एधसनाम दीप्तिवाले १ ॥ सप्तवाहनः ॥ सात घोड़ोंपर चढ़नेवाले १ एक

वाहन घोड़ा सात नामवाला। एक घोड़ा सात नामवाला है ये श्रुति है ॥ गायत्री १ बृहती २ उष्णिक् ३ जगती ४ त्रिष्टुप् ५ अनुष्टुप् ६ पंक्ति ७ सातघोड़ोंके रूप होकर छंदनाम वेद जिसको उठावे वह विष्णुपुराणमें और मत्स्यपुराणमें है ॥ अमूर्तिः ॥ चराचररूप जो भोज्य है सो जिसको नहीं जो कुछ खाता नहीं और प्रकाशमान है १ पंचभूतोंमेंसे आदमियोंका भोजन अन्न और जानवरोंका भोजन जानवर यह सब नहीं है जिसको, यह श्रुति है मूर्ति नाम देह जिसको नहीं २ ॥ ८३० नाम ॥ अनघः ॥ पाप और दुःखसे रहित १ ॥ अचिंत्यः ॥ सबका साक्षी पालनहार १ सब प्रमाणोंसे बाहर जिसको चिंतन कर सकै २ सब प्रपञ्चसे न्यारा ३ जिसको यह है ऐसा है नहीं कहसकते ४ ॥ भयकृत् ॥ असत् मार्गवालोंको भयदाता १ भक्तोंका भय काटनेवाला २ ॥ भयनाशनः ॥ अपने अपने वर्णाश्रमके धर्मवालोंको परमपुरुष विष्णुकी आराधनाके सिवाय दूसरी राह नहीं है यह विष्णुपुराणमें है ॥ १०२ ॥

अणुर्बृहत्कृशः स्थूलो गुणभृन्निर्गुणो महान् ॥
अधृतःस्वधृतःस्वास्यःप्राग्वंशो वंशवर्द्धनः ॥ १०३ ॥

अणुः ॥ परमसूक्ष्म १ ब्रह्म अणु है यह श्रुति है ॥ बृहत् ॥ बढ़नेवाले बढ़ानेवाले १ बड़ोंसे बड़ा है यह श्रुति है ॥ कृशः ॥ स्थूलता नाम मोटाईरहित १ ॥ स्थूलः ॥ सर्वरूप है इसवास्ते मोटा १ ॥ गुणभृत् ॥ सत्त्व, रज, तम तीनों गुणोंका और उत्पत्ति स्थिति लय तीनों क्रियाके अधिष्ठान ॥ निर्गुणः ॥ गुणसे रहित १ कैवल्य है निर्गुण है यह श्रुति है ॥ ८४० नाम ॥ महान् ॥ गुणोंसे रहित सूक्ष्मतर १ नित्य शुद्ध बुद्ध सर्वगत

जिसको यह है इतना है यह न जानसकै २ जिसके शब्द नहीं स्पर्श नहीं ३ ॥ अधृतः ॥ जो किसीसे उठाया न जाय पृथ्वीके बोझ उठानेवाले शेषनागादिकाभी बोझ उठानेवाले १ ॥ स्वधृतः ॥ अपनी आत्माको आपही उठानेवाले १ वह भगवान् किसीमें प्रतिष्ठित है अपनी ही महिमामें प्रतिष्ठित है यह श्रुति है ॥ स्वास्यः ॥ कमलकीसी शोभा है जिसके मुखकी १ वेदरूपी शब्द जिसके मुखसे पुरुषार्थके उपदेशके वास्ते निकाला है २ परमात्माके सब वे श्वास हैं यह श्रुति है ॥ प्राग्वंशः ॥ सब वंशवालोंका वंश है नाम सबसे पहिले है पीछेसे प्रपंचरूपी वंश जिसका हुआ ॥ वंशवर्द्धनः ॥ वंश नाम संसाररूपी प्रपञ्चका बढ़ानेवाला १ प्रपञ्चके काटनेवाले ॥ २ ॥१०३ ॥

भारभृत्कथितो योगी योगीशः सर्वकामदः ॥
आश्रमः श्रमणः क्षामः सुपर्णो वायुवाहनः ॥ १०४ ॥

भारभृत् ॥ शेष नाग कूर्म वाराहादिक धारणकर भूमिभारको धारनेवाले १ ॥ कथितः ॥ वेदोंने देवताओंने जिसको परमात्मा कहा है १सब वेद जिसकी मर्यादा मानते हैं सब भूतोंका परमात्मा वेदोंने कहा है २ सब वेद जिसके पदका मनन करैं सब वेदोंमें मैं ही जानने योग्य हूँ यह गीता है ३ वेदमें पुराणमें भारतमें रामायणमें विष्णुको सब जगह गाया है ॥ योगी॥योग नाम ज्ञानसे जो मिलै योगसमाधिसे अपनी आत्माको सदा धारनेवाले १॥ योगीशः ॥ योगियोंका भेद दूर करनेवाले आप अभेद १ सब योगियोंके ईश्वर २ ॥ ८५० नाम ॥ सर्वकामदः ॥ सबकामनाके दाता ॥ जिससे फल उत्पन्न होते हैं यह व्यासने कहा है १ ॥ आश्रमः ॥ सब संसारका घर १ संसाररूप वनमें भटकते हुये लोगोंका

विश्रामस्थान २ ॥ श्रमणः ॥ मूर्खोंको सन्ताप नाम दुःख देने-वाले १ ॥ क्षामः ॥ सब भूतोंको छिन्न करनेवाले १ ॥ सुपर्णः ॥ वेदरूपी अच्छे पंखवाले १ वेद जिसके पत्ते हैं यह गीतामें है ॥ वायुवाहनः ॥ जिसके डरसे हवा चलती है १ ॥ १०४ ॥

धनुर्धरो धनुर्वेदो दण्डो दमयिता दमः ॥
अपराजितः सर्वसहो नियंता नियमो यमः ॥ १०५ ॥

धनुर्धरः ॥ श्रीरामरूपसे धनुषधारी १ ॥ धनुर्वेदः ॥ रामचन्द्र-रूपसे धनुर्विद्याका जाननेवाला १ ॥ दण्डः ॥ दण्डरूप होकर दमनकर्ता १ ॥ दमयिता ॥ धर्मराजरूप और मनु और राजा-रूपसे प्रजाके दमन करनेवाले १ दण्ड और दमियता मैं हूँ यह गीता है ॥ ८६० नाम ॥ दमः ॥ दण्ड और दंडका कार्यरूप और दण्डरूप भी है १ ॥ अपराजितः शत्रुओंसे जीता न जाय १ ॥ सर्वसहः ॥ सब कामोंमें सामर्थ्यवाले १ सब वैरियोंको अनादर करनेवाले २ पृथ्वीरूपसे सबके उठानेवाले ३ ॥ नियन्ता ॥ सबको अपने अपने कामोंमें लगानेवाले १॥ अनियमः ॥ जिसका कोई काममें लगानेवाला नहीं १ सब कामप्रेरक नाम हकीम है उसका कोई प्रेरक नहीं ॥ अयमः ॥ यम नाम मृत्यु जिसको नहीं १ यम नियम योगके अंग हैं उनके करनेसे जो मिले आप ही यम हैं आप ही नियम हैं क्योंकि यम नियम करनेसे आत्मा मिलता है ॥ १०५ ॥

सत्त्ववान्सात्त्विकः सत्यः सत्यधर्मपरायणः ॥
अभिप्रायः प्रियार्होऽर्हः प्रियकृत्प्रीतिवर्धनः॥१०६ ॥

सत्त्ववान् ॥ शूरता वीरता सत्त्व नाम पराक्रम है जिसका ॥ सात्त्विकः ॥ सत्त्वगुणमें प्रधानकरके स्थित १ ॥ सत्यः ॥

सत्पुरुषोंमें भलीभांति जो वास करै १ ॥ सत्यधर्मपरायणः ॥ सच बोलनेमें और धर्म नाम वेदकी आज्ञामें परायण नाम लगे हुए १ ॥ ८७० नाम ॥ अभिप्रायः ॥ पुरुषार्थी लोग जिससे मुक्तिकी प्रार्थना करै १ अथवा जिसमें जगत् लय हो २ ॥ ॥ प्रियार्हः ॥ प्रिय नाम प्यारी वस्तु उसके योग्य १ ॥ अर्हः ॥ अर्हनाम आसन प्रशंसा अर्घ पूजा स्तुति नमस्कार ध्यान इन साधनोंके योग्य १ ॥ प्रियकृत् ॥ स्तुति करनेवाले ॥ भक्तोंकी कामना पूरी करै १ ॥ प्रीतिवर्द्धनः ॥ भक्तोंकी प्रीति बढ़ानेवाले १०६

विहायसगतिर्ज्योतिः सुरुचिर्हुतभुग्विभुः ॥
रविर्विरोचनः सूर्यः सविता रविलोचनः ॥ १०७ ॥

विहायसगतिः ॥ विहायस नाम आकाशमें है गति जिसकी १ लोकमें जो जो प्यारी वस्तु है उसके बढ़नेकी इच्छासे गुणवान् श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ अथवा सर्वज्ञ आत्माके अर्पण करनेलायक २ विष्णुके चरण वा सूर्य ३॥ ज्योतिः ॥ आप प्रकाशरूप १ नारायण परमज्योति है यह श्रुति है ॥ सुरुचिः ॥ सुन्दरप्रकाश अथवा उत्तम इच्छावाले १ ॥ हुतभुक् ॥ देवताओंके नामकी आहुति है उसके रखनेवाले १ ॥ विभुः ॥ व्यापक तीन लोकके प्रभु १ ॥ ८८० नाम ॥ रविः ॥ रसके लेनेवाले सूर्यरूप १ ॥ विरोचनः ॥ नानारूपसे सूर्य चांद ग्रहरूपसे प्रकाश करनेवाले १ ॥ सूर्यः ॥ सबके उत्पत्ति करने हारे १ सब जगत्को काममें लगानेवाले २ ॥ सविता ॥ सब जगत्के १ सब जगत्के रचनेवाले २ सब रसोंके दाता ३ ॥ रविलोचनः ॥ सूर्य है आंख जिसकी १ अग्नि माथा है सूर्य चांद आंख हैं यह श्रुति है ॥१०७

अनन्तो हुतभुग्भोक्ता सुखदो नैकजोऽग्रजः ॥
अनिर्विण्णः सदामर्षी लोकाधिष्ठानमद्भुतः ॥ १०८ ॥

अनंतः॥नित्य सब देश सब काल सब वस्तुरूप व्यापक किसी देश किसी काल किसी वस्तुमें जिसका नियम न होसके १ शेष नागरूप २ ॥ हुतभुक् ॥ यज्ञको भोगनेवाला १ ॥ भोक्ता॥ भोग नाम मायाके भोग करनेवाले १ जगत्के पालनेवाले २ ॥ सुखदः ॥ भक्तोंको मुक्तिरूप सुख देनेवाले १ दुःखको काटने वाले २ ॥ नैकजः ॥ धर्मकी रक्षाके वास्ते वारंवार जन्म लेने-वाले १ ॥ ८९० नाम ॥ अग्रजः ॥ सबसे पहले जन्म धारने-वाले १ अग्रज नाम हिरण्यगर्भ सबके पहले हुआ यह श्रुति है॥ अनिर्विण्णः ॥ सब काम प्राप्तहोनेसे वैराग्यरहित १ ॥ सदामर्षी सत्कर्म करनेवालोंको सहनेवाले १ ॥ लोकाधिष्ठानम् ॥ सब जगत्को धारणकरे नाम जगत् जिसमें रहै १ जिसमें तीन लोक वसें ऐसा ब्रह्म है ॥ अद्भुतः ॥ आश्चर्यरूप शक्ति जिसकी १ कोई आश्चर्यकी तरह देखता है कोई अचरजकी नाई कहता है कोई अचरजकी तरह सुनता है यह गीतामें है ॥ १०८ ॥

सनात्सनातनतमः कपिलः कपिरव्ययः ॥ स्वस्तिदः
स्वस्तिकृत्स्वस्ति स्वस्तिभुक्स्वस्तिदक्षिणः ॥ १०९ ॥

सनात् ॥ सबका कालरूप कल्पोंसे श्रेष्ठ १ ब्रह्मका रूप बहु-काल रहनेवाला सनातन है ॥ यह विष्णुपुराणमें है ॥ सनातन-तमः ॥ सबका कारण ब्रह्मादिकसे भी पुराना १ ॥ कपिलः ॥ वडवाग्निरूप कपिलवर्ण १ क नाम जल पि नाम पीनेवाला अपनी किरणोंसे सूर्यरूप २ ॥कपिः॥ नाम वराहजी१॥अव्ययः॥ प्रलयकालमें जगत् जिसमें लय हों १॥९०० नाम ॥ स्वस्तिदः॥ भक्तोंको कल्याणदायक १ ॥ स्वस्तिकृत् ॥कल्याण करनेवाले१॥ स्वस्ति ॥ मंगलरूप परमानंदलक्षण १ ॥ स्वस्तिभुक् ॥ कल्या-

णके भोगनेवाले १ भक्तोंको कल्याणका भोग करानेवाले २ ॥ स्वस्तिदक्षिणः ॥ कल्याणरूप होकर बढ़नेवाले १ कल्याणकरनेमें समर्थ २ श्रीकृष्णके स्मरणसे सब सिद्धि प्राप्त होती हैं यह स्मृति है ॥ १०९ ॥

अरौद्रः कुण्डली चक्री विक्रम्यूर्जितशासनः ॥
शब्दातिगःशब्दसहःशिशिरः शर्वरीकरः ॥ ११० ॥

अरौद्रः॥ कर्मरौद्र रागरौद्रसे कोपरौद्ररहित नाम दुःखदायी काम दुःखदायी राग नाम प्रीति और बहुत दुःखदायी कोप जिसमें नहीं १ सर्वकाम प्राप्त होनेसे रागद्वेषसे रहित २ ॥कुंडली ॥शेषरूप सहस्रांशुसूर्यमंडलरूपी कुंडल है जिसका १ सांख्ययोगरूपी कुंडल धारनेवाला २ ॥ चक्री ॥ लोगोंकी रक्षाके वास्ते मनरूप सुदर्शनचक्र धारनेवाले १ बलरूप धारनेवाले २ बड़ेवेगसे वायुको मनरूपी चक्रमें छीननेवाले ३ ॥ विक्रमी ॥ चरणोंका धरना अथवा शूरता विलक्षण है जिसकी १ ॥ ऊर्जितशासनः ॥ ऊर्जित नाम बढ़ी है शासन नाम आज्ञा जिसकी १ श्रुति स्मृति हमारी आज्ञा है, उसको न माने सो हमारा शत्रु है यह भगवद्वचन है ॥ ९१० नाम ॥ शब्दातिगः॥ वाणी जिसके कहनेमें मनसहित जिसके विचारमें फेर आती है १ शब्दनाम वेदसे जाना जाय यह श्रुति है । सब वेदोंसे मैं ही जाननेयोग्य हूँ यह गीता है ॥ शब्दसहः ॥ सारे वेद व्यंगसे जिसको कहैं सब वेद जिसकी आज्ञा मानें ॥ वेदोंमें सामवेद मैं हूँ यह गीतामें है १॥ शिशिरः॥ तीनों तापोंसे भूलसे हुओंको ढक देनेवाले शिशिररूप १ ॥ शर्वरीकरः ॥ ज्ञानियोंको मुक्तिदाता १ संसारी लोगोंको रात करनेवाले ॥ ११० ॥

अक्रूरः पेशलो दक्षो दक्षिणः क्षमिणांवरः ॥
विद्वत्तमो वीतभयः पुण्यश्रवणकीर्तनः ॥ १११ ॥

अक्रूरः ॥ सब कामके प्राप्त होनेसे क्रोधरहित १ ॥ पेशलः ॥ जिसका शरीर कर्म मन वाणी शोभावान् है १ ॥ दक्षः ॥ बड़ेसे बहुत बड़ा परम समर्थ और बहु जल्दीरूप १ ॥ दक्षिणः॥दक्षिण शब्दका भी दक्ष अर्थ है १ ॥ क्षमिणांवरः ॥ क्षमाकरनेवाले योगी १ अथवा पृथ्वी इनसे श्रेष्ठ पृथ्वीकी तरह क्षमावाला है यह वाल्मीकिका वाक्य है ॥ क्षमा जो शक्ति सब शक्तिवानोंमें श्रेष्ठ ॥ विद्वत्तमः ॥ सदा पूर्णज्ञानवाले १ ॥ ९२० नाम ॥ वीतभयः ॥ दूर हो गया है संसाररूपी भय जिसका १ संसारके भयसे रहित २ सबका ईश्वर नित्यमुक्त ३ ॥ पुण्यश्रवणकीर्तनः॥ श्रवण और कीर्तन जिसके गुण और यशके पवित्र करता है १ जिसका श्रवण कीर्तन करनेसे दोनों लोकमें अशुभ नहीं होता यह व्यासका वचन है २ ॥ १११ ॥

उत्तारणो दुष्कृतिहा पुण्यो दुःस्वप्ननाशनः ॥
वीरहा रक्षणः सन्तो जीवनः पर्यवस्थितः ॥ ११२ ॥

उत्तारणः ॥ संसारसागरसे पार उतारनेवाला १ ॥ दुष्कृतिहा ॥ दुष्कृति नाम पाप समूहको दूरकरनेवाले १ पापीजनोंको मारनेवाले २ ॥ पुण्यः ॥ सब स्मरणादिक करनेवालोंको पवित्र करै१श्रुति स्मृतिआदिक वचनोंसे उपदेश करनेवाले २ इतिहास पुराण श्रवणकरनेवालोंको पवित्र करता ३ ॥ दुःस्वप्ननाशनः ॥ ध्यान पूजा स्तुतिकरनेसे खोटे स्वप्न नाशकरनेवाले १ ॥ वीरहा ॥ सब दुःखोंको दूरकरके मुक्तिदाता १ ॥रक्षणः ॥ सत्त्वगुणसे तीन लोककी रक्षाकरनेवाले ॥ सन्तः ॥ संत रूप होकर विद्या और विनयको बढ़ानेवाले १ उत्तम मार्गमें चलैंसो संत २ ॥जीवनः ॥

प्राणरूप होकर जगत्को जिलानेवाले १ ॥ ९३० नाम ॥ पर्यवस्थितः ॥ संपूर्ण विश्वमें व्याप्त होके रहनेवाले १ ॥ ११२ ॥

अनन्तरूपोऽनन्तश्रीर्जितमन्युर्भयापहः ॥
चतुरस्रो गभीरात्मा विदिशो व्यादिशो दिशः ११३॥

अनंतरूपः ॥ अनंतरूप होकर अथवा जगत्रूप होके रहै १॥ अनंतश्रीः ॥ अप्रमाण शक्तिवाले १ उसकी परमशक्ति नाम हैं यह श्रुति है ॥ जितमन्युः ॥ मन्यु नाम क्रोधको जीतनेवाले १॥ भयापहः ॥ संसारका भय नाश करनेवाले १ संसाररूपी भयके नाशक २ ॥ चतुरस्रः ॥ न्याययुक्तको चतुरस्र कहते हैं पुरुषोंको कर्मके अनुसार चार फल देनेवाले १ ॥ गभीरात्मा ॥ गभीर नाम अथाह आत्मा स्वरूप १ अप्रमाण आत्मा २ ॥ विदिशः ॥ नाना प्रकारके फल अधिकारियोंको देनेवाले १ ॥ व्यादिशः ॥ इंद्रादिकको आज्ञा देनेवाले, इंद्रादिककी आज्ञाकरनेवाले २ ॥ दिशः ॥ वेदरूप होके कर्मोंके फल बतानेवाले १ ॥ ९४० नाम ॥ ११३ ॥

अनादिर्भूर्भुवो लक्ष्मीः सुवीरो रुचिरांगदः ॥
जननो जनजन्मादिर्भीमो भीमपराक्रमः ॥ ११४ ॥

अनादिः ॥ अनादि नाम कारणरहित १ ॥ भूर्भुवः ॥ जगत्की आधार पृथ्वी उसके भी आधार १ ॥ भू नाम पृथ्वीकी लक्ष्मी नाम शोभा भुवोलक्ष्मीः एकनाम है १ भूलोक भुवर्लोक और लक्ष्मी नाम आत्मविद्या यह तीनरूप हैं जिसके २ ॥ लक्ष्मीः ॥ आत्मविद्या चंद्र सूर्य अग्निरूपसे लक्ष्मी नाम शोभित २ ॥ सुवीरः ॥ ईर नाम गति सुन्दर है जिसकी १ श्रवणमनननिदिध्यासनादिक सुन्दर हैं ज्ञानके साधन जिसके २ सुन्दर है गति मच्छ कच्छ आदिक रूपमें पृथ्वीके हितके वास्ते जिसकी ३ ॥

रुचिरांगदः ॥ सुन्दर बाहुभूषणवाला १ ॥ जननः ॥ जीवोंका पैदा करनहार १॥ जनजन्मादिः ॥ जीवोंके जन्मका मूलकारण १ ॥ भीमः ॥ सबको भयदाता १ ॥ भीमपराक्रमः ॥ असुरोंके भयदायक है पराक्रम जिसका १ ॥ ११४ ॥

आधारनिलयोधाता पुष्पहासः प्रजागरः ॥
ऊर्ध्वगः सत्पथाचारः प्राणदः प्रणवः पणः ॥ ११५ ॥

आधारनिलयः ॥ पृथिव्यादिक पंचभूत जो जगत्का आधार हैं उनका भी आधार १ ॥ ९५० नाम ॥ अधाता ॥ जिसके स्वरूपका कोई पैदा करनेवाला नहीं है आपसे आप ही स्थित प्रलयमें सबको धारनेवाला इस पक्षमें धाता नाम है १ ॥ पुष्पहासः ॥ खिले हुए फूलकी तरह जगत्को प्रकाश करनेवाले १ यह जगत् भगवान्की फुलवारी है २ ॥ प्रजागरः ॥ सदा बुद्धिरूप है इसीवास्ते सदा जागनेवाला है ॥ ऊर्ध्वगः ॥ सबसे ऊंचा १ ॥ सत्पथाचारः ॥ सत्पुरुषोंके कर्म अच्छीराहसे आचरण करनेवाले १ सज्जनोंको भले मार्गमें चलावे २ वेदमार्ग आचार है जिसका ३ ॥ प्राणदः ॥ प्राण देनेवाले १ परीक्षितादिक मरे हुओंको जिलानेवाला २ ॥ प्रणवः ॥ ॐकाररूप परमात्मा १ ॥ पणः ॥ व्यवहारमें प्रतिज्ञा पूर्ण करनेवाले१॥ अधिकरियोंके पुण्य लेकर उसके बदलेमें फल देनेवाले २ पण नाम चित्त वह मोक्षकालमें अथवा सुषुप्तिकालमें जिसमें लय होय ३॥११५॥

प्रमाणं प्राणनिलयः प्राणभृत्प्राणजीवनः ॥
तत्त्वं तत्त्वविदेकात्मा जन्ममृत्युजरातिगः ॥ ११६ ॥

प्रमाणम् ॥ प्रमाज्ञानस्वरूप १ स्वयंप्रकाश २ प्रमा ज्ञान ब्रह्मविद्या यह श्रुति है, अनंतज्ञानस्वरूप भ्रांतिसे जीवरूप हो गया यह विष्णुपुराणमें है २ ॥ प्राणनिलयः ॥ प्राण इंद्रिय

जिसमें लय होंय ऐसा जीवरूप १ प्राण अपानादिकहीसे मनुष्य नहीं जीता किंतु जिसके आश्रय प्राण हैं उससे जीता है २॥९६० नाम ॥ प्राणभृत् ॥ अन्नरूप होके प्राणका पालक १ ॥ प्राणजीवनः॥ प्राण नाम वायुसे मनुष्योंको जिलानेवाले १ ॥ तत्त्वम् ॥ ततसत् अमृत यह ब्रह्मके नाम हैं ॥ तत्त्ववित् तत्त्वके स्वरूपको यथार्थ जाननेवाले १ ॥ एकात्मा ॥ आपही एक आत्मारूप हैं और कुछ नहीं है १ एक है सबसे पहिले होनेवाला यह श्रुति है ॥ जन्ममृत्युजरातिगः ॥ जन्मसे आदि लेकर षट्विचारोंका उलांघनेवाला १ न जन्मता है न मरता है न यह था न है न होगा ॥ अज है नित्य है शाश्वत है पुराण है यह गीता है ॥ ११६ ॥

भूर्भुवःस्वस्तरुस्तारः सपिता प्रपितामहः ॥
यज्ञो यज्ञपतिर्यज्वा यज्ञांगो यज्ञवाहनः ॥ ११७ ॥

भूर्भुवःस्वस्तरुः ॥ तीनों लोकरूप वृक्षके रूप १ भूर्भुवः स्वः इन व्याहृतिसे जगत्को तारनेवाला २ यज्ञसे मेघ वर्षता है मेघसे अन्न होता है अन्नसे प्राणी यह मनु कहते हैं और गीतामें भी है ३ ॥ तारः ॥ संसारसागरसे तारनेवाले १ तार नाम प्रणवका भी है ॥ सपिता ॥ लोकोंका पिता १ ॥ प्रपितामहः ॥ ब्रह्माकाभी पिता १ ॥ ९७० नाम॥ यज्ञः ॥ यज्ञरूप यज्ञमें जानेवाले१ ॥ यज्ञपतिः यज्ञके रक्षक अथवा स्वामी १ सब यज्ञोंके प्रभु और भोक्ता मैं हूँ यह गीता है ॥ यज्वा ॥ यजमानरूप १ ॥ यज्ञांगः ॥ यज्ञ है अंग जिसके ऐसी वराहमूर्ति वेद जिसके परे हैं, डाढ़ जिसकी स्तंभ हैं, क्रतु हाथ हैं, चित्ती नाम अग्निका स्थान मुख हैं, अग्नि जीभ है, कुशा रोम हैं रात दिन आंख हैं वेदके मंत्र अंगभूषण, घृत नाक है, स्रुवा थुथुन है, सत्य और धर्म शब्द है, ब्रह्म नाम ब्रह्मा अथवा ब्राह्मण अर्थात् शिर है, महापिता ऐसी वराहमूर्ति ॥ यज्ञवाहनः ॥ यज्ञोंका फलदाता ॥ ११७ ॥

यज्ञभृद्यज्ञकृद्यज्ञी यज्ञभुग्यज्ञसाधनः ॥
यज्ञांतकृद्यज्ञगुह्यमन्नमन्नाद एव च ॥ ११८ ॥

यज्ञभृत् ॥ यज्ञोंका रक्षक १ ॥ यज्ञकृत् ॥ जगत्के आदिमें यज्ञ करनेवाले १ जगत्के अन्तमें यज्ञ काटनेवाले २ ॥ यज्ञी ॥ यज्ञकरनेवालोंमें प्रधान १ ॥ यज्ञभुक् ॥ यज्ञका भोक्ता १ ॥ यज्ञसाधनः ॥ यज्ञका सामान दर्वी स्रुवा चषाल हरि इत्यादिक अंग १ ॥ ९८० नाम ॥ यज्ञांतकृत् ॥ यज्ञका अन्त नाम फल जो दे १॥ यज्ञगुह्यम्॥यज्ञोंमें सिद्धांतज्ञानयज्ञ १॥ अन्नम्॥आहार-रूप१जो खाया जाय अथवा जो सबको खाय उसको अन्न कहते हैं यह श्रुति है ॥ अन्नादः ॥ अन्नखानेवाले १॥ एव च ॥११८॥

आत्मयोनिः स्वयंजातो वैखानः सामगायनः ॥
देवकीनन्दनः स्रष्टा क्षितीशः पापनाशनः ॥ ११९॥

आत्मयोनिः ॥ आत्माहीसे उत्पन्न ॥ स्वयंजातः ॥ स्वयमेव नाम स्वतः होनेवाला ॥ वैखानः ॥ बहुत खोदनेवाले १ पृथ्वी खोदके पातालमें रहनेवाले वराहरूप होके हिरण्याक्षको मारने-वाले २ ॥ सामगायनः ॥ सामवेदके गानेवाले १ सामवेद जिसको गावै२ ॥ देवकीनन्दनः ॥ देवकीके बेटा जिसकी आज्ञा सब वेद सब देवता सब लोकपालक तीनों अग्नि मानते हैं वही देवकीनन्दन है यह महाभारत है१॥ स्रष्टा ॥ सब सृष्टिका रचने-वाला २ ॥ ९९० नाम ॥ क्षितीशः ॥ पृथ्वीके प्रभु रामचन्द्ररूप १ ॥ पापनाशनः ॥ पूजन भजन करनेसे पाप नाश करनेवाले पक्षभरके उपवासके पुरुषका पाप जितना नाश होता है उतना ही १०० प्राणायामसे जाता है जितना १००० हजार प्राणाया-मसे नाश होता है उतना विष्णुके एक क्षण ध्यान करनेसे। यह वृद्ध शातातपका वचन है १ ॥ ११९ ॥

शंखभृन्नंदकी चक्रीशार्ङ्गधन्वा गदाधरः ॥
रथांगपाणिरक्षोभ्यः सर्वप्रहरणायुधः ॥ ॥ १२० ॥

शंखभृत् ॥ भूतोंका आदि जो अहंकार सोई पांचजन्य शंखके धारनेवाले १ ॥ नन्दकी ॥ विद्यारूप नन्दक नाम तलवार है जिसकी १ ॥ चक्री ॥ मनरूप सुदर्शन नाम चक्रके धारनेवाले १ ॥ शार्ङ्गधन्वा ॥ इंद्रियरूप जिसका शार्ङ्ग नाम धनुष है १॥ गदाधरः ॥ बुद्धिरूपी कौमोदकी नाम गदा है जिसकी १॥ रथांगपाणिः ॥ रथका पहिया जिसके हाथमें हो १ यह कथा महाभारतमें है ॥ अक्षोभ्यः ॥ जिसको कुछ भी क्रोध वा भय घबराहट न हो १ ॥ सर्वप्रहरणायुधः ॥ जितने हथियार ऊपर कहे हैं उनके सिवाय और जितनी मारनेकी वस्तु हैं वह सब उसीके हथियार हैं १ ॥ १००० नाम ॥ १२० ॥

सर्वप्रहरणायुधः ॐ नम इति ॥ इतीदं कीर्तनीयस्य केशवस्य महात्मनः ॥ नाम्नां सहस्रं दिव्यानामशेषेण प्रकीर्तितम् ॥ १ ॥

ओंनमः ॥ नमस्कारवास्ते पूजाके सर्वप्रहरणायुध दो बार कहनेसे समाप्तिका सूचन होता है ॥अथ फलश्रुतिः ॥ इतीदं ॥ इति शब्दसे हजारनामकी पूरी गिनती यह कीर्तन करनेके योग्य केशवमहात्माके हजार नाम जो प्रकाशमान हैं तिनको संपूर्ण भलीभांति कहे हैं ॥ १ ॥

य इदं शृणुयान्नित्यं यश्चापि परिकीर्तयेत् ॥
नाशुभं प्राप्नुयात्किञ्चित्सोऽमुत्रेह च मानवः ॥२ ॥

जो इसको नित्य सुनै और कीर्तन करै किसी तरहके अशुभ उसको इस लोकमें और परलोकमें नहीं होते ॥ २ ॥

वेदांतगो ब्राह्मणः स्यात्क्षत्रियो विजयी भवेत् ॥
वैश्यो धनसमृद्धः स्याच्छूद्रः सुखमवाप्नुयात् ॥ ३ ॥

ब्राह्मण वेदांतका जाननेवाला होय क्षत्रिय लड़ाईमें जीत पावै वैश्यका धन बढ़ै शूद्र सुख पावै ॥ ३ ॥

धर्मार्थी प्राप्नुयाद्धर्ममर्थार्थी चार्थमाप्नुयात् ॥
कामानवाप्नुयात्कामी प्रजार्थी प्राप्नुयात्प्रजाः ॥४॥

धर्म चाहनेवाला धर्म पावै अर्थ चाहनेवाला अर्थ पावै काम चाहनेवाला काम पावै प्रजा चाहनेवाला औलाद पावै ॥ ४ ॥

भक्तिमान्यः सदोत्थाय शुचिस्तद्गतमानसः ॥
सहस्रं वासुदेवस्य नाम्नामेतत्प्रकीर्तयेत् ॥ ५ ॥

भक्तिसे जो सदा उठकर पवित्र होकर दिल लगाके वासुदेवके सहस्रनामका पाठ करै ॥ ५ ॥

यशः प्राप्नोति विपुलं ज्ञातिप्राधान्यमेव च ॥
अचलां श्रियमाप्नोति श्रेयः प्राप्नोत्यनुत्तमम् ॥ ६ ॥

उसको बहुत यश मिलै जातिमें प्रधानता मिलै अचल लक्ष्मी मिलै सबसे उत्तम कल्याण नाम मुक्ति मिलै ॥ ६ ॥

न भयं क्वचिदाप्नोति वीर्यं तेजश्च विंदति ॥
भवत्यरोगो द्युतिमान्बलरूपगुणान्वितः ॥ ७ ॥

कुछ डर न लगे बड़ा पराक्रम होवै रोग जाय प्रकाशवान् होय बलरूपगुणसे भरा रहै ॥ ७ ॥

रोगार्तो मुच्यते रोगाद्बद्धो मुच्येत बंधनात् ॥
भयान्मुच्येत भीतस्तु मुच्येतापन्न आपदः ॥ ८ ॥

रोगी रोगसे छूट जाय, कैदी कैदसे छूट जाय, भयभीत भयसे छूटे, आपदा वाला आपत्से छूटे ॥ ८ ॥

दुर्गाण्यतितरत्याशु पुरुषः पुरुषोत्तमम् ॥
स्तुवन्नामसहस्रेण नित्यं भक्तिसमन्वितः ॥ ९ ॥

बडे दुःखोंसे जल्दी पार होजाय पुरुषोंमें उत्तम पुरुषको नित्य भक्तिसे सहस्रनाम पढ़के स्तुति करै ॥ ९ ॥

वासुदेवाश्रयो मर्त्यो वासुदेवपरायणः ॥
सर्वपापविशुद्धात्मा याति ब्रह्म सनातनम् ॥ १० ॥

वासुदेवके आसरेवाला आदमी वासुदेवकी पूजा सेवा स्मरणमें लगा हुआ सब पापोंसे मनशुद्ध करके सनातनब्रह्मको पावता है ॥ १० ॥

न वासुदेवभक्तानामशुभं विद्यते क्वचित् ॥
जन्ममृत्युजराव्याधिभयं नैवोपजायते ॥ ११ ॥

वासुदेवके भक्तोंको कभी अशुभ नहीं है जन्म लेना मरना बूढ़ा होना बीमारी यह उसको नहीं होतीं ॥ ११ ॥

इमं स्तवमधीयानः श्रद्धाभक्तिसमन्वितः ॥
युज्येतात्मसुखक्षांतिश्रीधृतिस्मृतिकीर्तिभिः ॥ १२ ॥

इस स्तोत्रको जो श्रद्धाभक्तिसे पाठ करता है पाता है आत्मसुख शांति लक्ष्मी धृति स्मृति कीर्तिसे उसकी आत्मा युक्त होती है॥१२॥

न क्रोधो नच मात्सर्यं न लोभो नाशुभा मतिः ॥
भवंति कृतपुण्यानां भक्तानां पुरुषोत्तमे ॥ १३ ॥

जो पुरुषोत्तमके भक्त कृत पुण्य लोग हैं उनको क्रोध और मत्सरता और लोभ अशुभमति न होती है ॥ १३ ॥

द्यौः सचंद्रार्कनक्षत्रा खं दिशो भूर्महोदधिः ॥
वासुदेवस्य वीर्येण विधृतानि महात्मनः ॥ १४ ॥

स्वर्ग चंद्रमा सूर्य नक्षत्रोंसमेत आकाश दिशा पृथ्वी समुद्र वासुदेवके पराक्रमसे सब धारण करते हैं ॥ १४ ॥

ससुरासुरगंधर्वं सयक्षोरगराक्षसम् ॥
जगद्वशे वर्ततेऽदः कृष्णस्य सचराचरम् ॥ १५ ॥

देवता, असुर, गंधर्व, यक्ष, सर्प, राक्षस, समस्त यह जगत् सब चर अचर कृष्णके वशमें हैं ॥ १५ ॥

इंद्रियाणि मनो बुद्धिः सत्त्वं तेजो बलं धृतिः ॥
वासुदेवात्मकान्याहुः क्षेत्रं क्षेत्रज्ञ एव च ॥ १६ ॥

इंद्रियाँ मन बुद्धि अंतःकरण तेज बल धृति क्षेत्र क्षेत्रज्ञ यह वासुदेवके आत्मस्वरूप हैं ॥ १६ ॥

सर्वागमानामाचारः प्रथम परिकल्पते ॥
आचारप्रभवो धर्मो धर्मस्य प्रभुरच्युतः ॥ १७ ॥

सब वेदोंमें प्रथम आचार पहिला धर्म है धर्मके रक्षक अच्युत हैं ॥ १७ ॥

ऋषयः पितरो देवा महाभूतानि धातवः ॥
जंगमाजंगमं चेदं जगन्नारायणोद्भवम् ॥ १८ ॥

ऋषि पितर देवता महाभूत सब धातु जंगम और स्थावर यह सब नारायणसे उत्पन्न हैं ॥ १८ ॥

योगो ज्ञानं तथा सांख्यं विद्याः शिल्पादिकर्म च ॥
वेदाः शास्त्राणि विज्ञानमेतत्सर्वं जनार्दनात् ॥ १९ ॥

योग ज्ञान सांख्य विद्या शिल्पविद्यासे आदिलेकर कर्म वेद शास्त्रविज्ञान यह सब जनार्दनसे हुए हैं ॥ १९ ॥

एको विष्णुर्महद्भूतं पृथग्भूतान्यनेकशः ॥
त्रीँलोकान्व्याप्य भूतात्मा भुंक्ते विश्वभुगव्ययः २०॥

एक विष्णु महाभूत जुदा जुदा हुआ अनेक है तीनों लोकोंमें व्यापक होकर वह भूतोंका आत्मा अव्यय नाम नाश रहित भोग करता है ॥ २० ॥

इमं स्तवं भगवतो विष्णोर्व्यासेन कीर्तितम् ॥
पठेद्य इच्छेत्पुरुषः श्रेयः प्राप्तुं सुखानि च ॥ २१ ॥

यह स्तोत्र भगवद्विष्णुका व्यासजीने भलीभाँति कहा है जो पुरुष अपना कल्याण और सुख चाहै सो पाठ करै ॥ २१ ॥

विश्वेश्वरमजं देवं जगतः प्रभवाप्ययम् ॥
भजंति ये पुष्कराक्षं न ते यांति पराभवम्॥२२॥इति॥

जगत्के ईश्वर जन्मरहित प्रकाशवान् जगत्के प्रभु नाशर[illegible]त कमलकीसी आँखवालेको जो भजता है नाम सेवा करता हैं वह पराभव नाम अनादरको नहीं पावता ॥ २२ ॥

इति श्रीमहाभारतके शांतिपर्वमें दानधर्मके उत्तर व्यास-
जीका बनाया हुआ विष्णुसहस्रनामस्तोत्र संपूर्ण ॥

॥ श्रीरस्तु ॥

॥ श्रीः ॥

श्रीमन्महाभारतानुशासनिकपर्वान्तर्गत-

भीष्मस्तवराजः ।

बेरीनिवासी-पण्डितवसतिरामविरचित-

भाषाटीकासहितः ।

खेमराज श्रीकृष्णदास,

अध्यक्ष-"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस,

बम्बई

सं० १९९१, श० १८५६.

श्रीविष्णवे नमः ।



यं योगिनः प्राणविमोक्षकाले
यत्नेन चित्ते विनिवेशयन्ति ।
साक्षात्पुरस्ताद्धरिमीक्षमाणः
प्राणाञ्जहौ प्राप्तकालो हि भीष्मः ॥ १ ॥



श्रीः ।

अथ भीष्मस्तवराज ।

भाषाटीकासमेत ।



जनमेजय उवाच ।

शरतल्पे शयानस्तु भारतानां पितामहः ॥
कथमुत्सृष्टवान्देहं कं च योगमधारयत् ॥ १ ॥

जनमेजय बोले-शरशय्या (बाणोंकी शय्या) पर सोते हुए भीष्मपितामहजी शरीरको कैसे त्यागते भये और किस योगको धारण करते भये ॥ १ ॥

वैशंपायन उवाच ।

शृणुष्वावहितो राजन् शुचिर्भूत्वा समाहितः ॥
भीष्मस्य कुरुशार्दूल देहोत्सर्गं महात्मनः ॥ २ ॥

वैशंपायनजी कहते हैं-हे राजन् ! हे कुरुवंशमें शार्दूल ! तुम पवित्र हो सावधान होके महात्मा भीष्मजीके देह-त्यागको सुनो ॥ २ ॥

निर्वृत्तमात्र त्वयने उत्तरे वै दिवाकरे ॥
समावेशयदात्मानमात्मन्येव समाहितः ॥ ३ ॥

उत्तरायण सूर्य होते समय परमात्माविषे अपने आत्माको सावधान होके समावेश करते भये अर्थात् परमात्माविषे लीन होके मुक्त भये हैं ॥ ३ ॥

शुक्लपक्षस्य चाष्टम्यां माघमासस्य पार्थिव ॥
प्राजापत्ये च नक्षत्रे मध्यं प्राप्ते दिवाकरे ॥ ४ ॥

हे राजन्! माघ शुक्ल अष्टमीके दिन रोहिणी नक्षत्रविषे मध्याह्न समयमें ॥ ४ ॥

विकीर्णांशुरिवादित्यो भीष्मः शरशतैश्चितः ॥
शुशुभे परया लक्ष्म्या वृतो ब्राह्मणसत्तमैः ॥ ५ ॥

भीष्म पितामहजी सैकड़ों बाणों करके संयुक्त होके ऐसे शोभित होते भये कि जैसे खिली हुई किरणोंकरके सूर्य शोभित हो और उत्तम ब्राह्मणोंसे आवृत होते भये ॥ ५ ॥

व्यासेन वेदविदुषा नारदेन सुरर्षिणा ॥
देवरातेन वात्स्येन तथाऽऽतेन सुमन्तुना ॥ ६ ॥

वेदव्यासजी, सुरर्षि नारद, देवरात, वात्स्य, आत, सुमंतु ॥ ६ ॥

तथा जैमिनिना चैव पैलेन च महात्मना ॥
शांडिल्यदेवलाभ्यां च मैत्रेयेण च धीमता ॥ ७ ॥

जैमिनि, महात्मा पैलऋषि, शांडिल्य, देवल, बुद्धिमान् मैत्रेय ॥ ७ ॥

असितेन वसिष्ठेन कौशिकेन महात्मना ॥
हारीतरोमशाभ्यां च तथाऽऽत्रेयेण धीमता ॥ ८ ॥

असित, वसिष्ठ, महात्मा कौशिक, हारीत, रोमश, बुद्धिमान् आत्रेय इन्हों करके संयुक्त होते भये ॥ ८ ॥

बृहस्पतिश्च शुक्रश्च च्यवनश्च महामुनिः ॥
सनत्कुमारकपिलौ वाल्मीकिस्तुंबुरुः कुरुः ॥ ९ ॥

और बृहस्पति, शुक्र, महामुनि च्यवन, सनत्कुमार, कपिल, वाल्मीकि, तुंबुरु, कुरु ॥ ९ ॥

मौद्गल्यो भार्गवो रामस्तृणबिंदुर्महामुनिः ॥
पिप्पलादश्च वायुश्च संवर्त्तः पुलहः कचः ॥ १० ॥

मौद्गल्य, परशुराम, महामुनि तृणबिंदु, पिप्पलाद, वायु, संवर्त्त, पुलह, कच ॥ १० ॥

कश्यपश्च पुलस्त्यश्च क्रतुर्दक्षः पराशरः ॥
मरीचिरंगिराः कण्वो गौतमो गालवो मुनिः ॥ ११ ॥

कश्यप, पुलस्त्य, क्रतु, दक्ष, पराशर, मरीचि, अंगिरा, कण्व, गौतम, गालव मुनि ॥ ११ ॥

धौम्यो विभांडो मांडव्यो धौम्रः कृष्णोऽनुभौतिकः ॥
उलूकः परमो विप्रो मार्कंडेयो महामुनिः ॥ १२ ॥

धौम्य, विभांड, मांडव्य, धौम्र, कृष्णनामक मुनि, अनुभौतिक, परमविप्र उलूक, महामुनि मार्कंडेय ॥ १२ ॥

भास्करः पूरणः कृष्णः सूतः परमधार्मिकः ॥
शैब्येन याज्ञवल्क्येन शंखेन लिखितेन च ॥ १३ ॥

भास्कर, पूरण, श्रीकृष्ण, परमधार्मिक सूत, शैब्य, याज्ञवल्क्य, शंख, लिखित ॥ १३ ॥

एतैश्चान्यैर्मुनिगणैर्महाभागैर्महात्मभिः ॥
श्रद्धादमपुरस्कारैर्वृतश्चंद्र इव ग्रहैः ॥ १४ ॥

इन्होंकरके और अन्य महाभाग महात्मा श्रद्धालु, जितेंद्रिय मुनि गणों करके भीष्मजी ऐसे आवृत होते भये कि जैसे ग्रहों (तारागणों) करके चन्द्रमा आवृत होरहा हो ॥ १४ ॥

भीष्मस्तु पुरुषव्याघ्र कर्मणा मनसा गिरा ॥
शरतल्पगतः कृष्णं प्रदध्यौ प्राञ्जलिः शुचिः ॥ १५ ॥

हे पुरुषव्याघ्र ! शरशय्यापर प्राप्त हुए भीष्मपितामहजी हाथ जोड़ पवित्र होके मन, वचन, कर्म करके श्रीकृष्णका ध्यान करते भये ॥ १५ ॥

स्वरेण हृष्टपुष्टेन तुष्टाव मधुसूदनम् ॥
योगेश्वरं पद्मनाभं विष्णुं जिष्णुं जगत्प्रभुम् ॥ १६ ॥

हृष्ट पुष्ट (उत्तम) स्वरकरके योगेश्वर पद्मनाभ विष्णु जिष्णु सबको जीतनेवाले जगत्के स्वामी श्रीकृष्णकी स्तुति करते भये ॥ १६ ॥

कृताञ्जलिः शुचिर्भूत्वा वाग्विदां प्रवरः प्रभुः ॥
भीष्मः परमधर्मात्मा वासुदेवमथास्तुवीत ॥ १७ ॥

इसके अनंतर वचन जाननेवालोंमें अत्यंत श्रेष्ठ प्रभु परमधर्मात्मा भीष्मजी वासुदेव (श्रीकृष्ण) की स्तुति करते भये ॥ १७ ॥

भीष्म उवाच ।

आरिराधयिषुः कृष्णं वाचं जिगदिषाम्यहम् ॥
तया व्याससमासिन्या प्रीयतां पुरुषोत्तमः ॥ १८ ॥

भीष्मजी बोले—श्रीकृष्णको आराधन करनेकी इच्छावाला मैं वचन बोलनेकी इच्छा करता हूँ, तिस वेदव्यासजीसे कही हुई (प्रचलित की हुई) वाणी करके श्रीभगवान् प्रसन्न हों ॥ १८ ॥

शुचिं शुचिपदं हंसं तत्पदं परमेष्ठिनम् ॥

मुक्त्वा सर्वात्मनात्मानं तं प्रपद्ये प्रजापतिम् ॥ १९ ॥

मैं सर्वात्मा करके (सब यतन करके) अपने शरीरको अथवा मनको त्यागके पवित्र पवित्रोंके स्थान हंस अर्थात् शुद्धस्वरूप तत्पद (लक्ष्यस्वरूप) (परमेष्ठी) परमें अर्थात् चिदाकाश ब्रह्मपदविषे स्थित हुए तिस प्रजापति अर्थात् संसारके पति ईश्वरकी शरण हूँ ॥ १९ ॥

अनाद्यं तत्परं ब्रह्म न देवा नर्षयो विदुः ॥
एकोऽयं भगवान्देवो धाता नारायणो हरिः ॥ २० ॥

अनादि तिस परमब्रह्मको देवता नहीं जानते हैं और ऋषि नहीं जानते हैं सो यह एक भगवान् देव विधाता हरिनारायण है ॥२०॥

नारायणादृषिगणास्तथा सिद्धमहोरगाः ॥
देवा देवर्षयश्चैव तं विदुः परमव्ययम् ॥ २१ ॥

जिस नारायणसे ऋषिगण होते हैं.सिद्ध, महोरग, देवता,देवर्षि होते हैं तिसको परम अविनाशी कहते हैं ॥ २१ ॥

देवदानवगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः ॥
यं न जानंति को ह्येष कुतो वा भगवानिति ॥२२॥

देव, दानव, गंधर्व, यक्ष, राक्षस, पन्नग (सर्प) ये जिसको ऐसे नहीं जानते हैं कि यह भगवान् कहां भये हैं ॥ २२ ॥

यस्मिन्विश्वानि भूतानि तिष्ठंति च विशंति च ॥
गुणभूतानि भूतेशे सूत्रे मणिगणा इव ॥ २३ ॥

---

१ "आत्मा पुंसि प्रभावेऽपि प्रयत्नमनसोरपि। धृतावपि मनीषायां शरीरब्रह्मणोरपि॥" इति। अत्र–सर्वात्मना कोऽर्थः सर्वस्वभावेन सर्वप्रयत्नेन वा आत्मानं कोऽर्थः शरीरं मनो वा मुक्त्वा प्रपद्य इत्यन्वयः कर्तव्यः ।

और जिसविषे संपूर्ण भूत प्राणिमात्र ठहरते हैं और लीन होते हैं, गुणभूत संपूर्ण भूतेश भगवान्‌विषे ऐसे हैं कि जैसे सूतमें मणिगण पिरोये रहते हैं ॥ २३ ॥

यस्मिन्नित्ये तते तंतौ दृढे स्रगिव तिष्ठति ॥
सदसद्ग्रथितं विश्वं विश्वगे विश्वकर्मणि ॥ २४ ॥

जिस नित्यस्वरूपी विश्वगत विश्वकर्मा, विस्तृत हुए परमात्मा विषे दृढ तागाकी मालामें पिरोये हुएकी तरह सत् असत् ग्रन्थिसे (कारणलिंगशरीरसे) ग्रथित हुआ विश्व (संपूर्ण संसार) रहता है ॥ २४ ॥

हरिं सहस्रशिरसं सहस्रचरणेक्षणम् ॥
सहस्रबाहुमुकुटं सहस्रवदनोज्ज्वलम् ॥ २५ ॥

हरि अथात् सब पापोंको हरनेवाले सहस्र अर्थात् असंख्यात चरण और नेत्रोंवाले, असंख्यात बाहु और मुकुटवाले, अनंत मुखोंकरके प्रकाशित ॥ २५ ॥

प्राहुर्नारायणं देवं यं विश्वस्य परायणम् ॥
अणीयसामणीयांसं स्थविष्ठं च स्थवीयसाम् ॥ २६ ॥

ऐसे नारायण देवको विश्वका परम निवासस्थान कहते हैं, सूक्ष्मोंके भी सूक्ष्म हैं और स्थूलोंके भी स्थूल हैं ॥ २६ ॥

गरीयसां गरिष्ठं च श्रेष्ठं च श्रेयसामपि ॥
य वाकेष्वनुवाकेषु निषत्सूपनिषत्सु च ॥ २७ ॥

भारवालोंमें भी भारवाले हैं, श्रेष्ठोंमें श्रेष्ठ हैं और जिस भगवान्‌को वाकअनुवाकसंज्ञक ऋचाओंके भेदोंमें निषदउपनिषदोंमें २७॥

गृणंति सर्वकर्माणं सत्यं सत्येषु सामसु ॥

चतुर्भिश्चतुरात्मानं सत्त्वस्थं सात्त्वतां पतिम् ॥ २८ ॥

सर्वकर्मा अर्थात् सब कार्यको करनेवाला गिनते हैं सत्योंमें अर्थात् पञ्चतत्त्वोंमें तथा सामवेदोंमें सत्यरूप कहते हैं और प्रद्युम्न आदि चार मूर्तियोंकरके चतुरात्मा कहते हैं, और सत्त्वगुणमें स्थित हुआ तथा सात्वत अर्थात् भक्तोंके पति कहते हैं ॥ २८ ॥

यं दिव्यैर्देवमर्चंति गुह्यैः परमनामभिः ॥
यस्मिन्नित्यं तपस्तप्तं यदंगेष्वनुतिष्ठति ॥ २९ ॥

जिस देवको दिव्य परम गुह्य नामोंकरके पूजते हैं, जिस विषे नित्य तप किया हुआ जिसके अंगोंमें सदा ठहरता है ॥ २९ ॥

सर्वात्मा सर्ववित्सत्त्वः सर्वगः सर्वभावनः ॥
यं देवं देवकीदेवी वसुदेवादजीजनत् ॥ ३० ॥

जो सर्वात्मा सर्वस्वरूप सर्वगत सबको उत्पन्न करनेवाले हैं ऐसे जिस देवको वसुदेवजीके सकाशसे देवकीदेवी जनती भई ॥ ३० ॥

भूमेश्च ब्रह्मणो गुप्त्यै दीप्तमग्निमिवारणिः ॥
यमनन्यो व्यपेताशीरात्मानं वीतकल्मषम् ॥ ३१ ॥

पृथ्वी और ब्रह्माकी रक्षाके वास्ते ऐसे उत्पन्न कर दिये जैसे अरणी दीप्त अग्निको उत्पन्न देती है, जिस निष्कलङ्क आत्माको निराहार व्रती अनन्य भक्तजन ॥ ३१ ॥

इष्ट्वाऽऽनंत्याय गोविंदं पश्यत्यात्मानमात्मनि ॥
अतिवाय्विंद्रकर्माणमतिसूर्याग्नितेजसम् ॥ ३२ ॥

मोक्षके अर्थ गोविंदको पूजके अपने आत्माको आत्मामें ही देखता है (तिस) वायु और इन्द्रसे भी उल्लंघके कर्म करनेवाले सूर्य तथा अग्निको उल्लंघके अर्थात् उनसे भी विलक्षण ॥ ३२ ॥

अतिबुद्धींद्रियात्मनं तं प्रपद्ये प्रजापतिम् ॥
पुराणे पुरुषं प्रोक्त ब्रह्म प्रोक्तं युगादिषु ॥ ३३ ॥

बुद्धि इंद्रियोंसे ग्रहण नहीं किये जावें ऐसे आत्मा प्रजापतिकी शरण हूँ पुराणोंमें पुरुष कहा है युगादिकोंमें ब्रह्म कहा है ॥ ३३ ॥

क्षये संकर्षणं प्रोक्तं तमुपास्यमुपास्महे ॥
यमेकं बहुधाऽऽत्मानं प्रादुर्भूतमधोक्षजम् ॥ ३४ ॥

प्रलयकालमें संकर्षण कहा जाता है तिस उपास्य (उपासना करने योग्य) देवकी उपासना करते हैं जिस एक परमात्माको बहुत प्रकार हुएको अधोक्षज अर्थात् नीचे कर दिया है इन्द्रियोंका ज्ञान जिसने ऐसे इंद्रिय अग्राह्यको ॥ ३४ ॥

नान्यभक्ताः क्रियावंतो यजंते सर्वकामदम् ॥
यं प्राहुर्जगतः कोशं यस्मिन्सन्निहिताः प्रजाः ॥३५॥

क्रियावाले अनन्य भक्तजन सर्व कामदायीको पूजते हैं और जिसको जगत्का कोश (निवासस्थान) कहते हैं, जिस विषे संपूर्ण प्रजा रहती है ॥ ३५ ॥

यस्मिँल्लोकाः स्फुरंतीमे जले शकुनयो यथा ॥
ऋतमेकाक्षरं ब्रह्म यत्तत्सदसतः परम् ॥ ३६ ॥

जिसमें ये सब लोक ऐसे स्फुरते हैं (चेष्टा करते हैं) कि जलमें (हंस आदि) पक्षी जैसे चेष्टा करते हैं जो सत्स्वरूप एकाक्षर सत् असत्से परे ब्रह्म है ॥ ३६ ॥

अनादिमध्यपर्यंतं न देवा नर्षयो विदुः ॥
ससुरासुरगंधर्वाःससिद्धर्षिमहोरगाः ॥ ३७ ॥

आदि,मध्य,अंत रहित है, जिसको देवता और ऋषि नहीं जानते हैं, जिसको सुर, असुर, गंधर्व, सिद्ध, ऋषि, महोरग ॥ ३७ ॥

प्रयता नित्यमर्चंति परमं दुःखभेषजम् ॥
अनादिनिधनं देवमात्मयोनिं सनातनम् ॥ ३८ ॥

दुःखमें परम ओषधिरूपको आदिअन्तरहित आत्मयोनि सनातन देवको सावधान होके नित्य पूजते हैं ॥ ३८ ॥

अप्रतर्क्यमविज्ञेयं हरिं नारायणं प्रभुम् ॥
यं वै विश्वस्य कर्तारं जगतस्तस्थुषां पतिम् ॥ ३९ ॥

तिस अप्रतर्क्य (विचारमें नहीं आसके ऐसे) अविज्ञेय हरि नारायण प्रभुको विश्वकर्त्ताको स्थावर जंगमसंसारके पतिको ॥३९॥

वदंति जगतोऽध्यक्षमक्षरं परमं पदम् ॥
हिरण्यवर्णो यो गर्भो दितेर्दैत्यनिषूदनः ॥ ४० ॥

जगत्का पति कहते हैं, अक्षर कहिये कभी क्षीण न हो ऐसे परम पद कहा जाता है, जो हिरण्यवर्ण गर्भ है (हिरण्यगर्भ) दितिके पुत्र दैत्योंको नष्ट करनेवाला है ॥ ४० ॥

एको द्वादशधा जज्ञे तस्मै सूर्यात्मने नमः ॥ ४१ ॥

और जो एक ही बारह प्रकारसे प्रगट होते भये तिस सूर्यात्मकरूप भगवान्के अर्थ नमस्कार है ॥ ४१ ॥

शुक्ले देवान् पितॄन् कृष्णे तर्पयत्यमृतेन यः ॥
यश्च राजा द्विजातीनां तस्मै सोमात्मने नमः॥ ४२॥

जो शुक्लपक्षमें देवताओंको और कृष्णपक्षमें पितरोंको अमृत-

करके तृप्त करता है, जो द्विजाति कहिये ब्राह्मणोंका पति है तिस सोमात्मक चन्द्रस्वरूपी भगवान्के अर्थ नमस्कार है ॥ ४२ ॥

महतस्तमसः पारे पुरुषं ह्यतितेजसम् ॥
यं ज्ञात्वा मृत्युमत्येति तस्मै ज्ञेयात्मने नमः ॥ ४३ ॥

महान् तमोगुण (मायाके पार) विषे पुरुष है जिस अत्यन्त तेजवाले पुरुषको जानके मृत्युको उलंघ जाता है मोक्षरूप हो जाता है तिस ज्ञेयात्मारूपी भगवान्के अर्थ नमस्कार है ॥ ४३ ॥

यं बृहन्तं बृहत्युक्थं यमिनो यं महाध्वरे ॥
यं विप्रसंघा गायन्ति तस्मै वेदात्मने नमः ॥ ४४ ॥

जिस बृहत् ब्रह्मरूपको जितेंद्रिय ब्रह्मचारी जन बृहति कहिये वेदविषे उक्थ अर्थात् सामवेदका अंगभेद ऋचास्वरूपी कहते हैं और ब्राह्मणोंके समूह जिसको महान् यज्ञमें (वेदरूपसे) गाते हैं तिस वेदात्मारूपी भगवान्के अर्थ नमस्कार है ॥ ४४ ॥

ऋग्यजुःसामाथर्वाणं दशार्द्धं हविरात्मकम् ॥
यं सप्ततन्तुं तन्वन्ति तस्मै यज्ञात्मने नमः ॥ ४५ ॥

ऋग्वेद, यजुर्वेद, साम, अथर्वरूप जो है और दशार्द्धसंज्ञक ऋचा (मन्त्र) रूपी जो है अथवा जो दशार्द्ध कहिये पञ्चभूतात्मक है तथा साकल्यरूप है जिस तन्तु अर्थात् यज्ञरूपीको सप्तऋषि विस्तारपूर्वक पूजते हैं तिस यज्ञात्माके अर्थ नमस्कार है ॥ ४५ ॥

चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च द्वाभ्यां पञ्चभिरेव च ॥
हूयते च पुनर्द्वाभ्यां तस्मै होमात्मने नमः ॥ ४६ ॥

चार वेदोंकरके चार होता उद्गाता आदिकोंसे दो स्त्री पुरुषोंसे

पांच प्राणापानादिकों करके फिर दो हाथ और स्रुवा करके जो हवन किया जाता है तिस होमात्मकरूपी भगवान्के अर्थ नमस्कार है ॥ ४६ ॥

यः सुपर्णो यजुर्नाम छंदोगात्रस्त्रिवृच्छिराः ॥
रथंतरं बृहत्साम तस्मै स्तोत्रात्मने नमः ॥ ४७ ॥

जो सुपर्णसंज्ञक यजुर्वेदरूप है छन्दोगात्र है वेदत्रयीयुक्त वा त्रिलोकीयुक्त, वा त्रिगुणयुक्त शिरवाले हैं रथंतर बृहत्सामवेद हैं तिस स्तोत्रात्मरूपी भगवान्के अर्थ नमस्कार है ॥ ४७ ॥

यः सहस्रसमे सत्रे यज्ञे विश्वसृजामृषिः ॥
हिरण्यपक्षः शकुनिस्तस्मै हंसात्मने नमः ॥ ४८ ॥

जो हजारवर्षतक अवधिवाले यज्ञमें ब्रह्मा आदिकोंके ऋषि होते हैं, हिरण्य (सुवर्ण) की पंखोंवाले पक्षी (हंस) हैं तिस हंसात्मकरूपी भगवान्के अर्थ नमस्कार है ॥ ४८ ॥

पदांगसंधिपर्वाणं स्वरव्यंजनभूषणम् ॥
यमाहुश्चाक्षरं नित्यं तस्मै वागात्मने नमः ॥ ४९ ॥

जो पद, अंग, संधि, पर्व ४ वेदका स्वरूप है स्वर व्यंजनका भूषण है जिसको नित्य अक्षर कहते हैं–तिस वागात्मा (वाणीरूप) भगवान्को नमस्कार है ॥ ४९ ॥

यज्ञांगो यो वराहो वै भूत्वा गामुज्जहार ह ॥
लोकत्रयहितार्थाय तस्मै वीर्यात्मने नमः ॥ ५० ॥

जो यज्ञांग वराहरूप होके त्रिलोकीके हितके वास्ते पृथ्वीका उद्धार करता भया तिस वीर्यात्माको नमस्कार है ॥ ५० ॥

यः शेते योगमास्थाय पर्यंके नागभूषिते ॥
फणासहस्ररचिते तस्मै निद्रात्मने नमः ॥५१ ॥

जो अपने योगके आश्रय होके हजार फणोंसे रची हुई शेष-शय्यापर शयन करते हैं तिस निद्रात्मारूपी भगवान्‌को नमस्कार है ॥ ५१ ॥

यश्चिनोति सतां सेतुमृतेनामृतयोनिना ॥
धर्मार्थं व्यवहारार्थं तस्मै सत्यात्मने नमः ॥ ५२ ॥

जो धर्मके वास्ते और व्यवहारके वास्ते अमृतयोनि सत्य करके श्रेष्ठ पुरुषोंके पुलको चिनते हैं तिस सत्यात्मस्वरूपी भगवान्‌के अर्थ नमस्कार है ॥ ५२ ॥

यं पृथग्धर्मचरणाः पृथग्धर्मफलैषिणः ॥
पृथग्धर्मैः समर्चंति तस्मै धर्मात्मने नमः ॥ ५३ ॥

अलग २ धर्मका आचरण करनेवाले अलग २ धर्मोंके फलोंकी इच्छावाले जन जिसको अलग २ धर्मोंकरके पूजते हैं तिस धर्मात्मा भगवान्‌के वास्ते नमस्कार है ॥ ५३ ॥

यतः सर्वे प्रसूयंते ह्यनंगात्सांगदेहिनः ॥
उन्मादः सर्वभूतानां तस्मै कामात्मने नमः ॥ ५४ ॥

जिस शरीररहित (कामदेवरूपी) ईश्वरके सकाशसे शरीरधारी जीव उत्पन्न होते हैं, जो सब भूतोंका उन्माद है तिस कामात्माके अर्थ नमस्कार है ॥ ५४ ॥

यं व्यक्तिस्थितमव्यक्तं विचिन्वन्ति महर्षयः ॥
क्षेत्रे क्षेत्रज्ञमासीनं तस्मै क्षेत्रात्मने नमः ॥ ५५ ॥

महर्षिजन जिस अव्यक्त (अप्रकटरूपी) को अलग २ स्थित

हुएको ढूँढते हैं क्षेत्रमें क्षेत्रज्ञरूपी बैठे हुए तिस क्षेत्रात्माके अर्थ नमस्कार है ॥५५॥

यं त्रिधाऽऽत्मानमात्मस्थं वृतं षोडशभिर्गुणैः ॥
प्राहुः सप्तदशं सांख्यास्तस्मै सांख्यात्मने नमः॥५६॥

सोलह प्रकारके (महदादिक) गुणोंकरके संयुक्त हुए तीन प्रकारके विश्व, तैजस, प्राज्ञ आत्माको आत्मामें स्थित हुएको सांख्यवाले सतरहवाँ पुरुष पृथक् कहते हैं तिस सांख्यात्माके अर्थ नमस्कार है॥ ५६ ॥

यं विनिद्रा जितश्वासाः शांता दांता जितेंद्रियाः ॥
ज्योतिः पश्यंति युंजानास्तस्मै योगात्मने नमः॥५७॥

निद्राको जीतनेवाले, श्वासको जीतनेवाले, शांत अंतःकरण और इंद्रियोंको जीतनेवाले योगधारीजन जिसको ज्योतिःस्वरूप देखते हैं तिस योगात्माके अर्थ नमस्कार है ॥ ५७ ॥

अपुण्यपुण्योपरमे यं पुनर्भवनिर्भयाः ॥
शांताः संन्यासिनो यांति तस्मै मोक्षात्मने नमः॥५८॥

शांत संन्यासीजन पुनर्जन्मके भयसे रहित होके पाप पुण्य रहित जिस (ब्रह्म) को प्राप्त होते हैं तिस मोक्षात्माके अर्थ नमस्कार है ॥ ५८ ॥

योऽसौ युगसहस्रान्ते प्रदीप्तार्चिर्विभावसुः ॥
संक्षोभयति भूतानि तस्मै घोरात्मने नमः ॥ ५९ ॥

जो हजार युगोंके अंतमें (प्रलयकालमें) प्रदीप्तकिरणोंवाला सूर्य होके सब भूतोंको क्षोभ करता है नष्ट करता है तिस घोरात्माके अर्थ नमस्कार है ॥ ५९ ॥

स भक्ष्य सर्वभूतानि कृत्वा चैकार्णवं जगत ॥
बालः स्वपिति यश्चैकस्तस्मै मायात्मने नमः ॥६०॥

संपूर्ण भूतोंको भक्षणकर जगत्‌में एकार्णव जल फैलाके जो अकेला बालकस्वरूप होके सोता है तिस मायात्माके अर्थ नमस्कार है ॥ ६० ॥

अजस्य नाभौ सभूतं यस्मिन्विश्वं प्रतिष्ठितम् ॥
ष्करं पुष्कराक्षस्य तस्मै पद्मात्मने नमः ॥ ६१ ॥

पुष्कराक्ष अजन्मा भगवान्‌की नाभिमें कमल उत्पन्न भया है और जिसमें विश्व प्रतिष्ठित (स्थित) है तिस पद्मात्माके अर्थ नमस्कार है ॥ ६१ ॥

सहस्रशिरसे चैव पुरुषायामितात्मन ॥
चतुःसमुद्रपर्यंके योगनिद्रात्मने नमः ॥ ६२ ॥

हजार शिरोंवाले अतुल आत्मावाले पुरुषके अर्थ चार सागररूपी जलशय्यापर योगनिद्रात्मा होनेवालेके अर्थ नमस्कार है ॥ ६२ ॥

यस्य केशेषु जीमूता नद्यः सर्वांगसंधिषु ॥
कुक्षौ समुद्राश्चत्वारस्तस्मै तोयात्मने नमः ॥६३॥

जिसके बालोंमें मेघ है और संपूर्ण अंगकी संधियोंमें नदी हैं कूखिमें चार समुद्र हैं तिस जलस्वरूपी भगवान्‌के अर्थ नमस्कार है ॥ ६३ ॥

यस्मात्सर्वाः प्रसूयंते सर्गप्रलयविक्रियाः ॥
यस्मिंश्चैव प्रलीयंते तस्मै हेत्वात्मने नमः ॥ ६४ ॥

रचना और प्रलयपर्यंत सब विकार (क्रिया) जिससे उत्पन्न होते हैं,

और जिसमें ही लीन हो जाते हैं तिस हेत्वात्माके अर्थ नमस्कार है ॥ ६४॥

योनिषण्णो भवेद्रात्रौ दिवा भवति धिष्ठितः ॥
इष्टानिष्टस्य च द्रष्टा तस्मै द्रष्ट्रात्मने नमः ॥ ६५ ॥

जो रात्रिविषे शिथिल हो जाता है दिनमें जाग्रत् अवस्थामें अधिष्ठाता साक्षी रहता है और इष्ट अनिष्ट (भली बुरी वस्तु) का देखनेवाला है तिस द्रष्ट्रात्माके अर्थ नमस्कार है ॥ ६५ ॥

अकुंठं सर्वकार्येषु धर्मकार्यार्थमुद्यतम् ॥
वैकुंठस्य हि तद्रूपं तस्मै कार्यात्मने नमः ॥ ६६ ॥

जो सब कार्योंमें निपुण तत्पर है धर्म कार्योंके वास्ते उद्यत है वह वैकुण्ठका ही रूप है तिस कार्यात्माके अर्थ नमस्कार है ६६॥

विभज्य पंचधाऽऽत्मानं वायुभूतः शरीरगः ॥
यश्चेष्टयति भूतानि तस्मै वाय्वात्मने नमः ॥ ६७ ॥

जो अपने आत्माका पांच प्रकार (पृथ्वी, वायु, जल, अग्नि, आकाश ऐसे) विभाग करके वायुस्वरूप हो सब शरीरोंमें प्राप्त होके भूतोंको चेष्टा कराता है तिसवाय्वात्माके अर्थ नमस्कार है६७

ब्रह्म वक्त्रं भुजौ क्षत्रं कृत्स्नमूरूदरं विशः ॥
पादौ यस्याश्रिताः शूद्रास्तस्मै वर्णात्मने नमः ॥६८॥

ब्राह्मण जिसका मुख है, क्षत्रि भुजा है, सब वैश्य जांघ और उदर है, शूद्र पैर है तिस वर्णात्माके अर्थ नमस्कार है ६८

युगेष्वावर्तते योगैर्मासर्त्वयनहायनैः ॥
सर्गप्रलययोः कर्ता तस्मै कालात्मने नमः ॥ ६९ ॥

मास, ऋतु, वर्ष इन्हों करके अपने योगोंकरके जो युगोंमें विचरता है उत्पत्ति और प्रलयको करनेवाला है तिस कालात्मा (कालस्वरूपी) के अर्थ नमस्कार है ॥ ६९ ॥

यस्याग्निरास्यं द्यौर्मूर्धा खं नाभिश्चरणौ क्षितिः ॥
सूर्यश्चक्षुर्दिशः श्रोत्रे तस्मै लोकात्मने नमः ॥ ७० ॥

अग्नि जिसका मुख है, स्वर्ग मस्तक है, आकाश नाभि है, पृथ्वी चरण है, सूर्य नेत्र हैं, दिशा कान हैं, तिस लोकआत्माके अर्थ नमस्कार है ॥ ७० ॥

परः कालात्परो यज्ञात्परात्परतरो हि यः ॥
अनादिरादिर्विश्वस्य तस्मै विश्वात्मने नमः ॥ ७१ ॥

वह परमात्मा कालसे परे है, यज्ञसे परे है, परमसे भी परे है, स्वयं अनादि है, विश्वके आद्य है, तिस विश्वात्माके अर्थ नमस्कार है ॥ ७१ ॥

विषये वर्तमानोऽयं तं वैशेषिकनिर्गुणैः ॥
प्राहुर्विषयगोप्तारं तस्मै गोप्त्रात्मने नमः ॥ ७२ ॥

जो विषय वर्तमान है तिसको वैशेषिक निर्गुणोंकरके विषयका गोप्ता रक्षक कहते हैं तिस गोप्ता रक्षक आत्माके अर्थ नमस्कार है ॥ ७२ ॥

अन्नपानेंधनमयो रसप्राणविवर्द्धनः ॥
यो धारयति भूतानि तस्मै प्राणात्मने नमः ॥ ७३ ॥

जो अन्न पानका ईंधनरूप हो रस प्राणोंको बढाता है जो भूतोंको धारण करता है तिस प्राणात्माके अर्थ नमस्कार है ७३॥

पिंगेक्षणसटं यस्य रूपं दंष्ट्रानखायुधम् ॥
दानवेंद्रांतकरणं तस्मै दृप्तात्मने नमः ॥ ७४ ॥

जिसका रूप पिंगल नेत्रोंवाला और पिंगलवर्णजटाधारी है और डाढ तथा नखोंका आयुध शस्त्रवाला है, दानवोंका नाश करनेवाला है तिस दृप्तात्मा (मदोन्मत्त अभिमानीरूप) के अर्थ नमस्कार है ॥ ७४ ॥

रसातलगतः श्रीमाननन्तो भगवान्विभुः ॥
जगद्धारयते कृत्स्नं तस्मै वीर्यात्मने नमः ॥ ७५ ॥

जो श्रीमान् अनन्त विभु भगवान् रसातलमें प्राप्त होके सम्पूर्ण जगत्को धारणकर रहा है तिस वीर्यात्मा (बलरूपी) के अर्थ नमस्कार है ॥ ७५ ॥

यो मोहयति भूतानि स्नेहपाशानुबन्धनैः ॥
सर्गस्य रक्षणार्थाय तस्मै मोहात्मने नमः ॥ ७६ ॥

जो स्नेहपाशोंके अनुबन्धों करके संपूर्ण भूतोंको (प्राणिमात्रोंको) संसारकी रक्षाके वास्ते मोहता है तिस मोहनरूपीके अर्थ नमस्कार है ॥ ७६ ॥

भूतलातलमध्यस्थो हत्वा तु मधुकैटभौ ॥
उद्धृता येन वै वेदास्तस्मै मत्स्यात्मने नमः ॥ ७७ ॥

जिसने पाताललोकमें स्थित हुये मधु कैटभ दैत्य मारके वेदोंका उद्धार किया तिस वेदात्माके अर्थ नमस्कार है ॥ ७७ ॥

ससागरनगां बिभ्रत्सप्तद्वीपां वसुन्धराम् ॥
यो धारयति पृष्ठेन तस्मै कूर्मात्मने नमः ॥ ७८ ॥

समुद्र और पर्वतों सहित सात द्वीपोंवाली पृथ्वीको जो अपनी पीठ करके धारण करता है तिस कूर्म (कछुआ) स्वरूपी भगवान्के अर्थ नमस्कार है ॥ ७८ ॥

एकार्णवे हि मग्नां तां वाराहं रूपमास्थितः ॥
उद्दधार महीं योऽसौ तस्मै क्रोडात्मने नमः ॥७९॥

जो वराह (सूकर) रूप करके एकार्णव जलमें डूबी हुई पृथ्वीका उद्धार करता भया तिस वराहरूपी भगवान्के अर्थ नमस्कार है ॥ ७९ ॥

नारसिंहं वपुः कृत्वा यस्त्रैलोक्यभयंकरः ॥
हिरण्यकशिपुं जघ्ने तस्मै सिंहात्मने नमः ॥ ८० ॥

जो त्रिलोकीको भयंकर नृसिंहरूप धारण करके हिरण्यकशिपु दैत्यको मारता भया तिस नृसिंहरूपी भगवान्के अर्थ नमस्कार है ॥ ८० ॥

वामनं रूपमास्थाय बलिं संयम्य मायया ॥
सहस्रार्जुनहंतेव तस्मा उग्रात्मने नमः ॥ ८१ ॥

जो वामनरूप धारणकर मायासे बलिको धरके वशमें करता भया और ये तीनों लोक माप लिये तिस उग्रात्माके अर्थ नमस्कार है ॥ ८१ ॥

जमदग्निसुतो भूत्वा रामः परशुधृक्प्रभुः ॥
इमे क्रांतास्त्रयो लोकास्तस्मै क्रांतात्मने नमः ॥८२॥

जो प्रभु जमदग्नि ऋषिका पुत्र परशुराम होके सहस्रबाहु राजाको मारता भया तिस क्रान्तात्माके अर्थ नमस्कार है ॥८२॥

रामो दाशरथिर्भूत्वा पौलस्त्यकुलनन्दनम् ॥
जघान रावणं संख्ये तस्मै क्षत्रात्मने नमः ॥ ८३ ॥

जो दशरथका पुत्र रामचन्द्रजी होके पुलस्त्य ऋषिके कुलमें होनेवाले रावणको युद्धमें मारते भये तिस क्षत्रियरूप आत्माके अर्थ नमस्कार है ॥ ८३ ॥

वसुदेवसुतः श्रीमान्वासुदेवो जगत्पतिः ॥
जहार वसुधाभारं तस्मै कृष्णात्मने नमः ॥ ८४ ॥

जो वसुदेवके पुत्र श्रीमान् वासुदेव पृथ्वीके भारको उतारते भये तिस श्रीकृष्णात्माको नमस्कार है ॥ ८४ ॥

बुद्धरूपं समास्थाय सर्वरूपपरायणः ॥
मोहयन्सर्वभूतानि तस्मै मोहात्मने नमः ॥ ८५ ॥

जो बुद्धावतार करके सब रूपोंमें परायण हो सब भूतोंको मोहता है तिस मोहात्माके अर्थ नमस्कार है ॥ ८५ ॥

हनिष्यति कलेरंते म्लेच्छांस्तुरगवाहनः ॥
धर्मसंस्थापनार्थाय तस्मै कल्क्यात्मने नमः ॥ ८६॥

जो कलियुगके अंतमें घोड़ाकी सवारी करके (अवतार हो) धर्मकी स्थिति करनेके वास्ते म्लेच्छोंको मारेगा तिस कल्कि आत्माके अर्थ नमस्कार है ॥ ८६ ॥

आत्मज्ञानमिदं ज्ञानं ज्ञात्वा पंचस्ववस्थितः ॥
यं ज्ञानेनाधिगच्छंति तस्मै ज्ञानात्मने नमः ॥ ८७ ॥

पांच भूतोंमें अवस्थित हुआ (जीव) इस आत्मज्ञानको जानके जिसको ज्ञानका अधिष्ठाता मानता है तिस ज्ञानात्माके अर्थ नमस्कार है ॥ ८७ ॥

अप्रमेयशरीरस्य सर्वतो बुद्धिचक्षुषे ॥
अपारापरिमेयाय तस्मै दिव्यात्मने नमः ॥ ८८ ॥

अप्रमेयशरीरवाले सब तरफ बुद्धि और नेत्रोंवाले अपार अपरिमेय तिस दिव्यात्माके अर्थ नमस्कार है ॥ ८८ ॥

जटिने दंडिने नित्यं लंबोदरशरीरिणे ॥
कमंडलुनिषंगाय तस्मै ब्रह्मात्मने नमः ॥ ८९ ॥

जटाधारी नित्य दण्डधारी लंबोदर शरीरवाले कमंडलुरूप (तरकस) वा शस्त्रवाले तिस ब्रह्मात्मा (ब्रह्मारूपी) के अर्थ नमस्कार है ॥ ८९ ॥

शूलिने त्रिदशेशाय त्र्यंबकाय महात्मने ॥
भस्मदिग्धोर्ध्वलिंगाय तस्मै रुद्रात्मने नमः ॥ ९० ॥

त्रिशूलधारी देवताओंके पति त्र्यंबक तीन नेत्रोंवाले अथवा तीनों लोकोंके पिता भस्मसे लिपेहुए शरीरवाले ऊर्ध्वलिंगवाले ऐसे रुद्रात्माके अर्थ नमस्कार है ॥ ९० ॥

चंद्रार्धकृतशीर्षाय व्यालयज्ञोपवीतिने ॥
पिनाकशूलहस्ताय तस्मा उग्रात्मने नमः ॥ ९१ ॥

मस्तकमें अर्द्ध चन्द्रमाको धारण करनेवाले, सर्पका यज्ञोपवीत धारण करनेवाले, धनुष और शूलको हाथमें धारण करनेवाले तिस उग्रात्माके अर्थ नमस्कार है ॥ ९१ ॥

पंचभूतात्मभूताय भूतादिनिधनाय च ॥
अक्रोधद्रोहमोहाय तस्मै शांतात्मने नमः ॥ ९२ ॥

पंचभूतोंके आत्मभूत भूतोंके आदि और अंतस्वरूप क्रोध द्रोह मोहसे रहित तिस शांतात्माके अर्थ नमस्कार है ॥ ९२ ॥

यस्मिन्सर्वं यतः सर्वे यः सर्वे सर्वतश्च यः ॥
यश्च सर्वमयो देवस्तस्मै सर्वात्मने नमः ॥ ९३ ॥

जिसविषे सब है जिससे सब होते हैं जो सर्वस्वरूप है सब जगह है जो सर्वमय देव है तिस सर्वात्माके अर्थ नमस्कार है यहां कर्ता,करण,उपादान, कर्म, सब कुछ ईश्वर (ब्रह्म) ही माना है९३॥

विश्वकर्मन्नमस्तेऽस्तु विश्वात्मा विश्वसंभवः ॥
अपवर्गस्थभूतानां पंचानां परतः स्थितः ॥ ९४ ॥

हे विश्वकर्मन् ! तुम्हारे अर्थ नमस्कार है तुम विश्वके आत्मा हो तुमसे विश्व होताहै मोक्षमें स्थित हुए भूतोंको पांच तत्त्वोंसे परे अलग स्थितहुए प्राप्त हो ॥ ९४ ॥

नमस्ते त्रिषु लोकेषु नमस्ते परतस्त्रिषु ॥
नमस्ते त्रिषु सर्वेषु त्वं हि सर्वमयो निधिः ॥ ९५ ॥

त्रिलोकीमें (स्थित हुए) तुम्हारे अर्थ नमस्कार है तीन गुणों-विषे अथवा त्रिलोकी विषे (परतः) अलग अधिष्ठाता रहने-वाले तुम्हारे अर्थ नमस्कार है, त्रिगुणोंमें वा त्रिलोकीमें सब जगह तुम ही सर्वमय निधि हो ॥ ९५ ॥

नमस्ते भगवन्विष्णो लोकानां प्रभवाप्ययः ॥
त्वं हि कर्ता हृषीकेश संहर्ता चापराजितः ॥ ९६ ॥

हे भगवन् ! हे विष्णो ! तुम्हारे अथ नमस्कार है तुम लोकों-की उत्पत्ति और नाश करनेवाले हो हे हृषीकेश ! तुम ही कर्ता संहर्त्ता और अपराजित अर्थात् किसीसे नहीं हारनेवाले हो ॥९६॥

तेन पश्यामि भगवन्दिव्येषु त्रिषु वर्त्मसु ॥
तच्च पश्यामि तत्त्वेन यत्ते रूपं सनातनम् ॥ ९७ ॥

हे भगवन् ! दिव्य तीन लोकोंमें तुम्हारे रूपको मैं नहीं देखता हूँ और जो तुम्हारा सनातनरूप है उसको तो मैं तत्त्वसे देखता हूँ ९७

दिवं ते शिरसा व्याप्तं पद्भ्यां देवी वसुंधरा ॥
विक्रमेण त्रयो लोकाः पुरुषोऽसि सनातनः ॥ ९८ ॥

स्वर्ग तुम्हारे शिर करके व्याप्त हो रहा है और पैरोंकरके पृथ्वी व्याप्त हो रही है तुम्हारे पराक्रम करके तीनों लोक व्याप्त रहते हैं तुम सनातन पुरुष हो ॥ ९८ ॥

दिशो भुजा रविश्चक्षुर्वीर्यं शुक्रः प्रजापतिः ॥
सप्त मार्गा निरुद्धास्ते वायोरमिततेजसः ॥ ९९ ॥

दिशा भुजा हैं सूर्य नेत्र हैं शुक्र प्रजापति वीर्य है और अतुल तेजवाले तुम्हारी वायु करके सात मार्ग रुक रहे हैं ॥ ९९ ॥

अतसीपुष्पसंकाशं पीतकौशेयवाससम् ॥
ये नमस्यंति गोविंदं न तेषां विद्यते भयम् ॥ १०० ॥

अतसी (अलसी) के पुष्पसमान नीले कांतिवाले पीले रेशमी वस्त्रोंवाले गोविंद भगवान् को जो नमस्कार करते हैं उनको भय नहीं है ॥ १०० ॥

नमो नरकसंत्रासरक्षामण्डलकारिणे ॥
संसारनिम्नगावर्त्ततरिकाष्ठाय विष्णवे ॥ १ ॥

नरकके त्रासमें रक्षामंडल करनेवाले संसाररूपी नदीके आवर्त्त (भौंहरियोंमें) नौकारूप मार्गवाले विष्णु भगवान् के अर्थ नमस्कार है ॥ १ ॥

नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च ॥

जगद्धिताय कृष्णाय गोविंदाय नमोनमः ॥ २ ॥

ब्रह्मण्य देवके अर्थ गौ ब्राह्मणोंके हित करनेवाले और जगत्का हित करनेवाले श्रीकृष्ण गोविंदके अर्थ वारंवार नमस्कार है ॥ २ ॥

प्राणकांतारपाथेयं संसारच्छेदभेषजम् ॥
दुःखशोकपरित्राणं हरिरित्यक्षरद्वयम् ॥ ३॥

प्राणरूपी गह्वरवनमें, खर्ची (उपयोगी वस्तु,) संसारका छेदन करनेमें औषधरूप, दुःख शोकसे रक्षा करनेवाले ऐसे हरि ये दो अक्षर हैं ॥ ३ ॥

यथा विष्णुमयं सत्यं यथा विष्णुमयं जगत् ॥
यथा विष्णुमयं सर्वं पाप्मनो नाशकस्तथा ॥ ४ ॥

जैसे विष्णुमय सत्य है और विष्णुमय जगत् है जैसे संपूर्ण विष्णुमय है तैसे मेरे पापको नष्ट करनेवाले विष्णु हैं ॥ ४ ॥

त्वां प्रपन्नाय भक्ताय गतिमिष्टां जिगीषवे ॥
यच्छ्रेयः पुंडरीकाक्ष तद्ध्यायस्व सुरेश्वर ॥ ५ ॥

हे सुरेश्वर ! हे पुंडरीकाक्ष ! तुम्हारी शरण प्राप्त हुए मनोवांछित गतिको चाहनेवाले भक्तके अर्थ जो कल्याण है उसको आप चिंतवन करो ॥ ५ ॥

इति विद्यातपोयोनिरयोनिर्विष्णुरीडितः ॥
वाग्यज्ञेनार्चितो देवः प्रीयतां मे जनार्दनः ॥ ६ ॥

इस प्रकारसे विद्या तपकी योनि और अयोनि (उत्पत्ति-रहित) विष्णु भगवान् स्तुत किये वाणीरूप यज्ञ करके पूजित किये जनार्दन देव मुझपर प्रसन्न हों ॥ ६ ॥

नारायणपरं ब्रह्म नारायणपरं तपः ॥
नारायणपरं चेदं सर्वं नारायणात्मकम् ॥ ७ ॥

नारायण परब्रह्म है नारायण परम तप है यह सम्पूर्ण विश्व नारायणपर है नारायणात्मक (नारायण स्वरूप) है ॥ ७ ॥

वैशंपायन उवाच ।

एतावदुक्त्वा वचनं भीष्मस्त्वादृतमानसः ॥
नम इत्येव कृष्णाय प्रणाममकरोत्तदा ॥ ८ ॥

वैशंपायन कहते हैं—आदरसहित मनवाला भीष्मपितामहजी इतना यह वचन कहके तब 'श्रीकृष्णाय नमः' ऐसे श्रीकृष्णको प्रणाम करते भये ॥ ८ ॥

अभिगम्य तु योगेन भक्तिं भीष्मस्य माधवः ॥
त्रैलोक्यदर्शने ज्ञानं दिव्यं दत्त्वा ययौ हरिः ॥ ९ ॥

श्रीकृष्ण हरि भगवान् योगकरके भीष्मपितामहजी भक्तिको प्राप्त होके त्रिलोकी दर्शनमें दिव्य ज्ञान देके जाते भये ॥ ९ ॥

तस्मिन्नुपरते शब्दे ततस्ते ब्रह्मवादिनः ॥
भीष्मं वाग्भिर्बाष्पकंठास्तमानर्चुर्महामतिम् ॥ ११० ॥

तिस भीष्मजी विषे शब्द (बोलना) बंद होगया तब वे ब्रह्मवादी ऋषिलोग गद्गद कंठवाले होके महामति तिस भीष्मजीको वचनोंकरके पूजते भये ॥ ११० ॥

ते स्तुवंतश्च विप्राग्र्याः केशवं पुरुषोत्तमम् ॥
भीष्मं च शनकैः सर्वे प्रशशंसुः पुनः पुनः ॥ ११ ॥

पुरुषोत्तम श्रीकृष्णकी स्तुति करते हुए वे सब उत्तम ब्राह्मण वारंवार शनैः २ भीष्मजीको सराहते भये ॥ ११ ॥

यं योगिनः प्राणविमोक्षकाले यत्नेन चित्ते विनिवेशयंति ॥ साक्षात्पुरस्ताद्धरिमीक्षमाणः प्राणाञ्जहौ प्राप्तकालो हि भीष्मः ॥ १२ ॥

प्राण निकलनेके समय योगीजन जिस भगवान्‌को यत्नसे अपने चित्तमें ठहराते हैं तिस हरि भगवान्‌को साक्षात् अपने आगे देखताहुआ प्राप्त भया है काल जिसका ऐसा भीष्मपितामहजी अपने प्राणोंको त्यागता भया ॥ १२ ॥

शुक्लपक्षे दिवा भूमौ गंगायां चोत्तरायणे ॥
धन्यास्तात मरिष्यंति हृदयस्थे जनार्दने ॥ १३ ॥

हे तात ! शुक्लपक्षमें दिनमें गंगाजीके तटपर भूमिमें उत्तरायण कालमें जनार्दन भगवान्‌को हृदयमें स्थित करके जो मरेंगे वे धन्य हैं ॥ १३ ॥

विदित्वा भक्तियोगं तु भीष्मस्य पुरुषोत्तमः ॥
सहसोत्थाय संतुष्टो यानमेवान्वपद्यत ॥ १४ ॥

पुरुषोत्तम भगवान् भीष्मजीके भक्तियोगको जानके प्रसन्न हो खडे होके शीघ्रही गमन करते भये ॥ १४ ॥

केशवः सात्यकिश्चैव रथेनैकेन जग्मतुः ॥
अपरेण महात्मानौ युधिष्ठिरधनंजयौ ॥ १५ ॥

श्रीकृष्णभगवान् और सात्यकि एक रथमें बैठके गमन करते भये दूसरे रथमें बैठके युधिष्ठिर और अर्जुन गमन करते भये ॥१५॥

भीमसेनो यमौ चोभौ रथमेकं समास्थिताः ॥
कृपो युयुत्सुः सूतश्च संजयश्चापरं रथम् ॥ १६ ॥

भीमसेन और नकुल सहदेव एक ही रथमें बैठके गमन करते भये, कृपाचार्य, युयुत्सु, सूत, संजय ये एक रथमें बैठते भये॥१६॥

ते रथैर्नगराकारैः प्रयाताः पुरुषर्षभाः ॥
नेमिघोषेण महता कम्पयंतो वसुंधराम् ॥ १७ ॥

नगरके समान (ऊंचे) आकारवाले रथोंमें बैठेहुए ये उत्तम पुरुष सबही लोग रथचक्रोंके शब्दकरके संपूर्ण पृथ्वीको कँपातेहुए गमन करते भये ॥ १७ ॥

ततो गिरः पुरुषवरस्तवान्विता द्विजेरिताः पथि
सुमनाः स शुश्रुवे ॥ कृतांजलिं प्रणतमथापरं
जनं स केशिहा मुदितमनाभ्यनंदत ॥ १८ ॥

इसके अनंतर केशी दैत्यको मारनेवाले श्रीकृष्ण विष्णु भगवान्की स्तुतिके वचनोंको ब्राह्मणोंकरके कहे हुओंको सुनते भये। तब प्रसन्नमनवाले श्रीकृष्ण अंजली बांधके खडे हुए प्रणत हुए अन्यजनको प्रसन्नमन करके सराहते भये ॥ १८ ॥

अनादिनिधनं विष्णुं सर्वलोकमहेश्वरम् ॥
धर्माध्यक्षं स्तुवन्नित्यं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १९ ॥

आदि अन्त रहित सब लोकोंके महेश्वर धर्मके अधिपति ऐसे विष्णु अर्थात् सबलोकमें व्याप्त रहनेवाले देवको नित्यप्रति स्तुति करता हुआ जन सब पापोंसे छूटता है ॥ १९ ॥

इमं स्तवं यः पठति शार्ङ्गधन्वनः शृणोति वा भक्तिसमन्वितो जनः ॥ स चक्रधृक्प्रतिहतसर्व-कल्मषो जनार्दनं प्रविशति देहसंक्षये ॥ १२० ॥

जो मनुष्य विष्णुके इस स्तोत्रको भक्तिसे पढ़ता है वह शरीर नाश हुए पीछे विष्णुकरके सब पापोंसे छूटके विष्णुमें लीन हो जाता है ॥ १२० ॥

अशनिशितसुधारं यस्य चक्रं सुचारु मणिकनक-विचित्रे कुण्डले यस्य कर्णे ॥ भ्रमरशतसहस्रैः सेविता यस्य माला असुरकुलनिहन्ता प्रीयतां वासुदेवः ॥ २१ ॥

जिन विष्णु भगवान्का चक्र वज्रसमान पैना और सुन्दर धारवाला उत्तम है और मणि तथा सुवर्णसे विचित्र जिनके कानोंमें कुण्डल हैं जिनकी माला सैकड़ों हजारों भ्रमरों करके सेवित है असुरकुलको मारनेवाले वे वासुदेव भगवान् प्रसन्नहों २१

स्तवराजः समाप्तोऽयं विष्णोरद्भुतकर्मणः ॥ गांगेयेन पुरा गीतो महापातकनाशनः ॥ २२ ॥

अद्भुत कर्मवाले विष्णुका यह स्तवराज समाप्त भया। महापा-पोंको नष्ट करनेवाला यह स्तोत्र पहले भीष्मपितामहने कहा है२२॥

श्रीभगवानुवाच ।

यः संपठेदिदं स्तोत्रं मम जन्मानुकीर्त्तनम् ॥
देवलोकमतिक्रम्य तस्य लोको यथा मम ॥ १२३ ॥

श्रीभगवान् बोले-कि जिसमें मेरे जन्म चरित्रोंका वर्णन है. ऐसे इस मेरे स्तोत्रका जो पुरुष पाठ करेगा वह देवलोक अर्थात् स्वर्गादिलोकोंका अतिक्रमण करके मेरे लोकको प्राप्त होगा ॥ १२३ ॥

इति श्रीमन्महाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासि-
क्यां शांतिपर्वणि भीष्मयुधिष्ठिरसंवादे पं० वसति-
रामकृतभाषाटीकायां भीष्मस्तवराजः समाप्तः ।



॥ श्रीः ॥

अथानुस्मृतिः ।

बरीनिवासी-पण्डितवसतिरामविरचित-

भाषाटीकासमेता ।

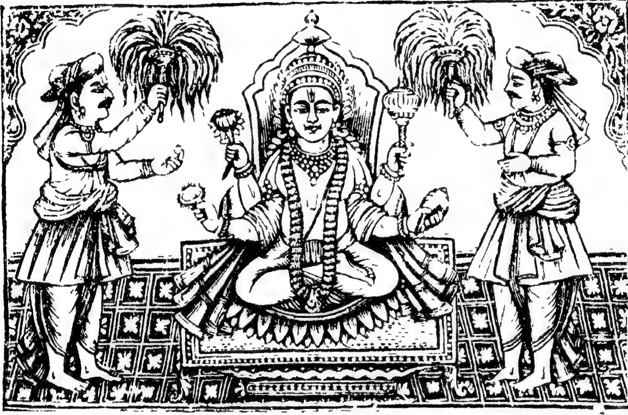
खेमराज श्रीकृष्णदास,

अध्यक्ष-"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस,

बम्बई

सं० १९९१, श० १८५६.

अथानुस्मृतिः ।



न वासुदेवात्परमस्ति मङ्गलं
न वासुदेवात्परमस्ति पावनम् ।
न वासुदेवात्परमस्ति दैवतं
तं वासुदेवं प्रणमन्न सीदति ॥ १ ॥



श्रीः ।

अथानुस्मृतिः ।

भाषाटीकासमेता ।



शतानीक उवाच ।

महामते महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रविशारद ॥
अक्षीणकर्मबंधस्तु पुरुषो द्विजसत्तम ॥ १ ॥

शतानीक बोले-हे द्विजसत्तम ! हे महामते ! हे महाप्राज्ञ ! हे सर्वशास्त्रविशारद ! जिसका कर्मरूपी बंधन नहीं छूटा हो वह पुरुष ॥ १ ॥

सततं किं जपेज्जाप्यं विबुधः किमनुस्मरन् ॥
मरणे यज्जपेज्जाप्यं यं च भावमनुस्मरन् ॥ २ ॥

निरंतर किस मंत्रको जपै, पंडितजन क्या स्मरण करैं, मरण-समयमें जो जपने लायक जपै और जिस भावको स्मरण करता हुआ ॥ २ ॥

यच्च ध्यात्वा द्विजश्रेष्ठ पुरुषो मृत्युमागतः ॥
परं पदमवाप्नोति तन्मे वद महामुने ॥ ३ ॥

जिसका ध्यान करके पुरुष मृत्युको प्राप्त होके परमपद (मोक्ष) को प्राप्त हो हे द्विजश्रेष्ठ ! हे महामुने ! वह मेरे आगे कहो ॥३॥

शौनक उवाच ।

इदमेव महाप्राज्ञ पृष्टवांश्च पितामहम् ॥
भीष्मं धर्मभृतां श्रेष्ठं धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ४ ॥

शौनकजी कहते हैं हे महाप्राज्ञ ! इसको ही धर्मके पुत्र युधिष्ठिर धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ भीष्मपितामहजीसे पूछते भये ॥ ४ ॥

युधिष्ठिर उवाच ।

पितामह महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रविशारद ॥
प्रयाणकाले किं चिंत्यं मुमुक्षोस्तत्त्वचिंतकैः ॥ ५ ॥

युधिष्ठिर बोले—हे पितामह ! हे महाप्राज्ञ ! हे सर्वशास्त्रविशारद ! तत्त्वको चिंतवन करनेवाले मुमुक्षु (मोक्षकी इच्छावाले) जनोंको मरणसमयमें क्या चिंतवन करना चाहिये ॥ ५ ॥

किं नु स्मरन् कुरुश्रेष्ठ मरणे पर्युपस्थिते ॥
प्राप्नुयां परमां सिद्धिं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥६॥

हे कुरुश्रेष्ठ ! मरणसमय प्राप्त होवे तब किसका स्मरण करता हुआ जन परम सिद्धिको प्राप्त होवे यह तत्त्वसे मैं सुना चाहता हूँ ॥ ६ ॥

भीष्म उवाच ।

तद्युक्तं स्वहितं सूक्ष्मं प्रश्नमुक्तं त्वयाऽनघ ॥
शृणुष्वावहितो राजन्नारदेन पुरा श्रुतम् ॥ ७ ॥

भीष्मजी बोले—हे राजन् ! तुमने वही यथायोग्य स्वहित सूक्ष्म प्रश्न कहा है जो कि, पहले नारदने सुना था अब सावधान होके तुम सुनो ॥ ७ ॥

श्रीवत्सांकं जगद्बीजमनंतं लोकसाक्षिणम् ॥
पुरा नारायणं देवं नारदः परिपृष्टवान् ॥ ८ ॥

पहले श्रीवत्सचिह्नवाले जगत्के बीज अनन्तलोकके साक्षी नारायणदेवसे नारद पूछता भया ॥ ८ ॥

नारद उवाच ।

त्वमक्षरं परं ब्रह्म निर्गुणं तमसः परम् ॥
आहुर्वेद्यं परं धाम ब्रह्माणं कमलोद्भवम् ॥ ९ ॥

नारदजी बोले– तुम परम अक्षर (नहीं घटनेवाले) ब्रह्म हो निर्गुण मायासे वा अज्ञानसे परे हो, कमलसे उत्पन्न हुए ब्रह्माजीको जानने योग्य परमधाम तुमको कहते हैं ॥ ९ ॥

भगवन् भूतभव्येश श्रद्दधानैर्जितेंद्रियैः ॥
कथं भक्तैर्विचिंत्योऽसि योगिभिर्मोक्षकांक्षिभिः॥१०॥

हे भगवन् ! हे भूतभविष्यत्के पति ! श्रद्धावान् भक्तोंकरके और मोक्षकी इच्छावाले योगीजनों करके आप कैसे चिन्तवन करे जावो ॥ १० ॥

किंनु जाप्यं जपेन्नित्यं कल्य उत्थाय मानवः ॥
कथं जपेत्सदा ध्यायेद्ब्रूहि तत्त्वं सनातनम् ॥ ११ ॥

प्रातःकाल उठके मनुष्यने क्या जाप्य मन्त्र जपना चाहिये कैसे जपै, कैसे सदा ध्यान करै ऐसे सनातनतत्त्वको कहो ॥११॥

भीष्म उवाच ।

श्रुत्वा च देवदेवर्षेर्वाक्यं वाक्यविशारदः ॥
प्रोवाच भगवान्विष्णुर्नारदाय च धीमते ॥ १२ ॥

भीष्मपितामह कहते हैं–वाक्यविशारद विष्णुभगवान् देवऋषि नारदके वचनको सुनके बुद्धिमान् नारदजीके अर्थ बोले ॥ १२ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

हन्त ते कथयिष्यामि इमां दिव्यामनुस्मृतिम् ॥
मरणे मामनुस्मृत्य प्राप्नोति परमां गतिम् ॥ १३ ॥

श्रीभगवान् बोले-अब तेरे आगे इस दिव्य अनुस्मृति (स्तोत्र) को कहूँगा, मरणसमयमें मेरा स्मरण करके मनुष्य परमगतिको प्राप्त होता है ॥ १३ ॥

यामधीत्य प्रयाणे तु मद्भावायोपपद्यते ॥
ओंकारमग्रतः कृत्वा मां नमस्कृत्य नारद ॥ १४ ॥

जिसको मरणसमयमें पढ़के मेरे भावको प्राप्त होता है (तिस अनुस्मृतिको सुन) हे नारद ! ॐकारको आगे कर मुझको नमस्कार करके ॥ १४ ॥

एकाग्रः प्रयतो भूत्वा इमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥
ओं नमो भगवते वासुदेवाय इत्ययम् ॥ १५ ॥

एकाग्र सावधान होके इस मन्त्रको उच्चारण करे (ॐनमो भगवते वासुदेवाय) ऐसा यह मन्त्र है ॥ १५ ॥

अवशेनापि यन्नाम्नि कीर्तिते पुरुषोत्तमः ॥
पुमान्विमुच्यते सद्यः सिंहत्रस्तैर्मृगैरिव ॥ १६ ॥

अवश हुआ पुरुष भी इस नामका कीर्त्तन करनेसे सब पापोंसे शीघ्र ही छूट जाता है, जैसे सिंहसे भयभीत हुए मृग अलग होजाते हैं ॥ १६ ॥

क्षराक्षरविसृष्टस्तु शोच्यते पुरुषोत्तमः ॥
अव्यक्तं शाश्वतं देवं प्रभवं पुरुषोत्तमम् ॥ १७ ॥

(क्षरअक्षरविशिष्ट) जिसने जीव, ईश्वर रचे हैं ऐसे पुरुषोत्तम भगवान् ध्याये जाते हैं, अव्यक्त शाश्वत (सनातन) देव जगत्में अपने अंशादिकसे उत्पन्न होनेवाले पुरुषोत्तम ॥ १७ ॥

प्रपद्ये पुंडरीकाक्षं देवं नारायणं हरिम् ॥
लोकनाथं सहस्राक्षमक्षरं परमं पदम् ॥ १८ ॥

पुण्डरीकाक्ष नारायण देव हरिकी मैं शरण हूँ, लोकोंके नाथ सहस्राक्ष अक्षर परमपद ॥ १८ ॥

भगवंतं प्रपन्नोऽस्मि भूतभव्यभवत्प्रभुम् ॥
स्रष्टारं सर्वलोकानामनंतं विश्वतोमुखम् ॥ १९ ॥

भूत भविष्यत् वर्तमानके स्वामी सब लोकोंके कर्ता सब तर्फ मुखवाले ऐसे अनन्त भगवान्की मैं शरण हूँ ॥ १९ ॥

पद्मनाभं हृषीकेशं प्रपद्ये सत्यमच्युतम् ॥
हिरण्यगर्भममृतं भूगर्भं तमसः परम् ॥ २० ॥

पद्मनाभ हृषीकेश सत्यस्वरूप अच्युत (अपने स्थानसे पतित नहीं होनेवाले) हिरण्यगर्भ, अमृत, भूगर्भ, तम अर्थात् माया और अज्ञानसे परे (अलग रहनेवाले) ऐसे भगवान्की मैं शरण हूँ ॥ २० ॥

प्रभोः प्रभुमनाद्यं च प्रपद्ये तं रविप्रभम् ॥
सहस्रशीर्षकं देवं महर्षेः सत्त्वभावनम् ॥ २१ ॥

प्रभोः अर्थात् ब्रह्मादिक प्रभुओंके प्रभु (स्वामी) अनादि सूर्य समान कांतिवाले हजार शिरोंवाले महर्षि कपिलाचार्य आदिरूपसे सत्त्व सांख्यशास्त्र आदिको प्रवृत्त करनेवाले ऐसे भगवान्की शरण हूँ ॥ २१ ॥

प्रपद्ये सूक्ष्ममचलं वरेण्यमनघं शुचिम् ॥
नारायणं पुराणेशं योगावासं सनातनम् ॥ २२ ॥

सूक्ष्म, अचल, वरेण्य (प्रधान मुख्य पुरुष), पापरहित, पवित्र, नारायण, पुराणेश, योगावास अर्थात् योगके निवास-स्थान, सनातन ऐसे भगवानकी शरण हूँ ॥ २२ ॥

संयोगं सर्वभूतानां प्रपद्ये शिवमीश्वरम् ॥
यः पुरा प्रलये प्राप्ते नष्टे स्थावरजंगमे ॥ २३ ॥

संपूर्ण भूतोंके संयोगरूप शिव ईश्वरको शरण हूँ और जो पहले प्रलयसमयमें स्थावर जंगम सब जगत् नष्ट होने पर ॥ २३ ॥

ब्रह्मादिषु प्रलीनेषु नष्टे लोके चराचरे ॥
एकस्तिष्ठति विश्वात्मा स मे विष्णुः प्रसीदतु ॥२४ ॥

ब्रह्मादिक और चराचर लोक नष्ट होनेपर जो विश्वात्मा अकेला स्थित रहता है सो विष्णु मुझपर प्रसन्न हो ॥ २४ ॥

यः प्रभुः सर्वलोकानां येन सर्वमिदं ततम् ॥
चराचरगुरुर्देवः स मे विष्णुः प्रसीदतु ॥ २५ ॥

जो सब लोकोंका प्रभु है जिसने यह संपूर्ण जगत् रचा रखा है, जो देव चराचर जगत्का गुरु है सो विष्णु मुझपर प्रसन्न हो ॥ २५ ॥

आभूतसंप्लवे चैव प्रलीने प्रकृतौ महान् ॥
योऽवतिष्ठति विश्वात्मा स मे विष्णुःप्रसीदतु ॥ २६॥

महाप्रलयके समयमें महान् प्रकृति (माया) में लीन होनेपर जो विश्वात्मा अवशेष बाकी रहता है सो विष्णु मुझपर प्रसन्न हो ॥ २६ ॥

येन क्रांतास्त्रयो लोका दानवाश्च वशीकृताः ॥
शरण्यः सर्वलोकानां स मे विष्णुः प्रसीदतु ॥२७॥

जिसने तीनों लोक (अपने पैरोंसे) नाप लिये और दानव (दैत्य) वशमें कर लिये, जो सब भूतोंको शरण देनेवाला है सो विष्णु मुझपर प्रसन्न हो ॥ २७ ॥

यस्य हस्ते गदा चक्रं गरुडो यस्य वाहनम् ॥
शंखः करतले यस्य स मे विष्णुः प्रसीदतु ॥ २८ ॥

जिसके हाथमें गदा और चक्र है, गरुड जिसका वाहन है, जिसके हाथमें शंख है वह विष्णु मुझपर प्रसन्न हो ॥ २८ ॥

कार्यं क्रिया च करणं कर्त्ता हेतुः प्रयोजनम् ॥
अक्रिया करणाकार्यं स मे विष्णुः प्रसीदतु ॥ २९ ॥

जो कार्यरूप और क्रिया, करण, कर्त्ता, हेतु, प्रयोजन तथा अक्रिया, अकरण, अकार्य आप ही है वह विष्णु मुझपर प्रसन्न हो ॥ २९ ॥

चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च द्वाभ्यां पंचभिरेव च ॥
हूयते च पुनर्द्वाभ्यां स मे विष्णुः प्रसीदतु ॥ ३० ॥

जो चार वेदोंकरके चार होता, उद्गाता आदि आचार्य्योंकरके द्वाभ्यां अर्थात् दो स्त्री पुरुषोंकरके, पांच प्राण अपानादिकों करके, फिर दो हाथ और स्रुवा करके हवन किया जाता है सो (होमात्मक) विष्णु भगवान् मुझपर प्रसन्न हो ॥ ३० ॥

शमीगर्भस्य यो गर्भस्तस्य गर्भस्य यो रिपुः ॥
रिपुगर्भस्य यो गर्भः स मे विष्णुः प्रसीदतु ॥ ३१ ॥

शमीगर्भका अर्थात् अरणिगर्भ अग्निका जो गर्भ सुवर्ण, तिस सुवर्णके गर्भ कहिये हिरण्यगर्भ शत्रु (हिरण्यकशिपु)तिस शत्रुगर्भके गर्भ कहिये प्रह्लादके गर्भ अर्थात् हृदय अंतःकरणमें निवास करनेवाले जो विष्णु है अथवा तिस प्रह्लादके भर्त्ता नाम पालन पोषण करनेवाला स्वामी है सो विष्णु भगवान् मुझपर प्रसन्न हो । यहाँ इस श्लोकके अन्य भी अर्थ हैं सो यहाँ विस्तारभयसे नहीं लिखे हैं ॥ ३१ ॥

अग्निसोमार्कताराणां ब्रह्मरुद्रेंद्रयोगिनाम् ॥
यस्तेजयति तेजांसि स मे विष्णुः प्रसीदतु ॥ ३२ ॥

जो अग्नि, चंद्रमा, सूर्य,तारागण तथा ब्रह्मा,शिव, इंद्र, योगीजन इनके तेजको तेजवाला करता है वह विष्णु मुझपर प्रसन्न हो॥३२॥

पर्जन्यः पृथिवी सस्यं कालो धर्मः क्रियाफलम् ॥
गुणाकारः स मे वा भूर्वासुदेवः प्रसीदतु ॥ ३३ ॥

जो भगवान् पर्जन्यरूप और पृथ्वीस्वरूप और सब अनाजरूप और कालस्वरूप तथा काल और धर्म सब क्रियारूप तथा सर्व क्रियाओंके फलको देनेवाला और त्रिगुणात्मक सो वासुदेव मुझपर प्रसन्न हो ॥ ३३ ॥

योगावास नमस्तुभ्यं सर्वावास वरप्रद ॥
हिरण्यगर्भ यज्ञांग पंचगर्भ नमोऽस्तु ते ॥ ३४ ॥

हे योगावास सर्वावास ! अर्थात् योग और संपूर्ण प्राणिमात्रोंके निवासस्थान, हे वरप्रद ! हे हिरण्यगर्भ ! हे यज्ञांग ! हे पंचगर्भ ! (पंचतत्त्वोंको उत्पन्न करनेवाले) तुम्हारे अर्थ नमस्कार है ॥ ३४ ॥

चतुमूर्त परं धाम लक्ष्म्यावास सदाऽच्युत ॥
शब्दादिवास नान्योऽस्ति वासुदेव प्रधानकृत् ॥३५॥

हे चतुर्व्यूहमूर्तिवाले ! हे परंधाम ! हे लक्ष्मीनिवास ! हे सदाऽच्युत ! हे शब्दोंके आदि निवासस्थान ! हे वासुदेव ! हे प्रधानकृत् ! मायाको रचनेवाले (सब जगह तुमसे) अन्य कोई नहीं है ॥ ३५ ॥

अजः संगमनः पार्थो ह्यमूर्तिर्विश्वमूर्तिधृक् ॥
श्रीः कीर्तिः पंचकालज्ञो नमस्ते ज्ञानसागर ॥ ३६ ॥

तुम जन्मरहित हो, सब जगह व्याप्त हो, अवतार आदिकों करके मूर्तिमान् हो, मूर्तिरहित हो और विश्वकी मूर्तिको धारण करनेवाले हो, लक्ष्मीरूप कीर्तिरूप हो, पंचकाल (पंचभूतोंके काल) के जाननेवाले हो, हे ज्ञानसागर ! तुम्हारे अर्थ नमस्कार है ॥ ३६ ॥

अव्यक्ताद्व्यक्तमुत्पन्नमव्यक्ताद्यः परात्परः ॥
यस्मात्परतरं नास्ति तमस्मि शरणं गतः ॥ ३७ ॥

अव्यक्त कहिये प्रधान पुरुषसे (व्यक्त) माया उत्पन्न होती है, जो अव्यक्तसे भी परात्पर शुद्धब्रह्म है और जिसके परे कोई नहीं है तिसकी मैं शरण हूँ ॥ ३७ ॥

चिंतयंतो ह्यजं नित्यं ब्रह्मेशानादयः सुराः ॥
निश्चयं नाधिगच्छंति तमस्मि शरणं गतः ॥ ३८ ॥

अजन्मा प्रभुको नित्य चिन्तवन करते हुए ब्रह्मा शिव आदि देवता जिसका निश्चय नहीं कर सकते हैं मैं तिसके शरण हूँ ॥३८॥

जितेंद्रिया जितात्मानो ज्ञानध्यानपरायणाः ॥
यं प्रप्य न निवर्त्तंते तमस्मि शरणं गतः ॥ ३९ ॥

हे जितेंद्रिय ! और जितात्मन् अर्थात् मन अन्तःकरणको जीतनेवाले ज्ञान ध्यानमें परायण मुनिजन जिसको प्राप्त होके फिर निवृत्त नहीं होते हैं (संसारमें नहीं आते हैं) मैं तिसकी शरण हूँ ॥ ३९ ॥

एकांशेन जगत्कृत्स्नमवष्टभ्य स्थितः प्रभुः ॥
अग्राह्यो निर्गुणो नित्यस्तमस्मि शरणं गतः ॥ ४० ॥

जो प्रभु अपने एकांशसे सम्पूर्ण जगत्को व्याप्त कर स्थित है और निर्गुण होनेसे मनवाणी करके अग्राह्य है उस सनातन परमात्माकी मैं शरण हूँ ॥ ४० ॥

सोमार्काग्निमयं तेजो या च तारामयी द्युतिः ॥
दिवि संजायते तेजः स महात्मा प्रसीदतु ॥ ४१ ॥

चन्द्रमा, सूर्य, अग्निरूप जो तेज है, तारागणमें जो कांति है स्वर्ग (आकाश) में जो तेज होता है ऐसा वह महात्मा प्रसन्न हो ॥ ४१ ॥

गुणात्मा निर्गुणश्चान्यो रश्मिवांश्चेतनो ह्यजः ॥
सूक्ष्मः सर्वगतो देहः स महात्मा प्रसीदतु ॥ ४२ ॥

जो गुणोंकी आत्मा और आप निर्गुण अलग है, प्रकाशरूप चेतन अजन्मा है, सूक्ष्म है, सर्वगत देहरहित है वह महात्मा प्रसन्न हो ॥ ४२ ॥

अव्यक्तं सदधिष्ठानमचिंत्यं तमसः परम् ॥
प्रकृतिः प्रकृतिं भुंक्ते स महात्मा प्रसीदतु ॥ ४३ ॥

जो अव्यक्त अप्रगटरूप है, सत् (जीव) का अधिष्ठान है अचिंत्य है मायासे अलग है महदहंकार प्रकृतिरूप हो, प्रकृति कहिये मायाको भोगता है वह महात्मा प्रसन्न हो ॥ ४३ ॥

क्षेत्रज्ञः पंचधा भुंक्त प्रकृतिं पंचभिर्मुखैः ॥
महागुणांश्च यो भुंक्ते स महात्मा प्रसीदतु ॥ ४४ ॥

जो क्षेत्रज्ञ होके पांचप्रकारसे पांच मुखोंकरके प्रकृति (माया)-को भोगता है वह महात्मा प्रसन्न हो ॥ ४४ ॥

सांख्ययोगाश्च ये चान्ये सिद्धाश्च परमर्षयः ॥
यं विदित्वा विमुच्यंते स महात्मा प्रसीदतु ॥ ४५ ॥

सांख्ययोगवाले जो अन्यजन तथा सिद्ध और परमऋषि जिसको जानके (संसारबन्धनसे) छूट जाते हैं वह महात्मा प्रसन्न हो ॥ ४५ ॥

अतींद्रिय नमस्तुभ्यं लिंगर्व्यक्तैर्न मीयसे ॥
यं च त्वां नाभिजानंति तमस्मि शरणं गतः ॥ ४६ ॥

हे अतींद्रिय ! अर्थात् इंद्रियोंकरके अग्राह्य तुम्हारे अर्थ नमस्कार है। तुम प्रकट चिह्नोंकरके (इंद्रियगोचरों करके) नहीं प्रमाण किये जाते हो और जिस तुमको नहीं जानते हैं तिसकी मैं शरणागत हूँ ॥ ४६ ॥

कामक्रोधविनिर्मुक्ता रागद्वेषविवर्जिताः ॥
अन्यभक्ता न जानंति न पुनर्नारका जनाः ॥ ४७ ॥

कामक्रोधसे छूटे हुए रागद्वेषसे रहित हुए अन्य भक्त भी तुमको नहीं जान सकते हैं, तैसे ही नरकवासी जन तो कभी नहीं जानते हैं ॥ ४७ ॥

एकांतिनो हि निर्द्वंद्वा निराशाः कर्मकारिणः ॥
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणस्त्वां विशंति मनस्विनः ॥ ४८ ॥

निरंतर तुम्हारे भक्त सुखदुःखआदि द्वंद्वरहित आशारहित कर्म करनेवाले ज्ञानरूपी अग्निसे कर्मको दग्ध करनेवाले पंडितजन तुम्हारे विषे लीन (प्रविष्ट) होते हैं ॥ ४८ ॥

अशरीरं शरीरस्थं समं सर्वेषु देहिषु ॥
पापपुण्यविनिर्मुक्ता भक्तास्त्वां पर्युपासते ॥ ४९ ॥

शरीररहित, शरीरमें स्थित, सब देहधारियोंमें समान रहनेवाले ऐसे तुमको पापपुण्यसे विनिर्मुक्त हुए भक्तजन उपासना करते हैं ॥ ४९ ॥

अव्यक्तबुद्ध्यहंकारमनोभूतेंद्रियाणि च ॥
त्वयि तानि च तेषु त्वं न तेषु त्वं न तानि ते ॥ ५० ॥

माया बुद्धि अहंकार मन ज्ञानेंद्रिय ये सब तुम्हारे विषे हैं (जैसे आकाशमें घट) और उनमें तुम भी हो (वास्तवमें) उन माया आदिकोंमें तुम नहीं और वे तुममें नहीं हैं ॥ ५० ॥

एकत्वाय च नानन्यं य विदुर्यान्ति ते परम् ॥
समत्वमिह कांक्षंति भक्त्या वै नान्यचेतसा ॥ ५१ ॥

मुनिजन एकत्वके वास्ते तुमसे अन्य कछु नहीं जानते हैं और जो भक्ति करके अनन्यचित्तसे इस संसारमें समत्व (समता) की इच्छा करते हैं वे परम मोक्षको प्राप्त होते हैं ॥ ५१ ॥

चराचरमिदं सर्वं भूतग्रामं चतुर्विधम् ॥
त्वयि तन्तौ च तत्प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ॥ ५२ ॥

यह सब चार प्रकारका अंडजादि ४ भेदवाला संसार तागारूप तुम्हारे विषे ऐसा पिरोया हुआ है जैसे सूतमें मणिसमूह पिरोये हुए हों ॥ ५२ ॥

स्रष्टा भोक्तासि कूटस्थो ह्यचिंत्यः सर्वसंज्ञितः ॥
अकर्त्ता हेतुरहितः पृथगात्मा व्यवस्थितः ॥ ५३ ॥

तुम स्रष्टा (कर्ता) भोक्ता हो कूटस्थ अचिंत्य हो सर्वसंज्ञावाले हो, वास्तवमें अकर्ता और हेतुरहित हो पृथक् आत्मा करके व्यवस्थित हो ॥ ५३ ॥

न मे भूतेषु संयोगो न भूतित्वं गुणातिगे ॥
अहंकारेण बुद्ध्या वा न मे योगस्त्रिभिर्गुणैः ॥ ५४ ॥

भूतों (तत्त्वों) में मेरा संयोग नहीं है, गुणोंसे अतिरिक्त हुए विषे ऐश्वर्यादिक धर्म नहीं है, अहंकारके अथवा बुद्धिकरके और तीनों गुणोंके साथ मेरा योग नहीं है ॥ ५४ ॥

न मे धर्मो ह्यधर्मो वा नारंभो जन्म वा पुनः ॥
जरामरणमोक्षार्थं त्वां प्रपन्नोऽस्मि सर्वगम् ॥ ५५ ॥

मेरे धर्म और पाप नहीं हैं किसी कार्यका आरंभ और जन्म भी नहीं है वृद्धावस्था और मरणकी मोक्षके वास्ते सर्वगत हुए तुम्हारी शरण हूँ ॥ ५५ ॥

विषयैरिंद्रियैश्चापि न मे भूयः समागमः ॥
ईश्वरोऽसि जगन्नाथ किमतः परमुच्यते ॥ ५६ ॥

विषय और इंद्रियोंके साथ फिर मेरा समागम न हो। हे जगन्नाथ ! तुम ईश्वर हो इससे विशेष क्या कहूँ ? ॥ ५६ ॥

भक्तानां यद्धितं देव तत्ते हि त्रिदशेश्वर ॥
पृथिवीं यातु मे घ्राणं यातु मे रसनं जलम् ॥ ५७ ॥

हे त्रिदशेश्वर ! देवताओंके ईश्वर ! भक्तोंको जो हित है वह तुमसे ही होता है। मेरी नासिका इंद्रिय पृथ्वीको प्राप्त हो मेरी जिह्वा जलको प्राप्त हो ॥ ५७ ॥

रूपं हुताशने यातु स्पर्शो मे यातु मारुते ॥
श्रोत्रमाकाशमभ्येतु मनो वैकारिकं पुनः ॥ ५८ ॥

रूप अग्निमें प्राप्त हो, स्पर्श वायुमें प्राप्त हो, श्रोत्रइंद्रिय आकाशमें प्राप्त हो, मन अहंकारको प्राप्त हो ॥ ५८ ॥

इंद्रियाणि गुणान् यांतु स्वेषु स्वेषु च योनिषु ॥
पृथिवीं यातु सलिलमापोऽग्निमनलोऽनिलम् ॥ ५९ ॥

सब इंद्रिय अपनी २ योनियोंमें गुणोंको प्राप्त होजायँ, पृथ्वी जलमें प्राप्त हो, जल अग्निमें लीन हो, अग्नि वायुमें लीन हो जाय ॥ ५९ ॥

वायुराकाशमभ्येतु मनश्चाकाशमेव च ॥
अहंकारं मनो यातु मोहनं सर्वदेहिनाम् ॥ ६० ॥

वायु आकाशमें लीन हो, मन भी आकाशमें लीन हो जाय संपूर्ण देहधारियोंको मोहनेवाला मन अहंकारमें प्राप्त हो ॥ ६० ॥

अहंकारस्तथा बुद्धिं बुद्धिरव्यक्तमेव च ॥
प्रधानं प्रकृतिं यातु गुणसाम्ये व्यवस्थिते ॥ ६१ ॥

अहंकार बुद्धिमें लीन हो जाय, बुद्धि मायामें लीन हो, माया जहां सब गुण समानतासे व्यवस्थित रहते हैं ऐसी प्रकृतिमें प्राप्त हो जाय ॥ ६१ ॥

विसर्गः सर्वकरणैर्गुणभूतैश्च मे भवेत् ॥
सत्त्वं रजस्तमश्चैव प्रकृतिं प्रविशंतु मे ॥ ६२ ॥

गुणोंसे उत्पन्न हुए संपूर्ण करण (इंद्रियादिकों) करके मेरा विसर्जन हो, मेरे सत्त्व रज तमोगुण प्रकृतिमें प्रवेश हों ॥ ६२ ॥

नैष्कैवल्यं पदं देव कांक्षेऽहं ते परंतप ॥
एकीभावस्त्वया मेऽस्तु न मे जन्म भवेत्पुनः ॥ ६३ ॥

हे देव ! हे परंतप ! मैं तुम्हारे नैष्कैवल्यपदकी इच्छा करता हूँ, तुम्हारे संगमें मेरा एकीभाव हो फिर मेरा जन्म नहीं हो ॥ ६३ ॥

नमो भगवते तस्मै विष्णवे प्रभविष्णवे ॥
त्वद्बुद्धिस्त्वद्गतप्राणस्त्वद्भक्तस्त्वत्परायणः ॥ ६४ ॥

तिस भगवान् विष्णु प्रभविष्णु (विशेषकरके होनेवाले) के अर्थ नमस्कार है । हे भगवन् ! तुम्हारे विषे बुद्धि और प्राणों-वाला तुम्हारा भक्त और तुम्हारे विषे परायण हूँ ॥ ६४ ॥

त्वामेवाहं स्मरिष्यामि मरणे पर्यवस्थिते ॥
पूर्वदेहकृता ये मे व्याधयः प्रविशंतु माम् ॥ ६५ ॥

मरणसमयमें तुम्हारा ही स्मरण करूँगा और मेरे किये हुए जो पूर्वजन्मके रोग हैं वे सब रोग मेरे विषे आजावो ॥ ६५ ॥

अर्दयन्तु च मां दुःखान्यृणं मे प्रतिमुच्यताम् ॥
अनुध्येयोऽसि मे देव न मे जन्म भवेत्पुनः ॥ ६६ ॥

दुःख मुझको पीड़ा दो अनृणी हुए मुझको छोड़ो हे देव ! तुम ध्यान करनेयोग्य हो फिर मेरा जन्म मत हो ॥ ६६ ॥

अस्माद्ब्रवीमि कर्माणि ऋणं मे न भवेदिति ॥
उपतिष्ठंतु मां सर्वे व्याधयः पूर्वसंचिताः ॥ ६७ ॥

इसी वास्ते मैं कर्मोंको कहता हूँ कि, मेरा ऋण मत रहो पूर्व-जन्ममें संचित कीहुई सब व्याधि मेरे विषे आजावो ॥ ६७ ॥

अनृणो गन्तुमिच्छामि तद्विष्णोः परमं पदम् ॥
अहं भगवतस्तस्य मम वासः सनातनः ॥ ६८ ॥

अनृणि हुआ मैं तिस विष्णुभगवान्के परमपदको जाऊँ मेरा वास सदा रहो ॥ ६८ ॥

तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥
कर्मेन्द्रियाणि संयम्य पंचभूतेंद्रियाणि च ॥ ६९ ॥

तिसको मैं नष्ट नहीं होऊँ और मेरा वह परमपद नष्ट नहीं हो कर्मेंद्रिय और पांच ज्ञानेन्द्रियोंको वशमें कर ॥ ६९ ॥

दशेंद्रियाणि मनसि अहंकारं तथा मनः ॥

अहंकारं तथा बुद्धौ बुद्धिमात्मनि योजयेत् ॥ ७० ॥

दश इन्द्रियोंको मनमें प्राप्त कर मनको अहंकारमें प्राप्त कर अहंकारको बुद्धिविषे लीन करै बुद्धिको आत्मामें युक्त करै॥७०॥

आत्मबुद्धीन्द्रियं पश्येद्बुद्ध्या बुद्धेः परात्परम् ॥
एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना ॥ ७१ ॥

बुद्धिकरके मन और ज्ञानेन्द्रियोंको देखे (आत्माको) बुद्धिसे परात्पर जाने ऐसे अपने आत्मा करके आत्माको बुद्धिसे परे जानके निश्चय करे ॥ ७१ ॥

ततो बुद्धेः परं बुद्ध्वा लभते न पुनर्भवम् ॥
ममायमिति तस्याहं येन सर्वमिदं ततम् ॥ ७२ ॥

फिर बुद्धिसे परे जानके पुनर्जन्मको नहीं प्राप्त होता है ऐसे विचारे कि, जिसने यह सम्पूर्ण जगत् रचा है सो यह मेरा है मैं तिसका हूँ ॥ ७२ ॥

आत्मन्यात्मनि संयोज्य परात्मानमनुस्मरेत् ॥
नमो भगवते तस्मै देहिनां परमात्मने ॥ ७३ ॥

आत्मविषे आत्माको संयुक्त करके परमात्माका स्मरण करै देहधारियोंके परमात्मास्वरूप तिस भगवान्के अर्थ नमस्कार है ॥ ७३ ॥

नारायणाय भक्ताय एकनिष्ठाय शाश्वते ॥
हृदिस्थाय च भूतानां सर्वेषां च महात्मने ॥ ७४ ॥

नारायण भक्तस्वरूप एकनिष्ठावाले शाश्वत (सनातन) सब भूतोंके हृदयमें स्थित महात्माके अर्थ नमस्कार है ॥ ७४ ॥

इमामनुस्मरन् दिव्यां वैष्णवीं पापनाशिनीम् ॥

स्वपन् विबुध्य च पठेद्यत्नेन च समभ्यसेत् ॥ ७५ ॥

पापको नष्ट करनेवाली इस दिव्य वैष्णवी (विष्णुकी अनु-स्मृति) को सोके प्रातःकाल उठके यत्नसे पढ़ै और अच्छे प्रकारसे अभ्यास करै ॥ ७५ ॥

मरणे समनुप्राप्ते यदेकं मामनुस्मरेत् ॥
अपि पापसमाचारः स याति परमां गतिम् ॥ ७६ ॥

मरणसमयमें जो एक मेरा ही स्मरण करे तो वह यदि पापी पुरुष हो तो भी परम गतिको प्राप्त होता है ॥ ७६ ॥

यद्यहंकारमाश्रित्य यज्ञदानतपःक्रियाः ॥
कुर्वन्फलमवाप्नोति पुनरावर्तनं च तत् ॥ ७७ ॥

यदि अहंकारके आश्रय होके यज्ञ, दान, तपस्या आदि कर्म करता हुआ, जन कर्मफलको प्राप्त होवे, तो फिर जन्मको प्राप्त होता है ॥ ७७ ॥

अभ्यर्चयन्पितृन्देवान्पठञ्जुह्वन्बलिं ददत् ॥
ज्वलदग्निं स्मरेद्यो मां लभते परमां गतिम् ॥ ७८ ॥

पितर और देवताओंको पूजता हुआ, पाठ करता हुआ, होम करता हुआ,बलि देता हुआ, जो ज्वलते हुए अग्निको मुझको ही स्मरण करता है (जानता है) वह परम गतिको प्राप्त होता है ॥ ७८॥

यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ॥
यज्ञं दानं तपस्तस्मात्कुर्याद्रागविवर्जितः ॥ ७९ ॥

यज्ञ, दान, तप, ये पण्डितजनोंको पवित्र करनेवाले हैं इसलियें राग (फल स्नेह) से रहित हुआ पंडितजन यज्ञ, दान, तपस्या करै ॥ ७९ ॥

पौर्णमास्याममायां च द्वादश्यां च तथैव च ॥
श्रावयेच्छ्रद्दधानश्च मद्भक्तश्च विशेषतः ॥ ८० ॥

विशेषकरके मेरा भक्त पौर्णमासी अमावस्या द्वादशी इन दिनोंमें श्रद्धासे युक्त होके इस स्तोत्रको सुनावै ॥ ८० ॥

नम इत्येव यो ब्रूयान्मद्भक्तः श्रद्धयाऽन्वितः ॥
तस्याक्षयो भवेल्लोकः श्वपाकस्यापि नारद ॥ ८१ ॥

श्रद्धासे युक्त हुआ जो मेरा भक्त 'नमः' ऐसे (प्रणाम) करता है, हे नारद ! वह चाहे चाण्डाल हो तो भी तिसको अक्षय मेरा लोक प्राप्त होता है ॥ ८१ ॥

किं पुनर्ये भजंते मां साधका विधिपूर्वकम् ॥
श्रद्धावन्तो यतात्मानस्ते यांति परमां गतिम् ॥ ८२ ॥

फिर जो साधक उत्तमजन मुझको विधिपूर्वक पूजते हैं उनका क्या कहना है जो श्रद्धावाले जितेंद्रिय पुरुष होते हैं वे परमगतिको प्राप्त होते हैं ॥ ८२ ॥

कर्माण्याद्यंतवन्तीह मद्भक्तोऽनन्तमश्नुते ॥
मामेव तस्माद्द्वर्षे ध्याय नित्यमतंद्रितः ॥ ८३ ॥

कर्म तो आदि अन्तवाले हैं मेरा भक्तजन अनन्त (अक्षय)

पदको प्राप्त होता है, हे देवर्षे ! इसलिये तू सावधान होके नित्य मेरा ही ध्यानकर ॥ ८३ ॥

अज्ञानां चैव यो ज्ञानं दद्याद्धर्मोपदेशतः ॥
कृत्स्नां वा पृथिवीं दद्यात्तेन तुल्यं च तत्फलम्॥८४॥

जो मनुष्य धर्मके उपदेशसे अज्ञजनोंको ज्ञान देता है वह सम्पूर्ण पृथ्वीदानके फलको प्राप्त होता है ॥ ८४ ॥

तस्मात्प्रदेयं साधुभ्यो जपं बंधभयापहम् ॥
अवाप्स्यसि ततः सिद्धिं प्राप्स्यसे च पदं मम ॥८५॥

इसलिये भयको दूर करनेवाला जप (मन्त्र) साधुजनोंके वास्ते देना चाहिये तिससे सिद्धिको प्राप्त होगा और मेरे पद (स्थान) को प्राप्त होगा ॥ ८५ ॥

अश्वमेधसहस्रैश्च वाजपेयशतैरपि ॥
नासौ पदमवाप्नोति मद्भक्तैर्यदवाप्यते ॥ ८६ ॥

जो पद मेरे भक्तोंको प्राप्त है वह पद हजार अश्वमेध और सौ वाजपेय यज्ञोंकरके भी नहीं प्राप्त होता है ॥ ८६ ॥

भीष्म उवाच ।

हरेः पृष्टं पुरा तेन नारदेन सुरर्षिणा ॥
यदुवाच ततः शंभुस्तदुक्तं समनुव्रत ॥ ८७ ॥

भीष्मजी कहते हैं-हे समनुव्रत ! अर्थात् सम्यक् सावधान हुए युधिष्ठिर ! पहले देवऋषि नारदजीने हरिसे पूछा फिर शंभु

अर्थात् ब्रह्मरूप (सुख करनेवाले) हरि जो कुछ कहते भये वही मैंने भी कहा है ॥ ८७ ॥

त्वमप्येकमना भूत्वा ध्याहि ध्येयं गुणाधिकम् ॥
भजस्व सर्वभावेन परमात्मानमव्ययम् ॥ ८८ ॥

तुम भी एकाग्रमनकरके गुणोंसे अधिक ध्येय (ध्यानकरने योग्य) अविनाशी परमात्माको ध्यावो और संपूर्णभावसे भजो ॥ ८८ ॥

श्रुत्वैवं नारदो वाक्यं दिव्यं नारायणोदितम् ॥
अत्यंतं भक्तिमान्देवमेकांतित्वमुपेयिवान् ॥ ८९ ॥

नारदमुनि इसप्रकारके नारायणके कहे हुए दिव्य वचनको सुनके अत्यंत भक्तिमान् वह नारदमुनि एकान्तित्व सब जगह निरंतर एक रस रहनेवाले देवको प्राप्त होता भया ॥ ८९ ॥

नारायणमृषिर्देवं दशवर्षाण्यनन्यभाक् ॥
इमं जपित्वा चाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥९०॥

अनन्यभक्ति करके दश वर्षतक नारायण देवको ऋषि भजता भया इसी (नारायणमन्त्र) को जपके विष्णुके तिस परम पदको प्राप्त होता है ॥ ९० ॥

किं तस्य बहुभिर्मंत्रैः किं तस्य बहुभिर्व्रतैः ॥
नमो नारायणायेति मंत्रः सर्वार्थसाधकः ॥ ९१ ॥

उसके बहुत मन्त्रोंकरके क्या है, बहुत व्रतोंकरके क्या है किन्तु " नमो नारायणाय " यही मंत्र संपूर्ण प्रयोजनको सिद्ध करनेवाला है ॥ ९१ ॥

किं तस्य दानैः किं तीर्थैः किं तपोभिः किमध्वरैः ॥
यो नित्यं ध्यायते देवं नारायणमनन्यधीः ॥ ९२ ॥

जो पुरुष नित्यप्रति अनन्य (एकाग्र) बुद्धिकरके नारायण देवको ध्याता है उसके दानोंकरके तीर्थोंकरके तप और यज्ञों-करके क्या है ॥ ९२ ॥

ये नृशंसा दुरात्मानः पापाचाररतास्तथा ॥
तेऽपि यांति परं स्थानं नारायणपरायणाः ॥ ९३ ॥

जो क्रूर (हिंसक) दुष्टात्मा पापी पुरुष हैं वे भी (इस मंत्र-करके)नारायणमें परायण होके परमस्थानको प्राप्त होते हैं ॥९३॥

अनन्यया मंदबुद्ध्या प्रतिभाति दुरात्मनाम् ॥
कुतर्काज्ञानदृष्टीनां विभ्रांतेन्द्रियवर्त्मनाम् ॥ ९४ ॥

कुतर्क और अज्ञानकी दृष्टिवाले इंद्रियोंके विषयोंमें भ्रमते हुए दुष्टजनोंको अनन्य मन्दबुद्धिकरके वह परमात्मा प्रतिकूल (खराब) मालूम होता है ॥ ९४ ॥

नमो नारायणायेति ये विदुर्ब्रह्म शाश्वतम् ॥
अंतकाले जपाद्यांति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ ९५ ॥

जो पुरुष 'नमो नारायणाय' इस मन्त्रको सनातन ब्रह्म जानते हैं वे अंतसमयमें इस मन्त्रको जपते हुए विष्णुके तिस परम पदको प्राप्त होते हैं ॥ ९५ ॥

आचारहीनोऽपि मुनिप्रवीर भक्त्या विहीनोऽपि

विनिंदितोऽपि ॥ किं तस्य नारायणशब्दमात्रतो
विमुक्तपापो विशतेऽच्युतां गतिम् ॥ ९६ ॥

हे मुनिप्रवीर ! जो आचारहीन तथा भक्तिहीन होवे और निंदित हो उसको क्या (पाप) हैं किन्तु "नारायण" ऐसे शब्दमात्रसे पापरहित होके परम अविनाशी गतिको प्राप्त होता है ॥९६॥

कांतारवनदुर्गेषु कृच्छ्रेष्वापत्सु संयुगे ॥
दस्युभिः सन्निरुद्धश्च नामभिर्मां प्रकीर्तयेत् ॥ ९७ ॥

गह्वर भयंकर मार्ग, वन, दुर्ग, (किला) कष्ट विपत्ति, युद्ध इन्हीमें और शत्रुओंकरके रुका हुआ जन मुझको मेरे नामोंकरके कीर्तन करै ॥ ९७ ॥

जन्मांतरसहस्रेषु तपोध्यानसमाधिभिः ॥
नराणां क्षीणपापानां कृष्णे भक्तिः प्रजायते ॥ ९८ ॥

हजारों जन्मांतरोंमें तप, ध्यान समाधियोंकरके जब मनुष्योंके पाप क्षीण होते हैं तब उसकी भक्ति श्रीकृष्णविषे होती है ॥९८॥

नाम्नोऽस्ति यावती शक्तिः पापनिर्हरणे हरेः ॥
श्वपचोऽपि नरः कर्तुं क्षमस्तावन्न किल्बिषम् ॥ ९९ ॥

पापोंके हरनेमें हरिके नामोंमें जितनी शक्ति है उतने पाप करनेमें चाण्डाल पुरुष भी समर्थ नहीं है ॥ ९९ ॥

न तावत्पापमस्तीह यावन्नामाहृतं हरेः ॥
अतिरेकभयादाहुः प्रायश्चित्तांतरं वृथा ॥ १०० ॥

इस संसारमें इतने पाप नहीं हैं कि जितने पाप हरिके नामोंकरके हत (नष्ट) न होजाते हैं इसलिये अतिरेक अर्थात् ज्यादे होनेके भयसे अन्य प्रायश्चित्तोंको वृथा ही कहते हैं अर्थात् हरिनामके समान कोई प्रायश्चित्त नहीं है ॥ १०० ॥

गत्वा गत्वा निवर्तन्ते चंद्रसूर्यादयो ग्रहाः ॥
अद्यापि न निवर्त्तन्ते द्वादशाक्षरचिंतकाः ॥ १०१ ॥

चन्द्र, सूर्य आदि ग्रह तो प्राप्त होके उलटे निवृत्त होते हैं और द्वादशाक्षरमन्त्र (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) को चिंतवन करनेवाले जन अबतक निवृत्त नहीं होते हैं ॥ १०१ ॥

न वासुदेवात्परमस्ति मंगलं न वासुदेवात्परमस्ति पावनम् ॥ न वासुदेवात्परमस्ति दैवतं तं वासुदेवं प्रणमन्न सीदति ॥ १०२ ॥

वासुदेव भगवान्से परे मंगल नहीं है, वासुदेवसे परे कुछ पवित्र नहीं है, वासुदेवसे परे दैव नहीं है ऐसे तिस वासुदेवको प्रणाम करता हुआ जन दुःखित नहीं होता है ॥ १०२ ॥

इमां रहस्यां परमामनुस्मृतिं योऽधीत्य बुद्धिं लभते च नैष्ठिकीम् ॥ विहाय पापं विनिर्मुच्य सकटात्स वीतरागो विचरेन्महीमिमाम् ॥ १०३ ॥

इस रहस्य (गुह्य) परम अनुस्मृतिको जो पढ़ता है वह नैष्ठिकी (ब्रह्ममें निष्ठावाली) बुद्धिको प्राप्त होता है और पापसे छूटके तथा संकटसे छूटके स्नेहरहित होके इस पृथ्वीमें विचरता है ॥ १०२ ॥

इति बेरीनिवासि-पंडितवसतिरामशर्मणा विरचितानुस्मृतिभाषाटीका समाप्ता ।



॥ श्रीः ॥

अथ गजेन्द्रमोक्षः ।

बेरीनिवासी-पण्डितवसतिरामविरचित-

भाषाटीकासमेतः ।

खेमराज श्रीकृष्णदास,

अध्यक्ष-"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस,

बम्बई

सं० १९९१, श० १८५६.

गजेन्द्रमोक्षः ।



ररक्ष यः कुञ्जरचक्रशक्रं
नक्रस्य चक्रेण विपाट्य वक्रम् ॥
सदाऽवनस्थः खरहेतिहस्तो
हरिर्विरीवर्ति विलक्षणोऽसौ ॥



श्रीः ।

अथ गजेन्द्रमोक्ष ।

भाषाटीकासमेत ।



शतानीक उवाच ।

मया हि देवदेवस्य विष्णोरमिततेजसः ॥
श्रुताः संभूतयः सर्वा गदतस्तव सुव्रत ॥ १ ॥

शतानीक बोले—हे सुव्रत ! कहते हुए तुमसे मैंने अतुल तेजवाले देवनके देव विष्णुभगवान्‌के सम्पूर्ण ऐश्वर्य गुण सुने ॥ १ ॥

यदि प्रसन्नो भगवाननुग्राह्योऽस्मि वा यदि ॥
तदहं श्रोतुमिच्छामि नृणां दुःस्वप्ननाशनम् ॥ २ ॥

भगवान् तुम यदि प्रसन्न हो और मेरा अनुग्रह किया चाहते हो तो मनुष्योंके दुःस्वप्न (बुरा स्वप्न) फलको नष्टकारक (इतिहासादिक) को मैं सुना चाहता हूँ ॥ २ ॥

स्वप्नादिषु महाभाग दृश्यंते ये शुभाशुभाः ॥
फलानि च प्रयच्छंति तद्गुणान्येव भार्गव ॥ ३ ॥

हे महाभाग ! स्वप्न आदिकोंमें जो शुभाशुभ दीखते हैं, हे भार्गव ! वैसाही वे फल देते हैं ॥ ३ ॥

तादृक्पुण्यं पवित्रं च नृणामतिशुभप्रदम् ॥
दुष्टस्वप्नोपशमनं तन्मे विस्तरतो वद ॥ ४ ॥

वैसा ही पवित्र मनुष्योंको अत्यन्त शुभदायक दुष्ट (बुरे) स्वप्नके नाश करनेवाले (इतिहास आदि) को मेरे आगे विस्तारसे कहो ॥ ४ ॥

शौनक उवाच ।

इदमेव महाभाग पृष्टवांश्च पितामहम् ॥
भीष्मं धर्मभृतां श्रेष्ठं धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ५ ॥

शौकनजी बोले—हे महाभाग ! इसी प्रश्नको धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ पितामह भीष्मजीसे धर्मका पुत्र युधिष्ठिर पूछता भया ॥ ५ ॥

भीष्म उवाच ।

जितं ते पुंडरीकाक्ष नमस्ते विश्वभावन ॥
नमस्तेऽस्तु हृषीकेश महापुरुष पूर्वज ॥ ६ ॥

भीष्मजी कहते भये—हे पुण्डरीकाक्ष ! हे विश्वभावन ! अर्थात् विश्वको उत्पन्न करनेवाले हे हृषीकेश ! हे महापुरुष ! हे पूर्वज (सबसे प्रथम उत्पन्न होनेवाले) ! तुम्हारी जय हो, तुम्हारे अर्थ नमस्कार है ॥ ६ ॥

आद्यं पुरुषमीशानं पुरुहूतं पुरातनम् ॥
ऋतमेकाक्षरं ब्रह्म व्यक्ताव्यक्तं सनातनम् ॥ ७ ॥

आद्य पुरुष ईशान(ईश्वर) पुरुहूत (यज्ञादिकोंमें बहुत है बुलाना जिसका) पुरातन ऋत अर्थात् सत्यस्वरूप एकाक्षर (ॐकार स्वरूप)ब्रह्म व्यक्ताव्यक्त अर्थात् अपने अवतार आदिकोंकरके प्रकट और निजस्वरूप निराकार होनेसे अप्रकट रहनेवाले सनातन ॥ ७ ॥

असच्च सच्च यद्विश्वं नित्यं सदसतः परम् ॥
परापराणां स्रष्टारं पुराणं परमव्ययम् ॥ ८ ॥

सत् असत् कहिये सूक्ष्म स्थूल रूपकरके जो विश्व है सो और तिस सत् असत्से भी परे परापर कहिये ब्रह्मा आदि सब जीवोंको रचनेवाले पुराण परम अविनाशी ॥ ८ ॥

मांगल्यं मंगलं विष्णुं वरेण्यमनघं शुचिम् ॥
नमस्कृत्य हृषीकेशं चराचरगुरुं हरिम् ॥ ९ ॥

मंगल करनेवाले, मंगलस्वरूप विष्णु (सब लोकोंमें व्याप्त-रहनेवाले) अत्युत्तम, निष्पाप, पवित्र, चरांचरके गुरु ऐसे हृषीकेश हरिनारायणको नमस्कार करके ॥ ९ ॥

प्रवक्ष्यामि मतं पुण्यं कृष्णद्वैपायनस्य च ॥
येनोक्तेन श्रुतेनापि नश्यते सर्वपातकम् ॥ १० ॥

वेदव्यासजीके पवित्र मतको कहता हूँ, जिसके कहने सुनने-से सम्पूर्ण पाप नष्ट होते हैं ॥ १० ॥

नारायणसमो देवो न भूतो न भविष्यति ॥
एतेन सत्यवाक्येन सर्वार्थान्साधयाम्यहम् ॥११॥

नारायणके समान देवता न भया और न होगा इसी सत्य-वचनकरके मैं सम्पूर्ण प्रयोजनोंको सिद्ध करता हूँ ॥ ११ ॥

कि तस्य बहुभिर्मंत्रैः किं तस्य बहुभिर्व्रतैः ॥
नमो नारायणायेति मन्त्रः सर्वार्थसाधकः ॥ १२ ॥

(जो नारायणको ध्याता है) उसको बहुत मंत्रोंकरके क्या है और उसको बहुत व्रतोंकरके क्या है किन्तु 'ॐ नमो नारायणाय' यही मंत्र सम्पूर्ण प्रयोजनको सिद्ध करनेवाला है ॥ १२॥

जज्ञे बहुज्ञं परमत्युदारं यं द्वीपमध्ये सुतमात्मवन्तम् ॥ पराशराद्गंधवती महर्षेस्तस्मै नमोऽज्ञानतमोनुदाय ॥ १३ ॥

गंधवती देवी पराशरजी महर्षिके सकाशसे द्वीपके मध्यमें

जिस परम उदार बहुज्ञ (बहुत जाननेवाले) आत्मज्ञानी पुत्रको जनती भई अज्ञानरूपी अन्धकारको नष्ट करनेवाले तिस महर्षि वेदव्यासजीके अर्थ नमस्कार है ॥ १३ ॥

नमो भगवते तस्मै व्यासायामिततेजसे ॥
यस्य प्रसादाद्वक्ष्यामि नारायणकथामिमाम् ॥१४॥

जिसकी कृपासे नारायणकी इस कथाको मैं कहूँगा तिस भगवान् अतुलतेजवाले वेदव्यासजीके अर्थ नमस्कार है ॥ १४ ॥

वैशम्पायनमासीनं पुराणार्थविचक्षणम् ॥
इममर्थं स राजर्षिः पृष्टवाञ्जनमेजयः ॥ १५ ॥

वह राजऋषि जनमेजय पुराणोंके अर्थको जाननेवाले बैठे हुए वैशम्पायनजीसे इसी अर्थको पूछता भया ॥ १५ ॥

जनमेजय उवाच ।

किं जपन्मुच्यते पापात्किं जपन्सुखमश्नुते ॥
दुःस्वप्ननाशनं पुण्यं श्रोतुमिच्छामि मानद ॥१६॥

जनमेजय बोला-हे मानद ! (मानदायी) क्या जपता हुआ मनुष्य पापसे छूटता है और क्या जपता हुआ सुखको प्राप्त होता है ? मैं दुष्टस्वप्नफलको नष्ट करनेवाले पवित्र (इतिहासको) सुनना चाहता हूँ ॥ १६ ॥

वैशंपायन उवाच ।

देवव्रतं महाप्राज्ञं सर्वशास्त्रविशारदम् ॥
विनयेनोपसंगम्य पर्यपृच्छद्युधिष्ठिरः ॥ १७ ॥

वैशम्पायनजी बोले-हे देवव्रत ! (देवताओंके समान व्रतवाले)

महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रवेत्ता ऐसे भीष्मपितामहजीको विनयसे प्राप्त होके युधिष्ठिर पूछता भया॥ १७॥

युधिष्ठिर उवाच।

दुःस्वप्नदर्शनं घोरमवेक्ष्य भरतर्षभ॥
प्रयतः किं जपेज्जाप्यं विबुधः किमनुस्मरेत्॥१८॥

युधिष्ठिर बोला–हे भरतर्षभ! पण्डितजन घोर दुःस्वप्न देखके सावधान होके किस मन्त्रको जपै और किसका स्मरण करै॥१८॥

कस्य कुर्यान्नमस्कारं प्रातरुत्थाय मानवः॥
किं च ध्यायेत सततं कः पूज्यो वा भवेत्सदा॥ १९॥

मनुष्य प्रातःकाल उठके किसको नमस्कार करै, निरंतर किसका ध्यान करै और सदा कौन पूज्य है॥ १९॥

पितामह प्रसादेन बुद्धिभेदो भवेन्न मे॥
तदहं श्रोतुमिच्छामि ब्रूहि नो वदतां वर॥ २०॥

हे भीष्मपितामहजी! हे वदतांवर (कहनेवालोंमें श्रेष्ठ)! आपके प्रसादसे जिससे मेरी बुद्धिमें भेद नहीं हो सो मैं तुमसे सुनना चाहता हूँ आप मेरे अर्थ कहो॥ २०॥

भीष्म उवाच।

शृणु राजन्महाबाहो वर्णयिष्ये हि शांतिदम्॥
दुःस्वप्नदर्शने जाप्यं यद्वै नित्यं समाहितैः॥ २१॥

भीष्मजी बोले–हे राजन्! हे महाबाहो जो दुःस्वप्न दर्शनमें सावधान हुए जनोंकरके जपने योग्य शांतिदायक (मंत्र) है तिसको सुनो॥ २१॥

अत्राप्युदाहरंतीममितिहासं पुरातनम् ॥
गजेन्द्रमोक्षणं पुण्यं कृष्णस्याक्लिष्टकर्मणः ॥ २२ ॥

यह पुरातन गजेंद्रमोक्षनामक अर्थात् जिसमें संकटसे गजेंद्रका छुटाना ऐसे उत्तम कर्मवाले श्रीकृष्णके पवित्र इतिहासको कहते हैं ॥ २२ ॥

सर्वरत्नमयः श्रीमांस्त्रिकूटो नाम पर्वतः ॥
सुतः पर्वतराजस्य सुमेरोर्भास्करद्युतेः ॥ २३ ॥

संपूर्णरत्नोंसे संयुक्त हुआ श्रीमान् त्रिकूट नामक पर्वत होता भया, वह सूर्य समान कांतिवाले पर्वतराज सुमेरुका पुत्र भया॥२३॥

क्षीरोदजलवीच्यग्रैर्धौतामलशिलातलः ॥
उत्थितः सागरं भित्त्वा देवर्षिगणसेवितः ॥ २४ ॥

तहां क्षीरसागरके जलकी लहरियोंके अग्रभागकरके धुला हुआ स्वच्छ शिलातलोंवाला तथा देवर्षिगणोंसे सेवित हुआ वह पर्वत समुद्रको भेदन करके ऊपरको उठा हुआ है ॥ २४ ॥

अप्सरोभिः परिवृतः श्रीमान्प्रस्रवणाकुलः ॥
गंधर्वैः किन्नरैर्यक्षैः सिद्धचारणपन्नगैः ॥ २५ ॥

अप्सराओंकरके संयुक्त शोभावाला, झिरनोंकरके संयुक्त, गंधर्व, किन्नर, यक्ष, सिद्ध, चारण, पन्नग, दिव्यसर्प इन्हों करके ॥२५॥

मृगैः शाखामृगैः सिंहैर्मातंगैश्च सदामदैः ॥
वृकद्वीपिवराहाद्यैर्वृतगात्रो विराजते ॥ २६ ॥

और मृग, वानर, सिंह, मदोन्मत्त हस्ती, भेडिया, गैड़ा, शूकर इत्यादिकों करके संयुक्त हुआ वह पर्वत विराजमान है ॥ २६ ॥

पुन्नागैः कर्णिकारैश्च सुबिल्वैर्दिव्यपाटलैः ॥
चूतनिंबकदंबैश्च चंदनागुरुचंपकैः ॥ २७ ॥

और पुन्नाग (गुर्जरदेशमें उडीण संदेशरा बोलते हैं) तथा काठचंपा वृक्ष और सुन्दर बेलपत्र, दिव्यपाटलवृक्ष, आंब, नींब, कदंब, चंदन, अगर, चंपावृक्ष ॥ २७ ॥

शालैस्तालैस्तमालैश्च तरुभिश्चार्जुनैस्तथा ॥
बकुलैः कुंदपुष्पैश्च सरलैर्देवदारुभिः ॥ २८ ॥

शालवृक्ष, ताड़वृक्ष, तमालवृक्षोंकरके तथा अर्जुन (कोहवृक्ष) बकुल और कुन्दपुष्प, सरलवृक्ष, देवदारु इन्होंकरके ॥ २८ ॥

मंदारकुसुमैश्चान्यैः पारिजातैश्च सर्वतः ॥
एवं बहुविधैर्वृक्षैः शोभितः समलंकृतः ॥ २९ ॥

और मन्दार (देववृक्ष) के पुष्पोंकरके तथा कल्पवृक्षों करके संयुक्त है ऐसे बहुत प्रकारके वृक्षों करके सब तरफसे शोभित और परिपूर्ण है ॥ २९ ॥

नानाधात्वंकितैः शृंगैः प्रस्रवद्भिः समंततः ॥
जीवंजीवकसंघुष्टं चकोरशिखिनादितम् ॥ ३० ॥

अनेकप्रकारकी धातुओंसे चिह्नित तथा जलके झिरनोंवाले शिखरोंसे सब तरफसे शोभित है, जीवंजीवक पक्षियोंकरके कूजित चकोर और मयूरोंकरके शब्दित है ॥ ३० ॥

पद्मरागसमप्रख्यं ज्वालापुंजमिवोत्थितम् ॥
तस्यैकं कांचनं शृंगं सेवते यद्दिवाकरः ॥ ३१ ॥

और पुखराजके समान कांतिवाला अग्निके समूहकी तरह

उठा हुआ ऐसा तिस पर्वका शिखर सुवर्णका है जिसको सूर्य सेवता है ॥ ३१ ॥

नानापुष्पैः समाकीर्णं नानागंधैः समाकुलम् ॥
द्वितीयं राजतं श्रृंगं सेवते यन्निशाकरः ॥ ३२ ॥

अनेकप्रकारके पुष्पोंकरके और अनेक प्रकारकी सुगन्धियोंकरके संयुक्त है, दूसरा शिखर चान्दीका है उसको चंद्रमा सेवता है ॥ ३२ ॥

पांडुरांबुदसंकाशं तुषाराचलसन्निभम् ॥
वज्रेंद्रनीलवैडूर्यतेजोभिर्भासयन्नभः ॥ ३३ ॥

वह सफेद मेघ (बादल) के समान कांतिवाला तथा बर्फके पर्वतसमान कांतिवाला है और वज्र, इन्द्रनीलमणि, वैडूर्यमणि, इन्होंके तेजोंकरके आकाशको प्रकाशित करता हुआ ॥ ३३ ॥

तृतीयं ब्रह्मसदनं प्रकृष्टं शृंगमुत्तमम् ॥
अत्यद्भुतं महासानु विचित्रसरसद्रुमम् ॥ ३४ ॥

तीसरा शिखर ब्रह्माजीका स्थान और अत्यंत उत्तम है अत्यंत अद्भुत महान् सानु अर्थात् शिखरके समान भूमिवाला है तथा सरस उत्तम वृक्षोंवाला है ॥ ३४ ॥

विद्याधरपुरं तत्र हेमप्राकारतोरणम् ॥
तरुणादित्यसंकाशं तप्तकांचनसन्निभम् ॥ ३५ ॥

वहां सुवर्णकी खाही (कोट) और तोरणवाला विद्याधरोंका पुर है, तेजयुक्त सूर्यसमान कांतिवाला और तपाया हुआ सुवर्णसमान कांतिवाला है ॥ ३५ ॥

बालस्फटिकसोपानं वैडूर्यसुशिलातलम् ॥
जाम्बूनदमहद्दिव्यं नानारत्नोपशोभितम् ॥ ३६ ॥

उत्तममणियोंकी पैडी है वैडूर्यमणिकी शिला है अनेक रत्नोंसे शोभित महान् सुवर्ण है ॥ ३६ ॥

अप्सरोगणसंकीर्णं सिद्धगन्धर्वसेवितम् ॥
पद्मरागसमप्रख्यं तारागणसमन्वितम् ॥ ३७ ॥

तहां वह अप्सराओंके गणसे संयुक्त और सिद्ध गंधर्वोंकरके सेवित है और पद्मरागमणिके समान है शोभा जिसकी और तारागणोंसे युक्त ॥ ३७ ॥

नैतत्कृतघ्नाः पश्यन्ति न नृशंसा न नास्तिकाः ॥
नातप्ततपसो लोके ये च पापकृतो नराः ॥ ३८ ॥

ऐसे स्थानको कृतघ्न और हिंसा करनेवाले और नास्तिक तथा तपस्या न करनेवाले पापिष्ठ लोग नहीं देखते ॥ ३८ ॥

नानाराधितगोविंदाः शैलं पश्यन्ति ते नराः ॥
तस्य सानुमतः पृष्ठे सरः काचनपंकजम् ॥ ३९ ॥

जिन्होंने गोविंद भगवान्की आराधना नहीं की हो ऐसा मनुष्य इस पर्वतको नहीं देखते इस पर्वतके पृष्ठपर सुवर्ण कमलोंसे युक्त ॥ ३९ ॥

कारंडवसमाकीर्णं राजहंसोपशोभितम् ॥
मत्तभ्रमरसंघुष्टं चकोरशिखिनादितम् ॥ ४० ॥

और कारंडवपक्षियोंसे व्याप्त तथा हंसोंसे युक्त और मत्तभ्रमरोंसे सेवित तथा चकवा और मयूरोंके शब्दोंसे नादित ॥ ४० ॥

कमलोत्पलकह्लारपुंडरीकोपशोभितम् ॥
कुमुदैः शतपत्रैश्च काञ्चनैः समलंकृतम् ॥ ४१ ॥

और अनेक प्रकारके सूर्यविकासी और चन्द्रविकासी कमलों-करके शोभायमान ऐसा मनोहर सरोवर था ॥ ४१ ॥

पत्रैर्मरकतप्रख्यैः पुष्पैः कांचनसन्निभैः ॥
गुल्मैः कीचकवेणूनां समंतात्परिवारितम् ॥ ४२ ॥

मरकत मणिके समान कांतिवाले पत्तोंसे युक्त तथा सुवर्णके समान वर्णवाले पुष्पोंसे युक्त और चारों तरफमें गुच्छे छिद्रोंवाले बाजते हुए बांस संकीर्ण हो रहे हैं ॥ ४२ ॥

अत्यद्भुतं महास्थानं विचित्रशिखराकुलम् ॥
शतयोजनविस्तीर्णं दशयोजनमायतम् ॥ ४३ ॥

तहां एक विचित्र शिखरोंकरके संयुक्त अत्यन्त अद्भुत महा-स्थान है, सौ योजन (४०० कोश) लम्बा है दशयोजन (४० कोश) चौड़ा है ॥ ४३ ॥

पञ्चयोजनमूर्द्धानं सर एतत्प्रमाणतः ॥
हिमखण्डोदकं राजन्सुस्वादममृतोपमम् ॥ ४४ ॥

पांच योजन ऊँचा ऐसे प्रमाणका सरोवर है । हे राजन् ! तहां बर्फ गलनेका पानी अमृतके समान सुन्दर स्वादु है ॥ ४४ ॥

त्रैलोक्येऽदृष्टपूर्वं च यत्सरस्तदनुत्तमम् ॥
सुप्रसन्नं सरो दिव्यं देवानामपि दुर्लभम् ॥ ४५ ॥

ऐसा अत्युत्तम सरोवर पहले त्रिलोकीमें नहीं देखा गया है सुन्दर स्वच्छ दिव्य यह सरोवर देवताओंको भी दुर्लभ है ॥४५॥

खातेन द्विगुणं प्रोक्तं शरद्यौरिव निर्मलम् ॥
उपहाराय देवानां सिद्धाद्यर्जितपंकजम् ॥ ४६ ॥

ऊँचाईसे दूना ढूँघा है शरदृऋतुके आकाशकी तरह निर्मल है जिस सरोवरमें सिद्ध आदि लोग देवताओंकी पूजाके वास्ते कमलके पुष्पोंको संचित करते हैं ॥ ४६ ॥

तस्मिन्सरसि दुष्टात्मा विरूपोऽन्तर्जलाशयः ॥
आसीद् ग्राहो गजेंद्राणां दुराधर्षो महाबलः ॥ ४७ ॥

तिस सरोवरमें दुष्टस्वभाववाला, विरूप, जलके भीतर रहनेवाला गजेंद्र (हस्तियों) को दुराधर्ष (नहीं सहने योग्य) महाबली ग्राह होता भया ॥ ४७ ॥

अथ दंतोज्ज्वलमुखः कदाचिद्गजयूथपः ॥
आजगाम तृषाऽऽक्रांतः करेणुपरिवारितः ॥ ४८ ॥

इसके अनन्तर किसी समयमें दांतों करके उज्ज्वल मुखवाला, तृषासे पीडित हुआ, हस्तिनियोंकरके संयुक्त हुआ, हस्तिसमूहोंका पति (एक हस्ती) आता भया ॥ ४८ ॥

मदस्रावी जलाकांक्षी पादचारीव पर्वतः ॥
वासयन्मदगंधेन महानैरावतोपमः ॥ ४९ ॥

मद झिरानेवाला जलकी इच्छावाला मदकी सुगंधि फैलाता हुआ महान् ऐरावत हस्तीके समान और मानो पैरोंसे चलके पर्वत आया हो ऐसा विशाल ॥ ४९ ॥

गजो ह्यंजनसंकाशो मदाच्चलितलोचनः ॥
तृषितः पातुकामोऽसाववतीर्णो महाह्रदे ॥ ५० ॥

अञ्जनके समान कांतिवाला मदसे नेत्रोंको चलायमान करता हुआ ऐसा यह तिसाया हस्ती जल पीनेकी इच्छा करके तिस महान् सरोवरमें उतरा ॥ ५० ॥

पिबतस्तस्य तत्तोयं ग्राहः समुपपद्यते ॥
सुलीनः पंकजवने यूथमध्यगतः करी ॥ ५१ ॥

तिसका जल पीते हुए तिसको ग्राह प्राप्त होता भया, फिर यूथ (हस्तिसमूह) के मध्यमें प्राप्त हुआ वह हस्ती कमलवनमें लीन भया, लुकने लगा ॥ ५१ ॥

गृहीतस्तेन रौद्रेण ग्राहेणाऽव्यक्तमूर्तिना ॥
पश्यन्तीनां करेणूनां क्रोशंतीनां च दारुणम् ॥५२॥

तब उस भयंकर अप्रकट मूर्तिवाले ग्राहने हस्तिनियोंके देखते हुए और दारुण पुकारते हुए पकड़ लिया ॥ ५२ ॥

नीयते पंकजवने ग्राहेणातिबलीयसा ॥
गजश्चाकर्षते तीरं ग्राहश्चाकर्षते जलम् ॥ ५३ ॥

अत्यन्त बलवाला ग्राह कमलवनमें खींचने लगा, हाथी तो किनारकी तरफ खींचता है और ग्राह जलमें खींचता है ॥ ५३ ॥

तयोरासीन्महद्युद्धं दिव्यवर्षसहस्रकम् ॥
दारुणैः संयुतः पाशैर्निष्प्रयत्नगतिः कृतः ॥ ५४ ॥

इस प्रकार तिन दोनोंका महान् युद्ध दिव्य हजार वर्षोंतक होता भया दारुण फाँशियोंकरके संयुक्त किया हुआ हस्ती कुछ चेष्टा न कर सके ऐसा कर दिया ॥ ५४ ॥

वेष्ट्यमानः स घोरैस्तु पाशैर्नागो दृढैस्तथा ॥

विस्फूर्य च यथाशक्त्या विक्रोशंस्तु महारवान्॥५५॥

घोर दृढ फांसियों करके बँधा हुआ वह हस्ती शक्तिके अनुसार चेष्टा स्फुरणा करके महान् चिक्कार मारता भया॥ ५५॥

व्यथितः स निरुत्साहो गृहीतो घोरकर्मणा॥
परमापदमापन्नो मनसाऽचिंतयद्धरिम्॥ ५६॥

पीडित हुआ, उत्साह रहित हुआ, घोर कर्मवाले ग्राहसे पकडा हुआ; परम विपत्तिको प्राप्त हुआ हस्ती अपने मनः करके हरिभगवान्की शरण होता भया॥ ५६॥

स तु नागवरः श्रीमान्नारायणपरायणः॥
तमेव शरणं देवं गतः सर्वात्मना तदा॥ ५७॥

तब वह श्रीमान् हस्तिवर नारायणको परम आश्रय करके सर्वात्मा करके तिस ही देवकी शरण प्राप्त भया॥ ५७॥

एकाग्रो निगृहीतात्मा विशुद्धेनान्तरात्मना॥
जन्मजन्मान्तराभ्यासाद्भक्तिमान्गरुडध्वजे॥ ५८॥

विशुद्ध मन करके एकाग्र हो मनकी वृत्तियोंको वशमें कर जन्म २ के अभ्याससे गरुड़ध्वज भगवान्में भक्तिमान् होता भया॥ ५८॥

नान्यं देवं महादेवात्पूजयामास केशवात्॥
दिग्बाहुं स्वर्गमूर्द्धानं भूपादं गगनोदरम्॥ ५९॥

महान् देव केशव भगवान्से अन्य किसी देवको नहीं पूजता भया। दिशा बाहु, स्वर्ग मस्तक, भूमि पाद, आकाश उदरवाले॥ ५९॥

आदित्यचंद्रनयनमनंतं विश्वतोमुखम्॥
भूतात्मानं च मेघाभं शंखचक्रगदाधरम्॥ ६०॥

सूर्य चंद्रमा नेत्रोंवाले, अनन्त सब तरफ मुखवाले,भूतात्मा,मेघ-समान कांतिवाले, शंख चक्र गदाधारी ॥ ६० ॥

सहस्रशुभनामानमादिदेवमजं विभुम् ॥
प्रगृह्य पुष्कराग्रेण कांचनं कमलोत्तमम् ॥ ६१ ॥

सुन्दर सहस्रनामवाले आदिदेव अजन्मा ऐश्वर्यवान् नारायण-को पूजता भया, कमलदंडीके अग्रभागसे उत्तम सुनहरे कमल पुष्पको ग्रहण करके ॥ ६१ ॥

नैवेद्यं मनसा ध्यात्वा पूजां कृत्वा जनार्दने ॥
आपद्विमोक्षमन्विच्छन्गजः स्तोत्रमुदैरयत् ॥ ६२ ॥

मनकरके नैवेद्यका ध्यान कर जनार्दन भगवान्‌विषे पूजा करके विपत्तिसे छूटनेकी इच्छा करता हुआ हस्ती स्तोत्र कहता भया ॥ ६२ ॥

गजेन्द्र उवाच ।

नमो मूलप्रकृतये अजिताय महात्मने ॥
अनाश्रयाय देवाय निःस्पृहाय नमो नमः ॥ ६३ ॥

गजेंद्र बोला–मूलप्रकृतिस्वरूप अजित महात्माके अर्थ नम-स्कार है, अनाश्रयदेव अर्थात् किसीके आश्रय नहीं रहनेवाले निःस्पृह इच्छा रहितके अर्थ नमस्कार है ॥ ६३ ॥

नम आद्याय बीजाय आर्षेयाय महात्मने ॥
अनंतराय चैकाय अव्यक्ताय नमो नमः ॥ ६४ ॥

आद्य बीजस्वरूप, आर्षेय महात्मा अन्तर (मध्य) रहित, एक, अव्यक्त किसीप्रकार प्रकट न होनेवाले देवके अर्थ नम-स्कार है नमस्कार है ॥ ६४ ॥

नमो गुह्याय गूढाय गुणाय गुणवर्तिने ॥
अतर्क्यायाप्रमेयाय अतुलाय नमो नमः ॥ ६५ ॥

गुह्य, गूढस्वरूप, गुणस्वरूप, गुणोंमें वर्त्तनेवाले अतर्क्य (किसी प्रकार विचार नहीं किये जावें) अप्रमेय (किसी प्रकार प्रमाण नहीं किये जावें) अतुल ऐसे नारायणको नमस्कार है नमस्कार है ॥ ६५ ॥

नमः शिवाय शांताय निश्चिताय यशस्विने ॥
सनातनाय पूर्वाय पुराणाय नमो नमः ॥ ६६ ॥

शिवस्वरूप शांतस्वरूप चिंतारहित यशस्वी सनातन पूर्व सबसे पहिले रहनेवाले पुराण पुरुषके अर्थ नमस्कार है नमस्कार है ६६॥

नमो जगत्प्रतिष्ठाय गोविंदाय नमो नमः ॥
नमोऽस्तु पद्मनाभाय सांख्ययोगोद्भवाय च ॥ ६७ ॥

जगत्की स्थिति करनेवाले गोविंदके अर्थ नमस्कार है नमस्कार है, पद्मनाभ और सांख्ययोग शास्त्रों करके जानने योग्यके अर्थ नमस्कार है ॥ ६७ ॥

विश्वेश्वराय देवाय शिवाय हरये नमः ॥
नमोऽस्तु तस्मै देवाय निर्गुणाय गुणात्मने ॥ ६८ ॥

विश्वेश्वर देव शिव हरिके अर्थ नमस्कार है, निर्गुण और गुणात्मक तिस देवके अथ नमस्कार है ॥ ६८ ॥

नमो देवाधिदेवाय स्वभावाय नमो नमः ॥
नारायणाय विश्वाय देवानां परमात्मने ॥ ६९ ॥

देवताओंके अधिपति देव आप ही उत्पन्न करनेवाले विश्वस्वरूप नारायणके अर्थ देवताओंके परमात्माके अर्थ नमस्कार है ॥६९॥

नमो नमः कारणवामनाय नारायणायामितविक्र-माय ॥ श्रीशार्ङ्गचक्रासिगदाधराय नमोऽस्तु तस्मै पुरुषोत्तमाय ॥ ७० ॥

कारणरूपी वामन सूक्ष्मके अर्थ नमस्कार है, नारायण अतुल पराक्रमवाले श्रीशार्ङ्गधनुष, चक्र, गदा धारण करनेवाले तिस पुरुषोत्तमदेवके अर्थ नमस्कार है ॥ ७० ॥

गुह्याय वेदनिलयाय महोदराय सिंहाय दैत्यनि-धनाय चतुर्भुजाय ॥ ब्रह्मेंद्ररुद्रमुनिचारणसंस्तुताय देवोत्तमाय वरदाय नमोऽच्युताय ॥ ७१ ॥

गुह्यस्वरूप वेदके स्थान महान् उदरवाले सिंहस्वरूप दैत्यों-को नष्ट करनेवाले चतुर्भुजस्वरूपवाले ब्रह्मा, इंद्र, शिव, मुनि, चारण इन्हों करके संस्तुत देवताओंमें उत्तम वरदायी अच्युत अर्थात् जिसका अपने स्थानसे पड़ना नहीं होता है ऐसे देवके अर्थ नमस्कार है ॥ ७१ ॥

नागेंद्रदेहशयनासनसुप्रियाय गोक्षीरहेमशुकनी-लघनोपमाय ॥ पीतांबराय मधुकैटभनाशनाय विश्वाय चारुमुकुटाय नमोऽक्षराय ॥ ७२ ॥

शेषनाग शय्यापर आसन करनेमें सुंदरहितवाले गौके दूधस-मान, सुवर्णसमान (कांतिवाले) तोता और नील मेघके समान उपमावाले अर्थात् श्वेत, पीत, हरित, नील सब वर्णवाले पीतांबर-धारी मधुकैटभ दैत्यको नष्ट करनेवाले विश्वरूप सुन्दरमुकुटवाले अक्षर (क्षीणता आदि) विकाररहितके अर्थ नमस्कार है ॥७२॥

नाभिप्रजातकमलस्थचतुर्मुखाय क्षीरोदकार्णव-

निकेतनशोभनाय ॥ नानाविचित्रमुकुटांगदभूष-
णाय योगीश्वराय पुरुषाय नमो वराय ॥ ७३ ॥

जिसकी नाभिसे उत्पन्न हुए कमलमें स्थित होनेवाले चतु-
र्मुख ब्रह्माजी होते हैं (ऐसे) क्षीरसागर स्थानमें शोभित होने-
वाले अनेक प्रकारके विचित्र मुकुट और बाजूबन्द आदि
आभूषणोंवाले, योगीश्वर, पुरुष, उत्तम (श्रेष्ठ) भगवान्के अर्थ
नमस्कार है ॥ ७३ ॥

भक्तिप्रियाय वरदीप्तिसुदर्शनाय फुल्लारविंदविपु-
लायतलोचनाय ॥ देवेन्द्रविघ्नशमनोद्यतपौरुषाय
नारायणाय विरजाय नमोऽच्युताय ॥ ७४ ॥

भक्तिको प्रिय माननेवाले उत्तम कांतियुक्त सुदर्शनचक्रवाले
फूले हुए कमलसमान विस्तृत नेत्रोंवाले (रागादि) रजोगुणरहित
नारायण अच्युत भगवान्के अर्थ नमस्कार है ॥ ७४ ॥

नारायणाय नरलोकपरायणाय कालाय कालक-
मलायतलोचनाय ॥ रामाय रावणविनाशकृतो-
द्यमाय धीराय धीरतिलकाय महोदराय ॥ ७५ ॥

नारायण नरलोकमें परायण कालस्वरूप कालरूपी कमलके
समान नेत्रोंवाले रावणको विनाश करनेवाले रामचन्द्रजी
धीरजवाले धीरजवालोंमें शिरोमणि महान् उदरवाले ऐसे भग-
वान्के अर्थ नमस्कार है ॥ ७५ ॥

पद्मासनाय मणिकुण्डलभूषणाय कंसन्तकाय
शिशुपालविनाशनाय ॥ गोवर्धनाय सुरशत्रु-
निकृंतनाय दामोदराय वरदाय नमो वराय ॥७६॥

कमलासन भगवान् और मणि कुण्डल आभूषणोंवाले कंसको मारनेवाले शिशुपालका विनाश करनेवाले गोवर्द्धनरूप देवताओंके शत्रु (दैत्यों) को मारनेवाले दामोदर वर देनेवाले अत्यन्त श्रेष्ठ भगवान्‌के अर्थ नमस्कार है ॥ ७६ ॥

ब्रह्मायनाय त्रिदशाधिपाय लोकायनायात्मभवोद्भवाय ॥ नारायणायार्तिविनाशनाय महावराहाय नमस्करोमि ॥ ७७ ॥

ब्रह्माजीके निवासस्थान देवता और स्वर्गके पति लोकोंके निवासस्थान आप ही उत्पन्न होनेवाले नारायण पीड़ाको नाश करनेवाले महावराह अवतारधारी भगवान्‌के अर्थ मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ७७ ॥

कूटस्थमव्यक्तमचिंत्यरूपं नारायणं कारणमादिदेवम् ॥ युगतांशेषं पुरुषं पुराणं तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये ॥ ७८ ॥

कूटस्थ (परमात्मारूप) अव्यक्त अचिन्त्यरूप नारायण कारणस्वरूप आदिदेव प्रलयकालमें शेष रहनेवाले पुराणपुरुष तिस वासुदेवकी शरण हूँ ॥ ७८ ॥

अदृश्यमच्छेद्यमनन्तमव्ययं महर्षयो ब्रह्ममयं सनातनम् ॥ वदंति यं वै पुरुषं पुराणं तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये ॥ ७९ ॥

अदृश्य, अच्छेद्य, अनन्त, अविनाशी जिसको महर्षिजन सनातन ब्रह्ममय पुराणपुरुष कहते हैं तिस वासुदेवकी शरण हूँ ॥ ७९ ॥

उत्तिष्ठतस्तस्य जलार्द्रकुक्षोर्महावराहस्य महीं

विदार्य ॥ वितन्वतो वेदमयं शरीरं लोकांतरस्था मुनयो वदंति ॥ ८० ॥

पृथ्वीको उपाडके जलके ऊपर आरूढ होनेकी इच्छावाले उठते हुए वराहजीको वेदमय शरीर लोकान्तरस्थ मुनिजन कहते हैं ॥ ८० ॥

योगेश्वरं चारुविचित्रमौलिं ज्ञेयं समक्षं प्रकृतेः परस्तात् ॥ क्षेत्रज्ञमात्मप्रभवं वरेण्यं तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये ॥ ८१ ॥

योगीश्वर सुन्दर विचित्रमुकुटवाले प्रत्यक्ष प्रकृतिसे परे क्षेत्रज्ञ आप ही उत्पन्न वरेण्य (प्रधानपुरुष) तिस वासुदेवकी शरण हूँ॥८१॥

कार्यक्रियाकारणमप्रमेयं हिरण्यबाहुं वरपद्मनाभम् ॥ महाबलं वेदनिधिं सुरोत्तमं व्रजामि विष्णुं शरणं जनार्दनम् ॥ ८२ ॥

कार्य क्रिया कारण स्वरूप है अप्रमेय है सुवर्णवत् तेजवाली भुजावाले उत्तम पद्मनाभ महाबलवाले वेदनिधि देवताओंमें श्रेष्ठ जनार्दन अर्थात् शत्रुजनोंको नष्ट करनेवाले विष्णु भगवान्की शरण हूँ ॥ ८२ ॥

किरीटकेयूरमहार्हनिष्कैरत्यंतमालंकृतसर्वगात्रम् ॥ पीतांबरं कांचनभक्तिचित्रमालाधरं केशवमभ्युपैमि ॥ ८३ ॥

मुकुट बाजूबन्द उत्तम गलेका आभूषण इन्होंकरके विभूषित किया है संपूर्ण शरीर जिन्होंने ऐसे और पीतांबरधारी भक्तिसे विचित्रित सुवर्णकी मालाको धारण करनेवाले केशव भगवान्की शरण हूँ ॥ ८३ ॥

भवोद्भवं वेदविदां वरिष्ठमादित्यचन्द्राग्निवसुप्रभा-वम् ॥ योगात्मकं सांख्यविदां वरिष्ठं प्रभुं प्रपद्ये-ऽच्युतमात्मवन्तम् ॥ ८४ ॥

संसारको उत्पन्न करनेवाले वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, वसु इन्होंमें तेजवृद्धि करनेवाले, योगात्मक सांख्यवेत्ता-ओंमें श्रेष्ठ प्रभु, अच्युत, आत्मवंत भगवान्‌की शरण हूँ ॥ ८४ ॥

यदक्षरं ब्रह्म वदंति सर्वगं निशम्य यन्मृत्युमुखा-त्प्रमुच्यते ॥ तमीश्वरं युक्तमनुत्तमैर्गुणैः सनातनं लोकगुरुं स्मरामि ॥ ८५ ॥

जिसको अक्षर (निर्विकार अविनाशी) सर्वगत ब्रह्म कहते हैं और जिसको सुनके विचारके यह जीव मृत्युके मुखसे छूट जाता है, सर्वोत्तम गुणोंकरके युक्त हुए तिस ईश्वरको लोकके गुरुको मैं स्मरण करता हूँ ॥ ८५ ॥

श्रीवत्सांकं महादेवं वंदे गुह्यमनुत्तमम् ॥
प्रपद्ये सूक्ष्ममचलं वरेण्यमभयप्रदम् ॥ ८६ ॥

श्रीवत्सचिह्नवाले, महान् देव, गुह्य, अत्युत्तम, सूक्ष्म, अचल, प्रधानपुरुष अभय देनेवाले भगवान्‌की मैं शरण हूँ ॥ ८६ ॥

नमस्तस्मै वराहाय लीलयोद्धरते महीम् ॥
खुरमध्यगतो यस्य मेरुः खुरखुरायते ॥ ८७ ॥

जो अपनी लीला करके पृथ्वीको उठा लेता है और जिसके पैर (खुर) में प्राप्त हुआ सुमेरु पर्वत खुर खुर होता है अर्थात् खुरमें अत्यंत सूक्ष्म लीन होजाता है तिस वराहजीके अर्थ नमस्कार है ॥ ८७ ॥

प्रभवं सर्वभूतानां निर्गुणं परमेश्वरम् ॥
प्रपद्ये मुक्तसंगानां यतीनां परमां गतिम् ॥ ८८ ॥

जो सब भूतोंको उत्पन्न करनेवाला निर्गुण परमेश्वर है और संगरहित यतिजनोंकी परम गति है तिसकी शरण हूँ ॥ ८८ ॥

भगवंतं गुणाध्यक्षमक्षरं परमं पदम् ॥
शरण्यं शरणार्तानां प्रपद्ये भक्तवत्सलम् ॥ ८९ ॥

(भगवंत) ऐश्वर्यवाले गुणोंके अधिष्ठाता अक्षर परमपद शरणागतोंके रक्षक भक्तोंपर दया करनेवाले ऐसे भगवान्‌की शरण हूँ ॥ ८९ ॥

त्रिविक्रमं त्रिलोकेशं सर्वेषां प्रपितामहम् ॥
योगात्मानं महात्मानं प्रपद्येऽहं जनार्दनम् ॥ ९० ॥

त्रिविक्रम (तीनों लोकोंमें वा त्रिगुणोंमें जिसका पादविक्षेप प्रचार है ऐसे) त्रिलोकीके स्वामी सबके प्रपितामह (बड़े दादे) योगात्मा महात्मा ऐसे जनार्दन भगवान्‌की मैं शरण हूँ ॥ ९० ॥

आदिदेवमजं विष्णुं व्यक्ताव्यक्तं सनातनम् ॥
नारायणमणीयांसं प्रपद्ये ब्राह्मणप्रियम् ॥ ९१ ॥

आदिदेव अजन्मा विष्णुकहिये सब लोकोंमें व्याप्त होके रहनेवाले व्यक्त अर्थात् अवतार आदिकों करके प्रकट अव्यक्त कहिये इंद्रियोंकरके अग्राह्य सनातन नारायण अत्यंत सूक्ष्म ब्राह्मणोंके प्रिय ऐसे ईश्वरकी शरण हूँ ॥ ९१ ॥

अकूपाराय देवाय नमः सर्वमहात्मने ॥
प्रपद्ये देवदेवेशमणीयांसमणोर्यथा ॥ ९२ ॥

समुद्रस्वरूप देवके अर्थ, सर्व महात्माके अर्थ नमस्कार है। देवदेवेश सूक्ष्मोंसे भी अत्यंत सूक्ष्म ऐसे प्रभुकी शरण हूं ॥९२॥

लोकत्रयाय चैकाय परतः परमात्मने ॥
नमः सर्वत्रशिरसे अनंताय महात्मने ॥ ९३ ॥

त्रिलोकीस्वरूप एक परम परमात्माके अर्थ नमस्कार है, सब जगह शिरोंवाले अनंत महात्माके अर्थ नमस्कार है ॥ ९३ ॥

तमेवं परमं देवमृषयो वेदपारगाः ॥
कीर्त्तयंति च य सर्वे ब्रह्मादीनां परायणम् ॥ ९४ ॥

जो ब्रह्मादिकोंका परम निवासस्थान है तिस ही परमदेवको वेदपारगामी सब ही ऋषि कीतन करते हैं ॥ ९४ ॥

नमस्ते पुंडरीकाक्ष भक्तानामभयंकर ॥
सुब्रह्मण्य नमस्तेऽस्तु त्राहि मां शरणागतम् ॥ ९५ ॥

हे पुंडरीकाक्ष ! हे भक्तोंको अभय करनेवाले! हे सुब्रह्मण्यदेव ! तुम्हारे अर्थ नमस्कार है,शरणागत हुए मेरी रक्षा करो ॥ ९५ ॥

तावद्भवति मे दुःखं चिंतासंसारसागरे ॥
यावत्कमलपत्राक्षं न स्मरामि जनार्दनम् ॥ ९६ ॥

चिंतायुक्त संसारसागरमें मुझको तबतक दुःख होता है कि जबतक कमलके पत्रसमान नेत्रोंवाले जनार्दन भगवान्‌को स्मरण नहीं करता हूँ ॥ ९६ ॥

भीष्म उवाच ।

भक्तिं तस्य तु संचिंत्य नागस्यामोघसंस्तवम् ॥
प्रीतिमानभवद्राजञ्छ्रुत्वा चक्रगदाधरः ॥ ९७ ॥

भीष्मपितामहजी कहते हैं हे राजन्! तिस हस्तीके अमोघ स्तोत्रको और भक्तिको चिंतवन करके चक्र और गदाधारी विष्णुभगवान् प्रसन्न होते भये ॥ ९७ ॥

आरुह्य गरुडं विष्णुराजगाम सुरोत्तमः ॥
सान्निध्यं कल्पयामास तस्मिन्सरसि लोकधृक् ९८॥

लोकको धारण करनेवाले देवोत्तम विष्णुभगवान् गरुडपर चढके तिस सरोवरके समीप प्राप्त होते भये ॥ ९८ ॥

ग्राहग्रस्तं गजेन्द्रं च तं ग्राहं च जलाशयात् ॥
उज्जहाराप्रमेयात्मा तरसा मधुसूदनः ॥ ९९ ॥

अतुल शरीरवाले मधुसूदन भगवान् ग्राहसे पकड़े हुए हस्तीको और तिस ग्राहको उस सरोवरसे बाहर निकालते भये ॥९९॥

जलस्थं दारयामास ग्राहं चक्रेण माधवः ॥
मोचयामास नागेन्द्रं पापेभ्यः शरणागतम् ॥१००॥

माधव भगवान् जलमें स्थित हुए ग्राहको अपने सुदर्शनचक्रसे काटते भये और शरणागत हुए नागेन्द्रको पापोंसे छुटाते भये ॥ १०० ॥

स हि देवलशापेन हूहूर्गंधर्वसत्तमः ॥
ग्राहत्वमगमत्कृष्णाद्वधं प्राप्य दिवं गतः ॥
इदमप्यपरं गुह्यं राजन् पुण्यतमं शृणु ॥ १ ॥

वह उत्तम हूहूनामक गंधर्व पहले देवलऋषिके शापसे ग्राह होगया था सो श्रीकृष्णसे मृत्युको प्राप्त होके स्वर्ग पहुँचा, हे राजन्! यह और भी अत्यंत पवित्र गुप्त सुनो ॥ १ ॥

युधिष्ठिर उवाच ।

कथं शापोद्भवं नाम गंधर्वाणां महात्मनाम् ॥
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं विस्तरेण पितामह ॥ २ ॥

युधिष्ठिर बोले-हे पितामहजी ! महात्मा गंधर्वोंको कैसे शाप होता भया मैं विस्तारसे सुनना चाहता हूँ ॥ २ ॥

भीष्म उवाच ।

हाहा हूहूरिति ख्यातौ गीतवाद्यविशारदौ ॥
इति तौ शापितौ तेन देवलेन महात्मना ॥ ३ ॥

भीष्मजी कहने लगे-हाहा हूहू ऐसे प्रसिद्ध गंधर्व गाने बजानेमें निपुण भये, इन दोनोंको महात्मा देवलऋषि शाप देता भया ॥ ३ ॥

उर्वशी मेनका रंभा तथा चान्येऽप्सरोगणाः ॥
शक्रस्य पुरतो राजन्नृत्यंते ताः सुमध्यमाः ॥ ४ ॥

हे राजन् ! उर्वशी मेनका रंभा ये तथा अन्य बहुतसी उत्तम अप्सराएँ होती भई वे सब इंद्रके आगे नाचती थीं ॥ ४ ॥

ततस्तौ गायमानौ तु गंधर्वौ राजसद्मनि ॥
अन्योन्यं चक्रतुः स्पर्धां शक्रस्य पुरतस्तदा ॥ ५ ॥

फिर वे दोनों गंधर्व राजसभामें तहां इंद्रके आगे गाते हुए आपसमें स्पर्धा (ईर्षा) करते भये ॥ ५ ॥

आवयोरुभयोर्मध्ये कः श्रेष्ठो गीतवाद्ययोः ॥
तं वदस्व सुरश्रेष्ठ ज्ञात्वा गीतस्य लक्षणम् ॥ ६ ॥

कि, हमारे दोनोंमें कौनसा गाने बजानेमें श्रेष्ठ है ? हे इन्द्र! इस बातको गीतके लक्षणको विचारके आप कहो ॥ ६ ॥

गंधर्वयोर्वचः श्रुत्वा प्रत्युवाच शतक्रतुः ॥
युवयोर्गीतवाद्येषु विशेषो नोपलक्ष्यते ॥ ७ ॥

गंधर्वोंके वचनको सुनके इन्द्र प्रतिवचन बोला कि, तुम्हारे गाने बजानेमें कुछ विशेष हमें नहीं दीखता ॥ ७ ॥

एक एव मुनिश्रेष्ठो देवलो नाम नामतः ॥
युवयोः संशयच्छेत्ता भविष्यति न संशयः ॥ ८ ॥

किंतु एक देवल नामसे प्रसिद्ध मुनिश्रेष्ठ है वह, तुम्हारे सन्देहको दूर करेगा इसमें सन्देह नहीं ॥ ८ ॥

ततस्तु तौ शक्रवचो निशम्य प्रणम्य राजञ्छिरसा सुरेश्वरम् ॥ गतौ सुहृष्टौ जयकांक्षिणौ तौ यत्राश्रमे तिष्ठति स द्विजाग्र्यः ॥ ९ ॥

हे राजन्! पीछे वे दोनों इन्द्रके वचनको सुनके शिर करके प्रणाम कर जय (जीतने) की इच्छावाले दोनों प्रसन्न हुए जहां वह ऋषि था उस आश्रममें जाते भये ॥ ९ ॥

ततो दृष्ट्वा मुनिश्रेष्ठं देवलं शंसितव्रतम् ॥
अभिवाद्य महात्मानं प्रोचतुः पार्श्वसंस्थितौ॥१०॥

फिर तीव्र व्रतवाले मुनिश्रेष्ठ देवलको देख तिस महात्माको विधिपूर्वक प्रणाम कर बराबरमें स्थित होके बोलते भये ॥१०॥

शक्रेण प्रेषितौ देव त्वत्समीपे द्विजोत्तम ॥
एकस्य च जयं देहि यच्च मनसि रोचते ॥ ११ ॥

हे द्विजोत्तम ! हम दोनोंको तुम्हारे पास इन्द्रने भेजा है सो जौनसा तुम्हारे मनमें रुचै उस एकको जय दो ॥ ११ ॥

पृथक् चरंतौ गायंतौ रुचिरं मधुरस्वरम् ॥
न किंचिद्वदते वाक्यं मुनिर्मौनस्य धारणात् ॥१२॥

ऐसे कहके अलग २ विचरते हुए सुंदर मधुरस्वरमें गाते भये तब मौन धारण होनेसे मुनि कुछ नहीं बोले ॥ १२ ॥

श्रृण्वन्नपि पदं तेषां न किंचिद्वदते मुनिः ॥
तदा तौ कुपितौ तस्य देवलस्य महात्मनः ॥१३ ॥

तिन्होंके पदको सुनते हुए भी मुनि कुछ नहीं कहते हैं तब वे दोनों देवल महात्मापर क्रोधी होते भये ॥ १३ ॥

ऊचतुस्तौ तदा वाक्यं गंधर्वौ कालनोदितौ ॥
मूढोऽयं नाभिजानाति निश्चयं वाद्यगीतयोः॥१४॥

कालसे प्रेरे हुए गंधर्व बोले कि, यह मूर्ख है गाने बजानेके सिद्धांतको नहीं जानता ॥ १४ ॥

निशम्यैतद्वचस्तेषां गंधर्वाणां मदान्वितम् ॥
क्रोधादुत्थाय विप्रेन्द्र इदं वचनमब्रवीत् ॥ १५ ॥

गंधर्वोंका ऐसा मदका वचन सुनके वह मुनि क्रोधसे उठके यह वचन बोला ॥ १५ ॥

एष हूहूर्दुरात्मा तु ग्राहत्वं यातु मूढधीः ॥
त्वमेव गजराजस्तु भवस्व गिरिगह्वरे ॥ १६ ॥

यह हूहू दुष्टात्मा तो ग्राह बने और तू मूर्ख गह्वर पर्वतमें हस्ती हो ॥ १६ ॥

ततस्तौ शापितौ तेन देवलेन महात्मना ॥
प्रणम्य शिरसा विप्रं गंधर्वाविदमूचतुः ॥ १७ ॥

तब वे दोनों देवल महात्माकरके शापको प्राप्त हुए पीछे तिस मुनिको प्रणाम करके यह बोले ॥ १७ ॥

भूमंडलगतौ ह्यावां प्रसादं कुरु सत्तम ॥
निश्चयं वद विप्रेन्द्र येन शापाद्विमुच्यतः ॥ १८ ॥

हे विप्रेन्द्र ! पृथ्वीलोकपर गये हुए हमपर दया करो, हे मुनिश्रेष्ठ ! जिससे हम शापसे छूटैं ऐसा कोई निश्चय कहो ॥१८॥

ततस्तौ पुरतो दृष्ट्वा उभौ शापभयार्दितौ ॥
प्रत्युवाच मुनिश्रेष्ठो गंधर्वौ तौ भयान्वितौ ॥१९॥

फिर शापके भयसे पीडित हुए आगे खडे हुए उन दोनोंको देखके भक्तियुक्त गंधर्वोंको मुनिश्रेष्ठ बोलता भया ॥ १९ ॥

मेरुपृष्ठे सरो रम्यं बहुवृक्षसमाकुलम् ॥
नानापक्षिनिनादाढ्यं द्वितीय इव सागरः ॥ २० ॥

सुमेरुपर्वतकी शिखरपर रमणीक बहुत वृक्षोंसे संयुक्त अनेक पक्षियोंके शब्दसे युक्त मानो दूसरा सागर हो ऐसा एक सरोवर है ॥ २० ॥

तस्मिन्सरोवरे रम्ये नित्यं ग्राहो भविष्यसि ॥
तृषार्तस्तत्र मातंगो गमिष्यति न संशयः ॥ २१ ॥

तिस रमणीक सरोवरविषे तू नित्य ग्राह होगा तहां तृषासे पीडित (तिसाया) हस्ती जावेगा इसमें सन्देह नहीं ॥ २१ ॥

तयोर्मध्ये महद्युद्धं भविष्यति सुदारुणम् ॥
ग्राहेणाकृष्यमाणस्तु गजः स्तोत्रं करिष्यति ॥२२॥

तब तिनका महान् घोर युद्ध होगा फिर ग्राहसे जलमें खींचा हुआ हस्ती स्तुति करेगा ॥ २२ ॥

तदैव देवदेवेशस्तुष्यते नात्र संशयः ॥
ततो नारायणः प्रीतः शापतो मोचयिष्यति ॥२३॥

उसी समय देवदेवेश भगवान् प्रसन्न होंगे इसमें सन्देह नहीं तब प्रसन्न हुए नारायण शापसे छुटावेंगे ॥ २३ ॥

इत्युक्तावृषिणा तेन वरेणैतौ प्रमोदितौ ॥

भीष्म उवाच ।

एवं परावार्तभूतौ श्रुत्वाऽऽसीद्भगवानिह ॥ २४ ॥

ऋषिने ऐसे कहके तिस वरकरके प्रसन्न करदिये । भीष्मजी कहते हैं—ऐसे परम पीडित इन्होंको सुनके विष्णु भगवान् यहां आते भये ॥ २४ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

क्रोधोऽपि वरतुल्योऽयमापदे तं प्रयच्छतु ॥
आपद्विमुक्तौ युगपद्गजो गंधर्व एव च ॥ २५ ॥

श्रीभगवान् कहते हैं—यह क्रोध भी वरके समान है तिस विपत्तिको करो विपत्तिसे छूटते समय हस्ती और गंधर्व (ग्राहरूपी) ये दोनों गंधर्व ही होते भये ॥ २५ ॥

गजोऽपि मुक्ततां यातः श्रीकृष्णेन विमोक्षितः॥
तस्माच्छापाद्विनिर्मुक्तः प्रागिवाविकृतोऽभवत् २६॥

हस्ती भी मुक्तिको प्राप्त भया है श्रीकृष्णचन्द्रने विमोक्ष किये तब तिस पापसे छूटके पहलेकी तरह विकाररहित होता भया ॥ २६ ॥

तौ च स्वं स्वं वपुः प्राप्य प्रणिपत्य जनार्दनम् ॥
गजो गंधर्वराजश्च परां निर्वृतिमागतौ ॥ २७॥

वे दोनों गज, ग्राह अपने २ रूपको प्राप्त होके जनार्दन भगवान्‌को प्रणाम कर गज और गंधर्वराज दोनों परम आनन्दको प्राप्त होते भये ॥ २७ ॥

प्रीतिमान्पुंडरीकाक्षः शरणागतवत्सलः ॥
अभवत्तत्र देवेशस्ताभ्यां चैव प्रपूजितः ॥ २८ ॥

शरणागत जनोंपर दया करनेवाले पुंडरीकाक्ष भगवान् प्रसन्न होते भये और देवेश विष्णु भगवान् वहाँ तिन दोनों करके पूजित होते भये ॥ २८ ॥

इद चैव महाबाहो देवस्य च प्रभाषितम् ॥
भजंतं गजराजानमवदन्मधुसूदनः ॥ २९ ॥

हे महाबाहो ! स्तुति करते हुए हस्तिराजको मधुसूदन भगवान् कहते भये, तहाँ विष्णुदेवका कहा हुआ यह वचन है ॥ २९ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

यो मां त्वां च सरश्चैव ग्राहस्य च विदारणम् ॥
गुल्मकीचकवेण्वूनां तं च शैलवरं तथा ॥ ३० ॥

श्रीभगवान् बोले—जो पुरुष मुझको तुम दोनोंको और सरोवरको ग्राहके मारनेको और गुच्छेवायुसे बाजते हुए बाँसोंके झुंडोंको और तिस उत्तम पर्वतको स्मरण करेगा ॥ ३० ॥

अश्वत्थं भास्करं गंगां नैमिषारण्यपुष्करम् ॥
प्रयागं ब्रह्मतीर्थं च दण्डकारण्यमेव च ॥ ३१ ॥

और पीपलवृक्ष, सूर्य अथवा भास्करतीर्थ, गंगाजी, नैमिषारण्य पुष्करजी प्रयाग ब्रह्मतीर्थ दण्डकारण्य ॥ ३१ ॥

पुराणं रामचरितं भारताख्यानमुत्तमम् ॥
विभूतिं विश्वरूपं च स्तवराजमनुस्मृतिम् ॥ ३२ ॥

पुराण, रामचरित, महाभारतके इतिहास, विभूति, विश्वरूप और भीष्मस्तवराज, अनुस्मृति ॥ ३२ ॥

प्रणवं च कुरुक्षेत्रं गरुडं मेरुपर्वतम् ॥
रूपं कांचनगुल्मानां रूपं मेरोः सुतस्य च ॥ ३३ ॥

ॐकार, कुरुक्षेत्र और गरुड, सुमेरु पर्वत, सुवर्णके गुच्छोंका रूप और सुमेरु पर्वतके पुत्र (त्रिकूटका) रूप ॥ ३३ ॥

ये स्मरिष्यंति मनुजाः प्रयताः स्थिरबुद्धयः ॥
दुःस्वप्नो नश्यते तेषां सुस्वप्नश्च भविष्यति ॥ ३४॥

इन सबोंको जो स्थिर बुद्धिवाले जितेंद्रिय पुरुष स्मरण करेंगे उन्होंका दुःस्वप्न (बुरा सुपना) नाश होगा और सुंदर स्वप्नका फल होगा ॥ ३४ ॥

अनिरुद्धं गजं ग्राहं वासुदेवं महाद्युतिम् ॥
संकर्षणं महात्मानं प्रद्युम्नं च तथैव च ॥ ३५ ॥

अनिरुद्ध, गज, ग्राह, महाकांतिवाले वासुदेव (श्रीकृष्ण) महात्मा बलदेवजी, प्रद्युम्न ॥ ३५ ॥

मत्स्यं कूर्मं च वाराहं वामनं तार्क्ष्यमेव च ॥
नारसिंहं च नागेंद्रं सृष्टिसंहारकारकम् ॥ ३६ ॥

मत्स्य, कूर्म, वाराह, वामन, गरुड, नृसिंह, सृष्टिसंहार करनेवाले नागेन्द्र ॥ ३६ ॥

विश्वरूपं हृषीकेशं गोविंदं मधुसूदनम् ॥
त्रिदशैर्वंदितं देवं दृढभक्तिमनूपमम् ॥ ३७ ॥

विश्वरूप, हृषीकेश, गोविन्द और देवताओंसे वंदित, दृढ भक्तिवाले अत्युत्तम मधुसूदन देव ॥ ३७ ॥

वैकुंठं दुष्टदमनं भक्तिदं मधुसूदनम् ॥
एतानि प्रातरुत्थाय संस्मरिष्यंति ये नराः ॥ ३८ ॥

वैकुण्ठ, भक्तिदायी, मधुसूदन इन्होंको जो मनुष्य प्रातःकाल उठके स्मरण करेंगे ॥ ३८ ॥

सर्वपापैः प्रमुच्यंते स्वर्गलोकमवाप्नुयुः ॥

भीष्म उवाच।

एवमुक्त्वा महाराज गजेन्द्रं मधुसूदनः ॥ ३९ ॥

वे सब पापोंसे छूटते हैं और स्वर्गलोकमें प्राप्त होते हैं। भीष्मजी कहते हैं हे महाराज ! मधुसूदन भगवान् गजेंद्र (हस्ती) को ऐसे कहके ॥ ३९ ॥

स्पर्शयामास हस्तेन गजं गन्धर्वमेव च ॥
तौ च स्पृष्टौ ततः सद्यो माल्यांबरधरावुभौ ॥४०॥

अपने हाथसे हस्तीको और गंधर्वको स्पर्श करते भये फिर स्पर्श किये हुए वे दोनों शीघ्र ही उत्तम माला और वस्त्रोंको धारण करनेवाले (गन्धर्व होके) ॥ ४० ॥

तमेव मनसा प्राप्य जग्मतुस्त्रिदशालयम् ॥
ततो दिव्यवपुर्भूत्वा हस्तिराट् परमं पदम् ॥ ४१ ॥

तिस भगवान्‌को मन करके प्राप्त होके स्वर्गलोकमें प्राप्त होते भये, फिर वह हस्तिराज दिव्य शरीर धारण करके परम पदको ॥ ४१ ॥

गच्छति स्म महाबाहो नारायणपरायणौ ॥
ततो नारायणः श्रीमान्मोक्षयित्वा गजोत्तमम् ४२॥

प्राप्त होता भया । हे महाबाहो ! ये दोनों नारायणमें परायण होते भये तब श्रीमान् नारायण गजोत्तमको छुड़ाके ॥ ४२ ॥

ऋषिभिः स्तूयमानोऽग्र्यैर्वेदगुह्यपदाक्षरैः ॥
गतस्तु भगवान्विष्णुर्दुर्विज्ञेयगतिः प्रभुः ॥ ४३ ॥

ऋषिलोगों करके बहुत उत्तम वेदके गुह्य पदाक्षरों करके स्तुत होते भये, फिर दुर्विज्ञेय गतिवाले विष्णु भगवान् ॥ ४३ ॥

शंखचक्रगदापाणिरंतर्धानं युधिष्ठिरः ॥
गजेंद्रमोक्षणं दृष्ट्वा सर्वे प्रांजलयस्तदा ॥ ४४ ॥

शंख, चक्र, गदा इनको हाथमें धारण किये हुए ही अंतर्धान होगये। हे युधिष्ठिर ! तब सब (ऋषिलोग) गजेंद्रके मोक्षको देख हाथ जोड़के ॥ ४४ ॥

ववंदिरे महात्मानं प्रभुं नारायणं परम् ॥
विस्मयोत्फुल्लनयनाः प्रजापतिपुरःसराः ॥ ४५ ॥

महात्मा प्रभु परम नारायणको प्रणाम करते भये, ब्रह्मा आदि सब देवता आश्चर्यकरके खिले नेत्रोंवाले होगये ॥ ४५ ॥

य इदं शृणुयान्नित्यं प्रातरुत्थाय मानवः ॥
प्राप्नुयात्परमां सिद्धिं दुःस्वप्नस्तस्य नश्यति॥४६॥

जो मनुष्य नित्य प्रातःकाल उठके इस स्तोत्रको सुनता है वह परम सिद्धिको प्राप्त होवे और तिसका बुरा स्वपना नष्ट होवे ॥ ४६ ॥

गजेन्द्रमोक्षणं पुण्यं सर्वपापप्रणाशनम् ॥
श्रावयेत्प्रातरुत्थाय दीर्घमायुरवाप्नुयात् ॥ ४७ ॥

यह गजेन्द्रमोक्ष पवित्र है सब पापोंको नष्ट करनेवाला है जो प्रातःकाल उठके इसको सुनावे वह दीर्घ (बडी) आयुवाला हो ॥ ४७ ॥

श्रुतेन हि कुरुश्रेष्ठ स्तुतेन कथितेन च ॥
गजेन्द्रमोक्षणेनैव सद्यः पापात्प्रमुच्यते ॥ ४८ ॥

हे कुरुश्रेष्ठ ! गजेन्द्रमोक्षके सुननेसे स्तुति करनेसे कहनेसे शीघ्र ही पाप दूर होते हैं ॥ ४८ ॥

मया ते कथितं राजन्पवित्रं पापनाशनम् ॥
कीर्तयस्व महाबाहो गजेन्द्रस्य महात्मनः ॥४९ ॥

हे राजन् ! पवित्र पापनाशक स्तोत्र मैंने तेरे आगे कहा, हे महाबाहो ! महात्मा गजेंद्रके स्तोत्र कीर्तनको करो ॥ ४९ ॥

चरितं पुण्यकर्माणि पुष्कलं वर्द्धते यशः ॥
प्रीतिमान्पुंडरीकाक्षो गजं दुःखात्प्रमुक्तवान् ॥५०॥

यह चरित्र पवित्र कर्म है और बहुतसा यश बढता है ऐसे प्रीतिमान् हुए पुंडरीकाक्ष भगवान् गजको दुःखसे छुटाते भये ॥ ५० ॥

वैशंपायन उवाच ।

एतच्छ्रुत्वा महाबाहो भारतानां पितामहात् ॥
गजेन्द्रमोक्षणं राजा कुंतीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ५१ ॥

वैशंपायनजी कहते हैं—हे महाबाहो ! (जनमेजय) कुंतीका पुत्र राजा युधिष्ठिर भीष्मपितामहजीसे इस गजेन्द्रमोक्षको सुनके ॥ ५१ ॥

भ्रातृभिः सहितः सम्यग्ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥
पूजयामास देवेशं पार्श्वस्थं मधुसूदनम् ॥ ५२ ॥

सब भाइयों सहित होके वेदके पारगामी ब्राह्मणों करके (युक्त हो) समीपमें स्थित हुए श्रीकृष्णभगवान्को पूजता भया ॥ ५२ ॥

विस्मयोत्फुल्लनयनाः श्रुत्वा नागस्य मोक्षणम् ॥
ऋषयस्तु महाभागाः सर्वे प्रांजलयस्तदा ॥ ५३ ॥

सब महाभाग ऋषिजन गजेन्द्रमोक्षको सुन आश्चर्यसे प्रफुल्लित नेत्रोंवाले होके हाथ जोडके ॥ ५३ ॥

अजं वरेण्यं वरपद्मनाभं महाबलं वेदनिधिं सुरोत्तमम् ॥ तं वेदगुह्यं पुरुषं पुराणं ववंदिरे वेदविदां वरिष्ठम् ॥ ५४ ॥

अजन्मा, प्रधानपुरुष, उत्तम कमल है नाभिमें जिसके ऐसे महाबलीवेदनिधि सुरोत्तम तिस वेदगुह्य (वेदमें गुप्त हुए) वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ पुराणपुरुषको प्रणाम करते भये ॥ ५४ ॥

एतत्पुण्यं महाबाहो जनानां पुण्यकर्मणाम् ॥
दुःस्वप्नदर्शने घोरे श्रुत्वा पापात्प्रमुच्यते ॥ ५५ ॥

हे महाबाहो ! पवित्र कर्मवाले जनोंको यह पुण्य पवित्र है (मनुष्य) घोर दुःस्वप्नविषे इसको सुनके पापोंसे छूटता है ॥५५॥

तस्मात्त्वं हि महाराज प्रपद्य शरणं हरिम् ॥
विमुक्तः सर्वपापेभ्यः प्राप्स्यसे परमं पदम् ॥ ५६ ॥

हे महाराज ! इसलिये तुम भी हरिकी शरण हो फिर सब पापोंसे छूटके परम पदको प्राप्त होगे ॥ ५६ ॥

यदा महाग्राहगृहीतकातरं सुपुष्पिते पद्मवने महाद्विपम् ॥ विमोक्षयामास गजं जनार्दनः स्मरामि दुःस्वप्नविनाशनं हरिम् ॥ ५७ ॥

जब महाग्राहसे पकड़े हुए डरते हुए महान् हस्तीको खिलेहुए कमलवनमें जनार्दन भगवान् छुटाते भये (तिस समयके रूपवाले) दुःस्वप्नको नष्ट करनेवाले हरिको मैं स्मरण करता हूं ॥ ५७ ॥

परं पुराणं परमं पवित्रं पुराणमीशं सुरलोकनाथम् ॥
सुरासुरैरर्चितपादपद्मं सनातनं लोकगुरुं स्मरामि ॥५८

परम पुराण परम पवित्र पुराण ईश, देवलोकके स्वामी देव

ता और दैत्योंकरके पूजित चरणारविंदवाले सनातन लोकके गुरुको मैं स्मरण करता हूँ ॥ ५८ ॥

वरगजशरणाद्विमुक्तिहेतुं पुरुषवरस्तुतदिव्यदेह-
गीतम् ॥ सततमभिपठंति ये तु तेषां सुमरण-
मंतिककिल्बिषापहं स्यात् ॥ ५९ ॥

उत्तम हस्तीकी रक्षाके विमुक्तिहेतु पुरुषोत्तमकी स्तुति और दिव्य देहका गीत (ऐसे गजेंद्रमोक्ष स्तोत्रको) जो निरंतर पढते हैं तिन्होंके मरणसमयपर्यंतके संपूर्ण पाप नष्ट होते हैं ॥ ५९ ॥

धर्मदृढबद्धमूलो वेदस्कंधः पुराणशाखाढ्यः ॥
क्रतुकुसुमो मोक्षफलो मधुसूदनपादपो जयति॥६०

धर्मरूप दृढ बँधे मूलवाले वेदस्कंधवाले पुराणरूपी शाखायुक्त यज्ञरूपी पुष्पोंवाले फलवाले वृक्ष मोक्षरूप मधुसूदन भगवान्की जय हो ॥ ६० ॥

नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च ॥
जगद्धिताय कृष्णाय गोविंदाय नमोनमः ॥ ६१ ॥

ब्रह्मण्यदेवके अर्थ नमस्कार है गौ और ब्राह्मणोंके हितदायी जगत्के हितदायी श्रीकृष्ण गोविंदके अर्थ नमस्कार है ॥ ६१ ॥

आर्ता विषण्णाः शिथिलाश्च भीता घोरेषु च
व्याधिषु वर्तमानाः ॥ संकीर्त्य नारायणशब्द-
मात्रं विमुक्तदुःखाः सुखिनो भवंति ॥ ६२ ॥

पीडित, दुःखित, शिथिल, भयभीत, घोर बीमार (रोगी)

ऐसे जन " नारायण " ऐसे शब्दमात्रको कहके दुःखरहित होके सुखी होजाते हैं ॥ ६२ ॥

वेदे रामायणे चैव पुराणे भारते तथा ॥
आदौ मध्ये तथा चान्ते हरिः सर्वत्र गीयते ॥ ६३ ॥

वेद, रामायण, पुराण, महाभारत इन सबोंमें आदि मध्य अन्तमें सब जगह हरि गाये जाते हैं ॥ ६३ ॥

एकोऽपि कृष्णस्य कृतः प्रणामो दशाश्वमेधाऽवभृथेन तुल्यः ॥ दशाश्वमेधी पुनरेति जन्म कृष्णप्रणामी न पुनर्भवाय ॥ ६४ ॥

श्रीकृष्णके अर्थ किया हुआ एक भी प्रणाम दश अश्वमेध यज्ञोंके अवभृथस्नानके समान होता है । दश अश्वमेध यज्ञ करनेवाला तो फिर जन्म लेता है परन्तु श्रीकृष्णको प्रणाम करनेवालेका पुनर्जन्म नहीं होता ॥ ६४ ॥

सर्वरत्नमयो मेरुः सर्वाश्चर्यमयं नभः ॥
सर्वतीर्थमयी गंगा सर्वदेवमयो हरिः ॥ ६५ ॥

सर्वरत्नमय सुमेरु पर्वत है और सम्पूर्ण आश्चर्यमय आकाश है सब तीर्थमयी गंगाजी हैं सर्व देवमय हरि हैं ॥ ६५ ॥

आकाशात्पतित तोय यथा गच्छति सागरम् ॥
सर्वदेवनमस्कारः केशवं प्रति गच्छति ॥ ६६ ॥

आकाशसे वर्षा हुआ जल जैसे सागरमें चला जाता है ऐसे ही सब देवताओंके अर्थ किया हुआ प्रणाम केशव भगवान्‌को प्राप्त होता है ॥ ६६ ॥

गीता सहस्रनामानि स्तवराजो ह्यनुस्मृतिः ॥
गजेन्द्रमोक्षणं चैव पंचरत्नानि भारते ॥ १६७ ॥

गीता, विष्णुसहस्रनाम, भीष्मस्तवराज, अनुस्मृति और गजेन्द्रमोक्ष महाभारतमें ये पांच रत्न हैं ॥ १६७ ॥

इति श्रीबेरीनिवासि–पंडितवसतिरामविरचितगजेन्द्रमोक्ष-
भाषाटीका समाप्ता ।



पुस्तक मिलनेका ठिकाना–

खेमराज श्रीकृष्णदास,
अध्यक्ष-"श्रीवेङ्कटेश्वर"
स्टीम्-प्रेस, बम्बई.

गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,
अध्यक्ष-"लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर"
प्रेस, कल्याण-बम्बई.